भाषा, विभाषा और बोली

(Language, Sub-language and Dialect)

प्रेम लता

भाषा, विभाषा और बोली

भाषा, विभाषा और बोली

(Language, Sub-language and Dialect)

प्रेम लता

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5479-6

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

भाषा का विषय जितना सरस और मनोरम है, उतना ही गंभीर और कौतूहलजनक। भाषा मनुष्यकृत है अथवा ईश्वरप्रदत्त उसका आविर्भाव किसी काल विशेष में हुआ, अथवा वह अनादि है, वह क्रमशः विकसित होकर नाना रूपों में परिणत हुई, अथवा आदि काल से ही अपने मुख्य रूप में वर्तमान है, इन प्रश्नों का उत्तर अनेक प्रकार से दिया जाता है। कोई भाषा को ईश्वरप्रदत्त कहता है, कोई उसे मनुष्यकृत बतलाता है। कोई उसे क्रमशः विकास का परिणाम मानता है और कोई उसके विषय में 'यथा पूर्वमकल्पयत्' का राग अलापता है।

मानक भाषा संरचनात्मक दृष्टि से अपनी भाषा के विभिन्न रूपों में से किसी एक रूप या एक बोली पर आधारित होती है। इसके मानक बनते ही इसकी बोलीगत विशेषताएँ लुप्त होने लगती हैं और वह क्षेत्रीय से अक्षेत्रीय हो जाती है। इसका कोई निर्धारित सीमा क्षेत्र नहीं होता और न ही यह किसी भाषाभाषी समुदाय की मातृभाषा कहलाती है। हमारे सामने हिन्दी का मानक रूप है। यह मानक रूप हिन्दी की खड़ी बोली से विकसित हुआ है। इस रूप में खड़ी बोली की बोलीगत विशेषताएँ लुप्त हो गई हैं और यह रूप खड़ी बोली से उतना ही अलग जान पड़ता है, जितना भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि अन्य बोलियों से। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली, भोजपुरी ब्रज, अवधी आदि के अपने भाषाभाषी समुदाय हैं इनका अपना सीमा क्षेत्र है और इनके बोलने वाले इन्हें अपनी मातृ

भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं, किंतु हिन्दी के मानक रूप के संबंध में इस प्रकार की संकल्पनाएँ कुछ अलग सी हैं। हिन्दी क्षेत्र में विभिन्न बोलियों के बोलने वाले उसे उसी प्रकार की मातृभाषा अवश्य मानते हैं। अर्थात् वे उसे 'सहमातृभाषा या प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार करते है।

भारत में 'भारतीय जनगणना 1961' के अनुसार 1652 मातृ भाषाएँ (बोलियाँ) चार भाषा परिवारों में वर्गीकृत की गई हैं। नीचे बोलियों के विवरण में आधार डॉ. ग्रियर्सन का 'भारत भाषा सर्वेक्षण' है, किंतु नीवनतम शोध अध्ययन सर्वोपरि माने गए हैं। तुलना के लिये जन का उल्लेख किया गया है। बोलियों के मिलनस्थलों पर मतभेद असंभव नहीं है। कोष्ठकों में बोलियों के स्थान वर्णित है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**भाषा**	**1**
	भाषा की परिभाषा	2
	द्वितीय प्रकरण	6
	तृतीय प्रकरण	24
	चतुर्थ प्रकरण	42
	पंचम प्रकरण	56
	षष्ठ प्रकरण	62
	सप्तम प्रकरण	73
	भाषा के भेद	85
	भाषा की प्रवृत्ति	87
	भाषा का माध्यम	92
	भाषा की उत्पत्ति, प्रकार्य एवं विशेषताएँ	94
	परोक्ष मार्ग	97
	भाषा के विविध रूप	102
	मूलभाषा	103
	क्षेत्रीय बोलिया	103
	अपभाषा या विकृत भाषा	104

व्यावसायिक भाषा 104
2. मानक भाषा 107
मानक भाषा का स्वरूप और प्रकृति 108
मानक हिन्दी का अर्थ एवं विशिष्टताएँ 118
मानक हिन्दी के स्वरूप एवं प्रकार 119
सामान्य हिन्दी 120
मानक भाषा के स्वरूप और लक्षण 125
3. सम्पर्क भाषा 127
सम्पर्क भाषा–परिभाषा एवं सामान्य परिचय 128
सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी 129
4. राजभाषा 132
राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा 133
संघ की भाषा 134
राजभाषा आयोग 135
न्यायालयों तथा विधानमण्डलों की भाषा 137
संस्कृत भाषा में श्लोक 137
प्रादेशिक भाषाएँ 142
उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा 143
अधिसूचना 146
राज्यों का क्षेत्रनुसार वर्गीकरण 171
राजभाषा हिंदी संबंधी विभिन्न समितियाँ 172
संसदीय राजभाषा समिति 173
5. राष्ट्रभाषा 176
अंग्रेजों का योगदान 177
6. सांकेतिक भाषा 183
सांकेतिक भाषा का इतिहास 183
संकेत की भाषिकी 185
सांकेतिक भाषाओं के लिखित रूप 191
7. भाषा-परिवार 197
वर्गीकरण के आधार 197
भौगोलिक समीपता 198

शब्दानुरूपता 198
ध्वनिसाम्य 199
व्याकरणगत समानता 199
वर्गीकरण की प्रक्रिया 200
यूराल-अतलाई कुल 202
भारत के भाषा-परिवार 202
8. भारत की बोलियाँ 205
भारोपीय भाषा परिवार 205

1

भाषा

भाषा' शब्द भाष् धतु से निष्पन्न हुआ है। शास्त्रों में कहा गया है- ''भाष् व्यक्तायां वाचि'' अर्थात् व्यक्त वाणी ही भाषा है। भाषा स्पष्ट और पूर्ण अभिव्यक्ति प्रकट करती है। भाषा का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना पुराना मानव का इतिहास। भाषा के लिए सामान्यतः यह कहा जाता है कि- 'भाषा मनुष्य के विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है।' भाषा की परिभाषा पर विचार करते समय **रवीन्द्रनाथ** की यह बात ध्यान देने योग्य है कि- 'भाषा केवल अपनी प्रकृति में ही अत्यन्त जटिल और बहुस्तरीय नहीं है वरन् अपने प्रयोजन में भी बहुमुखी है।'

उदाहरण के लिए अगर भाषा व्यक्ति के निजी अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है, तब इसके साथ ही वह सामाजिक सम्बन्धें की अभिव्यक्ति का उपकरण भी है, एक ओर अगर वह हमारे मानसिक व्यापार (चिन्तन प्रक्रिया) का आधार है तो दूसरी तरफ वह हमारे सामाजिक व्यापार (संप्रेषण प्रक्रिया) का साधन भी है। इसी प्रकार संरचना के स्तर पर भाषा अपनी विभिन्न इकाइयों में सम्बन्ध स्थापित कर अपना संश्लिष्ट रूप ग्रहण करती है, जिनमें वह प्रयुक्त होती है। प्रयोजन की विविधता ही भाषा को विभिन्न सन्दर्भों में देखने के लिए बाध्य करती है। यही कारण है कि विभिन्न विद्वानों ने इसे विभिन्न रूपों में देखने और परिभाषित करने का प्रयत्न किया है–

भाषा की परिभाषा

भाषा का विषय जितना सरस और मनोरम है, उतना ही गंभीर और कौतूहलजनक। भाषा मनुष्यकृत है अथवा ईश्वरप्रदत्ता उसका आविर्भाव किसी काल विशेष में हुआ, अथवा वह अनादि है, वह क्रमशः विकसित होकर नाना रूपों में परिणत हुई, अथवा आदि काल से ही अपने मुख्य रूप में वर्तमान है, इन प्रश्नों का उत्तर अनेक प्रकार से दिया जाता है। कोई भाषा को ईश्वरप्रदत्ता कहता है, कोई उसे मनुष्यकृत बतलाता है। कोई उसे क्रमशः विकास का परिणाम मानता है, और कोई उसके विषय में 'यथा पूर्वमकल्पयत्' का राग अलापता है। मनुस्मृतिकार लिखते हैं-

सर्वेषां तु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थांश्च निर्ममे। 1। 21।
तपो वाचं रतिं चौव कामं च क्रोधमेव च
सृष्टिं ससर्ज चौवेमां टुमिच्छन्निमा प्रजाः। । 25।

ब्रह्मा ने भिन्न-भिन्न कर्मों और व्यवस्थाओं के साथ सारे नामों का निर्माण सृष्टि के आदि में वेदशब्दों के आधार से किया। प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से परमात्मा ने तप, वाणी, रति, काम और क्रोध को उत्पन्न किया।

पवित्र वेदों में भी इस प्रकार के वाक्य पाये जाते हैं-यथा
'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य'
'मैंने कल्याणकारीवाणी मनुष्यों को दी'
अध्यापक मैक्समूलर इस विषय में कहते हैं,

''भिन्न-भिन्न भाषा-परिवारों में जो 400 या 500 धातु उनके मूलतत्त्व रूप से शेष रह जाते हैं, वे न तो मनोराग-व्यंजक ध्वनियाँ हैं, और न केवल अनुकरणात्मक शब्द ही। हम उनको-वर्णात्मक शब्दों का साँचा कह सकते हैं। एक मानसविज्ञानी या तत्त्वविज्ञानी उनकी किसी प्रकार की व्याख्या करे-भाषा के विद्यार्थी के लिए तो ये धातु अन्तिम तत्त्व ही हैं। **प्लेटो** के साथ हम इतना और जोड़ देंगे कि 'स्वभाव से' कहने से हमारा आशय है 'ईश्वर की शक्ति से।"1

प्रोफेसर **पाट** कहते हैं-

''भाषा के वास्तविक स्वरूप में कभी किसी ने परिवर्तन नहीं किया, केवल बाह्य स्वरूप में कुछ परिवर्तन होते रहे हैं, पर किसी भी पिछली जाति ने एक धातु भी नया नहीं बनाया। हम एक प्रकार से वही शब्द बोल रहे हैं, जो सर्गारम्भ में मनुष्य के मुँह से निकले थे।"

जैक्सन-डेविस कहते हैं, भाषा भी, जो एक आन्तरिक और सार्वजनिक साधन है, स्वाभाविक और आदिम है। ''भाषा के मुख्य उद्देश्य में उन्नति होना कभी संभव नहीं क्योंकि उद्देश्य सर्वदेशी और पूर्ण होते हैं, उनमें किसी प्रकार भी परिवर्तन नहीं हो सकता। वे सदैव अखंड और एकरस रहते हैं''। 3

इस सिद्धान्त के विरुद्ध जो कहा गया है, उसे भी सुनिए-

डार्विन और उसके सहयोगी, '**हक्सले**' 'विजविड' और 'कोनिनफार' यह कहते हैं-''भाषा ईश्वर का दिया हुआ उपहार नहीं है, भाषा शनैः-शनैः ध्वन्यात्मक शब्दों और पशुओं की बोली से उन्नति करके इस दशा को पहुँची है।"

'लाक', '**एडम्स्मिथ**' और '**डयूगल्ड स्टुअर्ट**' आदि की यह सम्मति है-

''मनुष्य बहुत काल तक गूँगा रहा, संकेत और भ्रू-प्रक्षेप से काम चलाता रहा, जब काम न चला तो भाषा बना ली और परस्पर संवाद करके शब्दों के अर्थ नियत कर लिये।"4

तुलनात्मक भाषा-शास्त्र के रचयिता अपने ग्रन्थ के पृष्ठ 199 और 200 में इस विषय में अपना यह विचार प्रकट करते हैं-

''पहिला सिद्धान्त यह है कि पदार्थों और क्रियाओं के नाम पहले जड़-चेतनात्मक बाह्य जगत की ध्वनियों के अनुकरण के आधार पर रखे गये। पशुओं के नाम उनकी विशेष आवाजों के ऊपर रखे गये होंगे। कोकिल या काक शब्द स्पष्ट ही इन पक्षियों की बोलियों के अनुकरण से बनाये गये हैं। इसी प्रकार प्राकृतिक या जड़ जगत् की भिन्न-भिन्न ध्वनियों के अनुसार जैसे वायु का सरसर बहना, पत्तियों का मर्मर रव करना, पानी का झरझर गिरना या बहना, भारी ठोस पदार्थों का तड़कना या फटना।

इत्यादि के अनुकरण से भी अनेक नाम रखे गये। इस प्रकार अनुकरण के आधार पर मूल शब्दों का पर्याप्त कोश बन गया होगा। इन्हीं बीज रूप मूल शब्दों से धीरे-धीरे भाषा का विकास हुआ है। इस सिद्धान्त को हम शब्दानुकरण-मूलकता-वाद नाम दे सकते हैं।

दूसरे सिद्धान्त इस प्रकार हैं। हर्ष, शोक, आश्चर्य आदि के भावों के आवेग में कुछ स्वाभाविक ध्वनियाँ हमारे मुँह से निकल पड़ती हैं, जैसे हाहा, हाय हाय! वाह वाह, इत्यादि। इस प्रकार की स्वाभाविक ध्वनियाँ मनुष्यों में ही नहीं और प्राणियों में भी विशेष-विशेष रूप की पाई जाती हैं। प्रारम्भ में ये ध्वनियाँ बहुत हमारे मनोरोगों की ही व्यंजक रही होंगी, विचारों की नहीं। भाषा का मुख्य उद्देश्य

हमारे विचारों को प्रकट करना होने से इन ध्वनियों ने भाषा के बनाने में जो भाग लिया, उसके लिए यह आवश्यक था कि ये ध्वनियाँ मनोरोगों के स्थान में विचारों की द्योतक समझी जाने लगी हों। इन्हीं ध्वनियों के दोहराने, कुछ देर तक बोलने और स्वर के उतार- चढ़ाव द्वारा इनके अर्थ या अभिधोय का क्षेत्र विस्तीर्ण होता गया होगा। धीरे-धीरे वर्णात्मक स्वरूप को धारण करके यही ध्वनियाँ मानवी भाषा के रूप में प्राप्त हो गई होंगी। इस प्रकार हमारी भाषा की नींव आदि में इन्हीं स्वाभाविक ध्वनियों पर रखी गई होंगी। इस सिद्धान्त का नाम हम मनोरोग-व्यंजक शब्द-मूलकता-वाद रख सकते हैं।'

उभय पक्ष ने अपने-अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में ग्रन्थ के ग्रन्थ लिख डाले हैं और बड़ा गहन विवेचन इस विषय पर किया है। परन्तु आजकल अधिकांश सम्मति यही स्वीकार करती है कि भाषा मनुष्यकृत और क्रमशः विकास का परिणाम है। श्रीयुत बाबू **नलिनीमोहन सान्याल** एम. ए. अपने भाषा-विज्ञान की प्रवेशिका में यह लिखते हैं-

''मैक्समूलर ने कहा है कि हम अभी तक यह नहीं जानते कि भाषा क्या है-यह ईश्वरप्रदत्ता है, या मनुष्यनिर्मित या स्वभावज। परन्तु उन्होंने पीछे से इसको स्वभावज माना है और बाद के दूसरे विद्वानों ने भी इसको स्वभावज प्रमाणित किया है।"

भाषा चाहे स्वभावज हो अथवा मनुष्यकृत, ईश्वर को उसका आदि कारण मानना ही पड़ेगा, क्योंकि स्वभाव उसका विकास है और मनुष्य स्वयं उसकी कृति है। मनुष्य जिन साधनों के आधार से संसार के कार्यकलाप करने में समर्थ होता है, वे सब ईश्वरप्रदत्ता हैं, चाहे उनका सम्बन्ध बाह्य जगत् से हो अथवा अन्तर्जगत् से। जहाँ पंचभूत और समस्त दृश्यमान जगत् में उसकी सत्ता का विकास दृष्टिगत होता है, वहाँ मन, बुद्धि, चित्ता, अहंकार, ज्ञान, विवेक, विचार आदि अन्तःप्रवृत्तियों में भी उसकी शक्ति कार्य करती पाई जाती है। ईश्वर न तो कोई पदार्थविशेष है, न व्यक्तिविशेष, वरन् जिस सत्ता के आधार से समस्त संसार, किसी महान् यंत्र के समान परिचालित होता रहता है, उसी का नाम है ईश्वर। संसार स्वयं विकसित अवस्था में है, किसी बीज ही से इसका विकास हुआ है। इसी प्रकार मनुष्य भी किसी विकास का ही परिणाम है, किन्तु उसका विकास संसार-विकास के अन्तर्गत है। कहने वाले कह सकते हैं कि मनुष्य लाखों वर्ष के विकास का फल है, अतएव वह ईश्वरकृत नहीं। किन्तु यह कथन ऐसा ही होगा, जैसा बहुवर्ष-व्यापी विकास के परिणाम किसी पीपल के प्रकाण्ड

वृक्ष को देखकर कोई यह कहे कि इसका सम्बन्ध किसी अनन्तकाल व्यापी बीज से नहीं हो सकता। भाषा चिरकालिक विकास का फल हो और उसके इस विकास का हेतु मानव-समाज ही हो किन्तु जिन योग्यताओं और शक्तियों के आधार से वह भाषा को विकसित करने में समर्थ हुआ, वे ईश्वरप्रदत्ता हैं, अतएव भाषा भी ईश्वरकृत है, वैसे ही जैसे संसार के अन्य बहुविकसित पदार्थ। भगवान् मनु के उपर्युक्त श्लोकों का यही मर्म है। प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से जिस प्रकार परमात्मा ने तप, रति, काम और क्रोध को उत्पन्न किया, उसी प्रकार वाणी को भी, यही उनका कथन है। जैसे कोई तप और काम को आदि से मनुष्य-कृत नहीं मानता, उसी प्रकार वाणी को भी मनुष्य-कृत नहीं कह सकता। मनुष्य की वाणी ही भाषा की जड़ है, वाणी ही वह चीज है, जिससे भाषा पल्लवित होकर प्रकाण्ड वृक्ष के रूप में परिणत हुई है, फिर वह ईश्वरकृत क्यों नहीं?

'यथेमां वाचं कल्याणी मा वदानि जनेभ्यरू', इस श्रुति में भी 'वाचं' शब्द है, भाषा शब्द नहीं। प्रथम श्लोक के वेद शब्देभ्य, वाक्य में भी शब्द का ही प्रयोग है, उस शब्द का जो आकाश का गुण है और आकाश के समान ही व्यापक और अनन्त है। वाणी मनुष्य-समाज तक परिमित है, किन्तु शब्द का सम्बन्ध प्राणिमात्र से है, स्थावर और जड़ पदार्थों में भी उसकी सत्ता मिलती है। यही शब्द भाषा का जनक है, ऐसी अवस्था में यह कौन नहीं स्वीकार करेगा कि भाषा ईश्वरीय कला की ही कला है। कोलरिक कहता है-

''भाषा मनुष्य का एक आत्मिक साधन है, इसकी पुष्टि **ट्रीनिच** ने इस प्रकार की है-ईश्वर ने मनुष्य को वाणी उसी प्रकार दी है, जिस प्रकार बुद्धि दी है, क्योंकि मनुष्य का विचार ही शब्द है, जो बाहर प्रकाशित होता है।'1

मैंने मनु भगवान के विचारों को स्पष्ट करन4 और भाषा की सृष्टि पर प्रकाश डालने के लिए अब तक जो कुछ लिखा है, उससे यह न समझना चाहिए कि ईश्वर और मनुष्य की कृति में जो विभेद सीमा है, उसको मैं मानना नहीं चाहता गजरे को हाथ में लेकर कौन यह न कहेगा कि यह माली का बनाया है, परंतु जिन फूलों से गजरा तैयार हुआ उनको उसने कहाँ पाया, जिस बुद्धि, विचार एवं हस्तकौशल से गजरा बना, उन्हें उसने किससे प्राप्त किया। यदि यह प्रश्न होने पर ईश्वर की ओर दृष्टि जाती है और उसके प्राप्त साधनों और कार्यों में ईश्वरीय विभूति दीख पड़ती है, तो गजरे को ईश्वर-कृत मानने में आपत्ति नहीं हो सकती, मेरा कथन इतना ही है। अनेक आविष्कार मनुष्यों के किये हैं, बड़े-बड़े नगर मनुष्यों के बनाये और बसाये हैं। उसने बड़ी-बड़ी नहरें निकालीं,

बड़े-बड़े व्योमयान बनाये, रेल-तार आदि का उद्‌भावन किया, ऊँची-ऊँची मीनारें खड़ी कीं, सहस्तो प्रकाण्ड प्रकाशस्तम्भ निर्माण किये, इसको कौन अस्वीकार करेगा। मनुष्य विद्याओं का आचार्य है, अनेक कलाओं का उद्‌भावक है, वरन् यह कहा जा सकता है कि ईश्वरीय सृष्टि के सामने अपनी प्रतिभा द्वारा उसने एक नयी सृष्टि ही खड़ी कर दी है, यह सत्य है, इसको हर कोई स्वीकार करेगा। परन्तु उसने ऐसी प्रतिभा कहाँ पाई, उपर्युक्त साधन उसको कहाँ मिले, जब यह सवाल छिड़ेगा, तो ईश्वरीय सत्ता की ओर ही उँगली उठेगी, चाहे उसे प्रकृति कहें या और कुछ। इसी प्रकार यह सत्य है कि संसार की समस्त भाषाएँ क्रमशः विकास का फल हैं, देश-काल और आवश्यकताएँ ही उनके सृजन का आधार हैं, मनुष्य का सहयोग ही उनका प्रधान सम्बल है, किन्तु सबमें अन्तर्निहित किसी महान शक्ति का हाथ है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। ऐसा कहकर न तो मैंने ईश्वर-दत्ता मनुष्य की बुद्धि और प्रतिभा आदि का तिरस्कार किया और न उनकी महिमा ही कम की। न वादग्रस्त विषय को अधिक जटिल बना दिया और न सुलझे हुए विषय को और उलझन में डाला। वरन् वास्तविक बात बतला, जहाँ मानव की आन्तरिक प्रवृत्तियों को ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न कहा, और इस प्रकार उन्हें विशेष गौरव प्रदान किया। वहाँ दो परस्पर टकराते और उलझते हुए विषयों के बीच में ऐसी बातें रखीं, जिनसे वर्द्धमान जटिलता बहुत कुछ कम हो सकती है और उभयपक्ष अधिकतर सहमत हो सकते हैं। संसार में जितनी भाषाएँ यथा समय विकसित होकर इस समय जीवित और कर्मक्षेत्र में, उतरकर रात-दिन कार्यरत हैं, उन्हीं में से एक हमारी हिन्दी-भाषा भी है। यह कैसे विकसित हुई, इसमें क्या-क्या परिवर्तन हुए, इसकी वर्तमान अवस्था क्या है? और उन्नति पथ पर वह किस प्रकार दिन-दिन अग्रसर हो रही है, मैं क्रमशः इन बातों का वर्णन करूँगा। आशा है यह वर्णन रोचक होगा।

द्वितीय प्रकरण

हिन्दी भाषा का उद्‌गम

आदि भाषा कौन है? सृष्टि के आदि में एक ही भाषा थी, अथवा कई। इस समय संसार में जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं, उनका मूल .ोत एक है अथवा भिन्न-भिन्न? आज तक इसकी पूरी मीमांसा नहीं हुई। इस समय जितनी भाषाएँ संसार में प्रचलित हैं, उनमें इण्डो-यूरोपियन एवं सेमिटिक भाषा की ही प्रधानता

है, इन्हीं दोनों भाषाओं का विस्तार अधिक है और इन्हीं के भेद-उपभेद अधिक पाये जाते हैं! इनके अतिरिक्त हैमिटिक और चीनी भाषा आदि और भी छः भाषाएँ ऐसी हैं, जो भिन्न-भिन्न वर्ग की हैं, और जिनमें एक का दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं पाया जाता। अब प्रश्न यह होता है कि इन भाषाओं का आधार एक है या वे स्वतन्त्र हैं। क्या मनुष्यों का उत्पत्ति-स्थान भिन्न-भिन्न है? यदि भिन्न-भिन्न है तो क्या भाषाएँ भी भिन्न-भिन्न रीति से ही भिन्न-भिन्न अवसरों पर आवश्यकतानुसार उत्पन्न हुई हैं? क्या मनुष्य मात्र एक माँ-बाप की ही सन्तान नहीं हैं, यदि हैं तो भाषा भी उनकी एक ही होनी चाहिए। जैसे देश-काल के अनुसार मनुष्यों में भेद हुआ, वैसे ही काल पाकर भाषा में भी भेद हो सकता है। परन्तु आदि में ही मनुष्यों और भाषाओं की भिन्नता उपपत्ति-मूलक नहीं ज्ञात होती। संसार के समस्त धर्म-ग्रन्थ एक स्वर से यही कहते हैं कि आदि में एक पुरुष एवं एक स्त्री से ही संसार का आरम्भ हुआ। यह विचार इतना व्यापक है कि अब तक इसका विरोध सम्मिलित कण्ठ से बलवती भाषा में बहुमान्य प्रणाली द्वारा नहीं हुआ। इसी कारण अनेक विद्वानों की सम्मति है कि सृष्टि के आदि में मनुष्य जाति की उत्पत्ति एक ही स्थान पर एक ही माता-पिता से हुई और इसलिए आदि में भाषा भी एक ही थी। मेरा विषय भाषा-सम्बन्धी है, अतएव मैं देखूँगा कि क्या कुछ विद्वान् ऐसे हैं कि जिनकी यह सम्मति है कि आदि में भाषा एक ही थी और काल पाकर उसमें परिवर्तन हुए हैं।

अक्षर-विज्ञान के रचयिता लिखते हैं-

सेमिटिक भाषाओं को आर्यभाषा से पृथक बतलाते हुए भी मैक्समूलर आगे चलकर कहते हैं कि आर्यभाषाओं के धातुरूप और अर्थ में सेमेटिक अराल-आटक, बण्टो और ओशीनिया की भाषाओं से मिलते हैं। अन्त में कहते हैं कि 'निस्सन्देह हम मनुष्य की मूलभाषा एक ही थी।'

मिस्टर बाप कहते हैं-''किसी समय संस्कृत सम्पूर्ण संसार की बोलचाल की भाषा थी,। **एण्ड्रो जकसन डेविस** कहते हैं-''भाषा भी जो एक आन्तरिक और सार्वजनिक साधन है, स्वाभाविक और आदिम है। भाषा के मुख्य उद्देश्य में कभी उन्नति का होना सम्भव नहीं, क्योंकि उद्देश्य सर्वदेशी और पूर्ण होते हैं, उनमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं हो सकता, वे सदैव अखंड और एकरस रहते हैं, (हारमोनिया, भाग-5 पृष्ठ 73-देखो, अक्षर-विज्ञान, पृष्ठ 4) आजकल यह सिद्धान्त आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता और इसके पक्ष-विपक्ष में बहुत बातें कही गई हैं। मैंने यहाँ इसकी चर्चा इसलिए की कि इस प्रकार के कुछ

विद्वान् हैं, जो आदि में किसी एक ही भाषा का होना स्वीकार करते हैं, यदि यह मान लें तो आगे के लिए हमारा पथ बहुत प्रशस्त हो जाता है, फिर भी मैं इस वादग्रस्त विषय को छोड़ता हूँ। मैं उस इण्डो-योरोपियन भाषा को ही लेता हूँ, जो संसार की सबसे बड़ी और व्यापक भाषा है। संस्कृत ही आदि में समस्त संसार की भाषा थी और वही कालान्तर में बदलकर नाना रूपों में परिणत हुई, यद्यपि इसका प्रतिपादन अनेक विद्वानों ने किया है, हाल में श्रीमान् **शेषगिरि शास्त्री** ने एक पृथक पुस्तक लिखकर भली प्रकार सिद्ध कर दिया है कि उन द्रविड़ भाषाओं की उत्पत्ति भी संस्कृत से हुई है, जो अन्य वर्ग की भाषाएँ मानी जाती हैं, तो भी इण्डो-योरोपियन भाषा की चर्चा ही से हम प्रस्तुत विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाल सकते हैं, इसलिए इसी भाषा को लेकर आगे बढ़ते हैं। कहा जाता है द्राविड़ भाषाओं को छोड़कर भारतवर्ष की समस्त भाषाएँ इण्डो-योरोपियन भाषा वर्ग की हैं, और उन्हीं से प्रसूत हुई हैं। हिन्दी भाषा भी इन्हीं भाषाओं में से एक है, अतएव विचारना यह है कि वह किस प्रकार इण्डो-योरोपियन भाषा से क्रमशः विकसित होकर इस रूप को प्राप्त हुई। इण्डो-योरोपियन भाषा से प्रयोजन उस वर्ग की भाषा से है, जिसका विस्तार योरोप के अधिकांश देशों, फारस और भारतवर्ष के अधिकतर प्रदेशों में है। पहले इसको इण्डो-योरोपियन भाषा कहते थे, परन्तु अब यह नाम बदल दिया गया है। कारण यह बतलाया गया है कि अब तक यह प्रमाणित नहीं हुआ कि योरोप वाले अपने को आर्य मानते थे अथवा नहीं। भारत वाले और ईरान वाले अपने को आर्य कहते थे, इसलिए इन प्रदेशों में जो इण्डो-योरोपियन भाषा की शाखाएँ प्रचलित हैं, उनको आर्य-परिवार की भाषा कह सकते हैं। आगे हम इन भाषाओं की चर्चा आर्य-परिवार के नाम से ही करेंगे।

आर्य-परिवार भाषा का आदिम रूप वैदिक संस्कृत में पाया जाता है। यद्यपि अनेक योरोपियन विद्वानों ने इस वैदिक संस्कृत को ही योरोपियन भाषाओं का भी मूल आधार माना है, परन्तु आजकल उसके स्थान पर एक मूल भाषा, लिखना ही पसन्द किया जाता है, जिसकी एक शाखा वैदिक संस्कृत भी मानी जाती है। इसका विशेष विवेचन आगे मिलेगा, यहाँ यह विचारणीय है कि वैदिक संस्कृत की भाषा साहित्यिक है, अथवा बोलचाल की। इस विषय में अपने 'पालिप्रकाश' (पृष्ठ 27-28)नामक ग्रन्थ में बंगाल प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान श्री विधुशेखर शास्त्री ने जो लिखा है, उसका अनुवाद मैं आप लोगों के सामने रखता हूँ-"परिवर्तनशीलता बोलचाल की भाषा का

स्वभाव है। यह चिरकाल तक एक भाव से नहीं रहती। देश-काल और व्यक्ति-भेद से भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है। वैदिक भाषा में यह बात पाई जाती है, उसमें एक वाक्य का भिन्न प्रयोग देखा जाता है। उस समय कोई कहता क्षुद्रक कोई कहता क्षुल्लक। एक बोलता युवाम् तो दूसरा युवम। किसी के मुख से पश्चात् सुना जाता और किसी के मुख से पश्चाय कोई युष्मासु और कोई युष्मे कहता। इसी प्रकार देवाः देवासः श्रवण-श्रोणा-अवधोतयति, अवज्योतयति-इत्यादि भिन्न प्रकार का व्यवहार होता। कोई किसी-किसी स्थान पर प्रातिपदिक शब्दों के बाद विभक्तियों का प्रयोग बिलकुल नहीं करता (जैसे परमेव्योमन्), कोई करता। कोई किसी शब्द का कोई अंश लोप करके उसका उच्चारण करता जैसे (''त्मना''), कोई ऐसा नहीं करता। कोई विशेषण के अनुसार विशेषण के लिंगादि को भी ठीक करके उसका व्यवहार करता, कोई इसकी परवाह नहीं करता, जिसमें सुविधा होती, वही करता (जैसे 'बहुलापृथूनि भुवनानि विश्वा') कभी कोई संयुक्त वर्ण के पूर्वस्थित दीर्घस्वर को ह्रस्व करके उच्चारण करता (जैसे रोदसिप्राम) और अनेक अवस्थाओं में ऐसा नहीं करता। एक मनुष्य किसी अक्षर को, जैसे उच्चारण करता, दूसरा उसको दूसरे प्रकार से कहता। एक ड किसी स्थान पर ल और कहीं ल् उच्चरित होता (देखें ऋ. प्रा. 1-10-11) पदान्त में वर्ग के तृतीय वर्ण को और दूसरे उसके प्रथम वर्ण का उच्चारण करते। जिनका वैदिक भाषा के साथ थोड़ा परिचय भी है, वे भली-भाँति जानते हैं कि वैदिक भाषा में इस प्रकार प्रयोगों की कितनी भिन्नता है। यह बात भली-भाँति प्रमाणित करती है कि वैदिक भाषा बोलचाल की भाषा थी''।

संभव है कि यह विचार सर्वसम्मत न हो, परन्तु प्रश्न यह है कि जो मूल भाषा की पुकार मचाते हैं, उनसे यदि पूछा जावे कि आपकी 'मूल भाषा का' रूप कहीं कुछ पाया जाता है तो वैदिक मंत्रों को छोड़ वे किसकी ओर उँगली उठावेंगे। ऋग्वेद ही संसार की लाइब्रेरी में सबसे प्राचीन पुस्तक है, जो उसमें मूल भाषा प्रतिफलित नहीं, तो फिर उसका दर्शन किसी दूसरी जगह नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि साहित्यिक होने से किसी भाषा का रूप बिलकुल नहीं बदल जाता। उसकी विशेषताएँ उसमें मौजूद रहती हैं, अन्यथा उस भाषा की रचना हो ही नहीं सकती। क्या ग्राम-साहित्य की रचनाओं में बोलचाल की भाषा का वास्तविक रूप नहीं मिलता। साहित्यगत साधारण परिवर्तन भाषा के मुख्य स्वरूप का बाधक कदापि नहीं।

योरोपियन विद्वान कहते हैं कि वैदिक काल से पहले एक विशाल जाति मध्य एशिया में रहती थी, जब यह विभक्त हुई तो इसमें से कुछ लोग योरोप की ओर गये, और कुछ ईरान एवं भारतवर्ष में पहुँचे और अपने-अपने उपनिवेश वहाँ स्थापित किये। किन्तु भारतीय आर्य-साहित्य में इसका पता नहीं चलता। वैदिक और लौकिक संस्कृत-साहित्य का भण्डार बड़ा विस्तृत है, उसमें साधारण से साधारण बातों का वर्णन है, किन्तु इस बात की चर्चा कहीं नहीं है, आर्यजाति बाहर से भारतवर्ष में आई। इसलिए अनेक आर्य विद्वान् योरोपियन सिद्धान्त को नहीं मानते। उनका विचार है कि आर्यजाति का आदि निवास-स्थान भारतवर्ष ही है और यहीं से वह दूसरे स्थानों में गई हैं। हिन्दू सुपीरियरटी, में इसका अच्छा वर्णन है। बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान् **खुरशेदजी रुस्तमजी** ने बम्बई की ज्ञान-प्रसारक मंडली के उद्योग से एक बार 'मनुष्यों का मूल जन्म स्थान कहाँ था, इस विषय पर एक व्याख्यान दिया था, उसका सारांश यह है-

''जहाँ से सारी मनुष्य-जाति संसार में फैली, उस मूल स्थान का पता हिन्दुओं, पारसियों, यहूदियों और क्रिश्चियनों के धर्म-पुस्तकों से इस प्रकार लगता है कि वह स्थान कहीं मध्य एशिया में था। योरोप-निवासियों की दन्त-कथाओं में वर्णित है कि, हमारे पूर्व राजा कहीं उत्तर में रहते थे। पारसियों की धर्म-पुस्तकों में लिखा है कि जहाँ आदि सृष्टि हुई, वहाँ दस महीने सर्दी और दो महीने गर्मी रहती है। **एटुअर्ट, एलफिन्स्टन, वरनस** आदि यात्रियों ने मध्य एशिया में भ्रमण करके बतलाया है कि हिन्दूकुश और उसके निकटवर्ती पहाड़ों पर 10 महीने सर्दी और दो महीने गर्मी होती है। उनके ऊपर से चारों ओर नदियाँ बहती हैं। इस स्थान के ईशानकोण में 'वालूतार्ग' तथा 'मुसावरा' पहाड़ है। ये पहाड़ 'अलवुर्ज' के नाम से पारसियों की धर्म-पुस्तकों और अन्य इतिहासों में लिखे हैं। 'वालूतार्ग' से 'अमू' अथवा 'आक्षस' और जेक जार्टस नाम की नदियाँ 'अरत' सरोवर में होकर बहती हैं। इसी पहाड़ में से निकल कर 'इन्डस' अथवा सिन्धु नदी दक्षिण की ओर बहती है। इसी ओर के पहाड़ों में से प्रसूत होकर बड़ी-बड़ी नदियाँ पूर्व ओर चीन में और उत्तर ओर साइबेरिया में प्रवेश करती हैं। ऐसे रम्य और शान्त स्थान में पैदा हुए लोग अपने को आर्य कहते थे, और स्वर्ग कहकर उसका आदर करते थे?"

यह प्रदेश भारतवर्ष के उत्तर में है, और हिन्दूकुश से तिब्बत तक फैला हुआ है, इसी के अन्तर्गत, सुमेरु तथा कैलास जैसे पुराण-प्रसिद्ध पर्वत और मानसरोवर समान प्रशंसित महासरोवर है। यहीं किन्नर और गन्धर्व रहते हैं, जो

स्वर्ग-निवासी बतलाये गये हैं। तिब्बत का दक्षिणी भाग हमारे आराध्य हिमालय का ही एक अंश है, इसीलिए उसका संस्कृत नाम भी स्वर्ग का पर्यायवाची है-अमर कोशकार लिखते हैं-

स्वरव्ययं स्वर्ग नाक त्रिदिव त्रिदशालया।
सुरलोको द्यौ दिवौ द्वे स्त्रियाँ क्लीवे त्रिविष्टपड्ड

ऋग्वेद में कन्धार-निवासी आर्य-समुदाय के राजा दिवोदास और सिन्धुनद के समीप बसने वाली आर्य जनता के राजा सुदास का वर्णन मिलता है, इसके उपरान्त गंगा-यमुना कूल के मन्त्रों की रचना का पता चलता है। इससे पाया जाता है कि कंधार अथवा गांधार से ही आर्य-लोग पूर्व और दक्षिण की ओर बढ़े, यदि गांधार के पश्चिमोत्तर प्रदेश से वे आगे बढ़ते तो उनका वर्णन ऋग्वेद में अवश्य होता। किन्तु ऐसा नहीं है। इसीलिए इसी सिद्धान्त को स्वीकार करना पड़ता है कि आर्य जाति की उत्पत्ति हिमालय के पवित्र अंक में ही हुई है, और वहीं से वे भारत के और प्रदेशों में फैले हैं। **स्वामी दयानन्द सरस्वती** ने भी सत्यार्थ-प्रकाश में यही लिखा है-

'आदि सृष्टि त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत में हुई'

यदि यह तर्क किया जावे कि फिर आर्य जाति का प्रवेश योरोप में कैसे हुआ, तो इसका उत्तर यह है कि जो जाति अपने जन्म-स्थान से पूर्व और दक्षिण की ओर बढ़ी, क्या वह पश्चिम और उत्तर को नहीं बढ़ सकती, हिमालय पर्वत से निकली हुई नदियाँ यदि साइबीरिया तक पहुँच सकती हैं, तो उस प्रदेश में निवास करने वाली जनता योरोप में क्यों नहीं पहुँच सकती। भले ही हिमालय समीपवर्ती प्रान्त मध्य एशिया में न हो, किन्तु क्या वे मध्य एशिया के निकटवर्ती नहीं। किसी विद्वान् ने निश्चित रूप से अब तक यह नहीं बतलाया कि मध्य एशिया के किस स्थान से आर्य लोग पूर्व और पश्चिम को बढ़े। अब तक स्थान के विषय में तर्क-वितर्क है, कोई किसी स्थान की ओर संकेत करता है, कोई किसी स्थान की ओर। ऐसी अवस्था में यदि हिमालय प्रदेश को ही यह स्थान स्वीकार कर लिया जावे, तो क्या आपत्ति हो सकती है। महाभारत और पुराणों में ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनमें भारतीय जनों की योरोपीय और अमरीका आदि जाने की चर्चा है। राजा सगर ने अपने सौ पुत्रों को क्रुद्ध होकर जब भारतवर्ष में नहीं रहने दिया, तब वे देशान्तरों में गये, और वहाँ उपनिवेश स्थापित किये। इसी प्रकार की और कथाएँ हैं, उनकी चर्चा बाहुल्यमात्रा होगा।

चाहे हम यह मानें कि मध्य एशिया से आर्य लोग भारतवर्ष में आये, चाहे यह कि वे हिमालय के उत्तर-पश्चिम भाग में उत्पन्न हुए और वहीं से भारतवर्ष में फैले, दोनों बातें ऐसी हैं, जो बतलाती हैं, कि ज्यों-ज्यों वे भारतवर्ष में फैलने लगे होंगे, त्यों-त्यों उनकी बोलचाल की भाषा में स्थान और जलवायु के विभेद से अन्तर पड़ने लगा होगा। ऋग्वेद में इस बात का भी वर्णन है कि इन आर्यों का संघर्ष भी उन लोगों से बराबर चलता रहा, जो उस समय भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में वास करते थे। इन लोगों की भी कोई भाषा अवश्य होगी, इसीलिए दोनों की भाषाओं का परस्पर सम्मिश्रण भी अनिवार्य था। धीरे-धीरे काल पाकर वैदिक भाषा के अनेक शब्द विकृत हो गये, क्योंकि उनका शुद्ध उच्चारण सर्वसाधारण द्वारा नहीं हो सकता था। एक शब्द को लोग पहले भी विभिन्न प्रकार से बोलते थे, अब इसकी और वृद्धि हुई। आवश्यकतानुसार अनार्य भाषा के कुछ शब्द भी उसमें मिल गये, इसलिए काल पाकर बोलचाल की एक नई भाषा की सृष्टि हुई। इसी को पहली प्राकृत अथवा आर्य प्राकृत कहा गया है। इसी प्राकृत का अन्यतम रूप पाली अथवा मागधी है। कहा जाता है कि इस भाषा में वैदिक संस्कृत के शब्दों को बेतरह विकृत होते देखकर आर्य विद्वानों को विशेष चिन्ता हुई, अतएव उन्होंने उसकी रक्षा और उसके संस्करण का प्रयत्न किया और इस प्रकार लौकिक संस्कृत की नींव पड़ी। अनेक विद्वानों ने इस लौकिक संस्कृत से ही सब प्राकृतों की उत्पत्ति मानी है। यह बड़ा वादग्रस्त विषय है, अतएव मैं इस पर विशेष प्रकाश डालना चाहता हूँ। पालीभाषा अथवा मागधी के विषय में भी तरह-तरह की बातें कही गई हैं, वे भी विचारणीय हैं, अतएव मैं अब इन्हीं विषयों की ओर प्रवृत्त होता हूँ, जहाँ तक विचार किया गया, निम्नलिखित तीन सिद्धान्त इस विवाद के आधार हैं-

यह कि समस्त प्राकृतों की जननी संस्कृत भाषा है-

1. यह कि प्राकृत स्वयं स्वतन्त्र और मूल भाषा है, व न तो वैदिक भाषा से उत्पन्न हुई, न संस्कृत से-
2. यह कि प्राचीन वैदिक भाषा ही वह उद्‌गम स्थान है, जहाँ से समस्त प्राकृत भाषाओं के स्रोत प्रवाहित हुए हैं, संस्कृत भी उसी का परिमार्जित रूप है।

सबसे पहले प्रथम सिद्धान्त को लीजिए उसके प्रतिपादक संस्कृत और प्राकृत भाषा के कुछ वावदूक विवुधा और हमारी हिन्दी भाषा के धुरन्धर विद्वान् हैं, वे कहते हैं-

'प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्'

वैयाकरण हेमचन्द्र

'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्'

प्राकृतचन्द्रिकाकार

'प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः'

प्राकृत संजीवनीकार

''यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि प्रकृति संस्कृत होने पर भी कालान्तर में प्राकृत एक स्वतन्त्र भाषा मानी गई।'

स्व. पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र

''संस्कृत प्रकृति से निकली भाषा ही को प्राकृत कहते हैं'।

स्व. पण्डित बदरी नारायण चौधरी।

अब दूसरे सिद्धान्त वालों की बात सुनिए। इनमें अधिकांश बौद्ध और जैन विद्वान हैं। अपने 'पयोग सिद्धि' ग्रन्थ में **कात्यायन** लिखते हैं-

'सा मागधी मूल भासा नरायायादि कप्पिका
ब्राह्मणो च स्सुतालापा सम्बुद्धा चापिभासरे।'

आदि कल्पोत्पन्न मनुष्यगण, ब्राह्मणगण, सम्बुद्धगण और जिन्होंने कोई वाक्यालाप श्रवण नहीं किया है, ऐसे लोग जिसके द्वारा बातचीत करते हैं, वही मागधी मूल भाषा है।

'पतिसम्विधा अत्वूय', नामक ग्रन्थ में लिखा है-

''मागधी भाषा देवलोक, नरलोक, प्रेतलोक और पशुजाति में सर्वत्र प्रचलित है। किरात, अन्धाक, योणक, दामिल, प्रभृति भाषाएँ परिवर्तनशील हैं, किन्तु मागधी आर्य और ब्राह्मणगण की भाषा है। इसलिए अपरिवर्तनीय और चिरकाल से समानरूपेण व्यवहृत है।'

महारूपसिद्धिकार लिखते हैं-'मागधिकाय स्वभाव निरुत्तिया' मागधी स्वाभाविक (अर्थात् मूलभाषा) है।

अपने पाली भाषा के व्याकरण की अंग्रेजी भूमिका में श्रीयुत **सतीश चन्द्र विद्याभूषण** लिखते हैं-

''धीरे-धीरे मागधी में जो इस देश में बोली जाती थी, बहुत से परिवर्तन हुए, और आजकल की भाषाएँ, जैसे बंगाली, मरहठी, हिन्दी और उड़िया इत्यादि उसी से उत्पन्न हुई हैं।'1

जैनेरा अर्धा मागधी भाषा केई आदि भाषा वलियामने करेन

जैन लोग अर्द्ध मागधी भाषा को ही आदि भाषा मानते हैं।

बंगला विश्वकोश, पृष्ठ 438

अब तीसरे सिद्धान्त वालों का विचार सुनिए। यह दल समधिक पुष्ट है, इसमें पाश्चात्य विद्वान् तो हैं ही, भारतीय विद्वानों की संख्या भी न्यून नहीं है। क्रमशः अनेक विद्वानों की सम्मति मैं आप लोगों के सामने उपस्थित करता हूँ। जर्मन विद्वान् **वेबर** कहते हैं-''वैदिक भाषा से ही एक ओर सुगठित ओर सुप्रणालीबद्ध होकर संस्कृत भाषा का जन्म और दूसरी ओर मानव प्रकृति सिद्ध और अनियत वेग से वेगवान प्राकृत भाषा का प्रचलन हुआ। प्राचीन वैदिक भाषा ही क्रमशः बिगड़कर सर्वसाधारण के मुख से प्राकृत भाषा हुई''-

बंगला विश्वकोश, पृष्ठ 433

श्रीमान् विधुशेखर शास्त्री अपने पालि प्रकाश नामक बंगला ग्रन्थ में क्या लिखते हैं, उसे भी देखिए-

'आर्यगण की वेदभाषा और अनार्यगण की साधारण भाषा में एक प्रकार का सम्मिश्रण होने से बहुत से अनार्य शब्द वर्तमान कथ्य वेद भाषा के साथ मिश्रित हो गये, इस सम्मिश्रणजात भाषा का नाम ही प्राकृत है'।

पालि-प्रकाश प्रवेशक, पृष्ठ 36

हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पण्डित **महावीर प्रसाद द्विवेदी** की यह अनुमति है-

'हमारे आदिम आर्यों की भाषा पुरानी संस्कृत थी, उसके कुछ नमूने ऋग्वेद में वर्तमान हैं, उसका विकास होते-होते कई प्रकार की प्राकृतें पैदा हो गईं, हमारी विशुद्ध संस्कृत किसी पुरानी प्राकृत से ही परिमार्जित हुई है।'

अब मैं देखूँगा इन तीनों सिद्धान्तों में से कौन-सा सिद्धान्त विशेष उपपत्ति मूलक है। शब्द शास्त्र की गुत्थियों को सुलझाना सुलभ नहीं, लोग जितना ही इसको सुलझाते हैं, उलझन उतनी ही बढ़ती है। बहुत कुछ छानबीन हुई, किन्तु भाषा-विज्ञान का अगाध रत्नाकर आज भी बिना छाने हुए पड़ा है। उसे सौ-सौ तरह से छाना गया, किन्तु रत्न का हाथ आना सबके भाग्य में कहाँ! मैं उस उद्योग में नहीं हूँ, न मुझमें इतनी योग्यता है, न मैं इस घनीभूत अन्धकार में प्रवेश करने के लिए सुन्दर आलोक प्रस्तुत कर सकता हूँ, केवल मैं विचारों का दिग्दर्शन मात्र करूँगा। प्रथम सिद्धान्त के विषय में मैं कुछ विशेष नहीं लिखना चाहता। वेदभाषा को प्राचीन संस्कृत कहा जाता है, कोई-कोई वेदभाषा को वैदिक और पाणिनि काल की और उसके बाद के ग्रन्थों की भाषा को लौकिक संस्कृत कहते हैं।

प्रथम सिद्धान्त वालों ने संस्कृत से ही प्राकृत की उत्पत्ति बतलायी है। यदि संस्कृत से वैदिक संस्कृत अभिप्रेत है, तो प्रथम सिद्धान्त तीसरे सिद्धान्त के अन्तर्गत हो जाता है, और विरोध का निराकरण होता है। परन्तु वास्तव बात यह है कि प्रथम सिद्धान्त वालों का अभिप्राय वैदिक संस्कृत से नहीं वरन् लौकिक संस्कृत से है क्योंकि षड्भाषा चन्द्रिकाकार यह लिखते हैं–

भाषा द्विध संस्कृत च प्राकृती चेति भेदतः।
कौमार पाणिनीयादि संस्कृत संस्कृत मता।
प्रकतेः संस्कृतयास्तु विकृतिः प्राकृता मता।

अतएव दोनों सिद्धान्तों का परस्पर विरोधी होना स्पष्ट है। आइए, प्रथम सिद्धान्त की सारवत्ता का विचार करें। शिक्षा नामक वेदांग के पाँचवें अध्याय की यह अर्द्धश्लोक कि ''प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्ता स्वयंभुवा' इस विषय को बहुत कुछ स्पष्ट करता है। इसका अर्थ है स्वयं आदि पुरुष प्राकृत अथवा संस्कृत बोलते थे। इस श्लोक में प्राकृत को अग्र स्थान दिया गया है, जो पश्चाद्वर्ती संस्कृत को उसका पश्चाद्वर्ती बनाता है। इसलिए लौकिक संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती। दूसरी बात यह है कि प्राकृत भाषा में अनेक ऐसे शब्द मिलते हैं कि जिनका लौकिक संस्कृत में पता तक नहीं चलता। परन्तु वे शब्द वैदिक संस्कृत अथवा वैदिक भाषा में पाये जाते हैं। इससे यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि प्राकृत की उत्पत्ति यदि हो सकती है, तो वैदिक भाषा से हो सकती है, लौकिक संस्कृत से नहीं। शब्द व्यवहार की दृष्टि से प्राकृत भाषा, जितनी वेद भाषा की निकटवर्ती है, संस्कृत की नहीं। बोलचाल की भाषा होने के कारण वैदिक भाषा में वे शब्द मिलते हैं, जो प्राकृत में उसी रूप में आये, परन्तु संस्कार हो जाने के कारण लौकिक संस्कृत में उनका अभाव हो गया। यदि संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति हुई होती, तो इस प्रकार के शब्द उसमें अवश्य मिलते, जब नहीं मिलते तब संस्कृत से उसकी उत्पत्ति मानना युक्तिसंगत नहीं। इस प्रकार के कुछ शब्दों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

प्राकृत में पद का आदि वर्णगत 'र' और 'य' प्रायः लोप हो जाता है। जैसे संस्कृत ग्राम प्राकृत में गाम होगा और व्यवस्थित होगा ववत्थित! वैदिक भाषा में भी इस प्रकार का प्रयोग पाया जाता है, जैसे–अप्रगल्भ के स्थान पर अपगल्भ (तै. स. 4, 5, 6, 1) त्रि. ऋच् से त्रयच् पद न होकर त्रिच और तृच होता है (शत. ब्रा. 1, 3, 3, 33) कात्यायन श्रौत सूत्र में भी इस प्रकार का प्रयोग

देखा जाता है। **यास्क** कहते हैं-''अथापि द्विवर्ण लोपस्तृच:'(नि. 2, 1, 2) अर्थात् यहाँ त्रिशब्द के रकार और इकार दोनों लोप हो गये।

प्राकृत में संयुक्त वर्ण का पूर्ववर्ती दीर्घ स्वर प्राय: ह्रस्व हो जाता है। जैसे-मात्रा, मत्ता इत्यादि। वैदिक भाषा में भी इस प्रकार का प्रयोग देखा जाता है। जैसे रोदसीप्रा रोदसिप्रा (ऋ. सं. 10, 88, 10) अमात्र-अमत्र (ऋ. स. 3। 36। 4)-

प्राकृत में अनेक स्थानों पर संयुक्त वर्ण के स्थान पर एक व्यंजन का लोप करके पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है, जैसे कर्त्तव्य-कातव्य, निश्वास-नीसास, दुहरि-दूहार। वैदिक भाषा में भी ऐसा होता है, जैसे-दुर्दभ-दूडभ, (ऋ. सं. 4, 9, 8)दुर्नाश-दूणाश (श्रु. प्रा. 3, 43)-

प्राकृत में बहुत स्थान पर ऋकार के स्थान पर उकार होता है, जैसे ऋतु-उतु अथवा उदु इत्यादि। वैदिक साहित्य में भी इस प्रकार का प्रयोग अलभ्य नहीं है-यथा वृन्द-वुन्द (द्रष्टव्यानि. 6-6-4-6)

प्राकृत में बहुत स्थान पर दकार डकार हो जाता है। जैसे दहति-डहति, दण्ड-डण्ड। वैदिक साहित्य में भी ऐसा होता है-जैसे दुर्दभ-दूडभ (बा.स. 3, 36) पुरोदाश-पुरोडाश (श्रु.प्रा. 3, 44 शत. प्रा., 5, 1, 5)

प्राकृत में अव के स्थान पर उकार और अय के स्थान पर एकार हो जाता है। जैसे अवहसति-उहसित, नयति-नेति। वैदिक साहित्य में भी इस प्रकार का बहुत अधिक प्रयोग मिलता है। यथा-श्रवण-श्रोण, (तै. ब्रा. 1, 5, 1, 4-5, 2, 9) अन्तरयति-अन्तरेति (शत. ब्रा. 1, 2, 2, 18)-

प्राकृत में 'द्य' के स्थान पर 'ज' होता है और प्राकृत नियमानुसार स्थान-विशेष में यह जकार द्वित्व को प्राप्त होता है। यथा-द्युति-जुति, विद्या-विज्जा। वैदिक भाषा में इस प्रकार का प्रयोग बहुत अधिक पाया जाता है, अन्तर केवल इतना है कि यहाँ 'य' कार का लोप नहीं होता है। जैसे-द्योतिस-ज्योतिस, द्योतते-ज्योतते, द्योतय-ज्योतय (व्यथ. स. 4, 37, 10) अवद्योतयति-अवज्योतयति (शत. ब्रा. 1, 2, 3, 3, 36) अवद्योत्तय-अवज्योत्य (का. श्रो. 4, 14, 5)।

दूसरा सिद्धान्त क्या है, मैं उसका परिचय दे चुका हूँ। वह मागधी को आदि कल्पोत्पन्न मूल भाषा, आदि भाषा और स्वाभाविक भाषा मानता है। यदि इस भाषा का अर्थ वैदिक भाषा के अतिरिक्त सर्वसाधारण में प्रचलित भाषा है, तो वह सिद्धान्त बहुत कुछ माननीय है। क्योंकि महर्षि **पाणिनि** के प्रसिद्ध सूत्रों में वेद अथवा उसमें प्रयुक्त भाषा, छन्द, मंत्र, निगम आदि नामों से अभिहित है,

यथा-विभाषाछन्दसि (1, 2, 36 अयस्मयादिनिछन्दसि) (1, 4, 20) नित्यं मन्त्रो (6, 1, 10) जनितामन्त्रो (9, 4, 53) वावपूर्वस्या निगमे (6, 4, 9) ससूर्वतिनिगमे (6, 4, 74)! परन्तु भाषाओं के लिए लोक, लौकिक अथवा भाषा शब्द का ही उपयोग उन्होंने किया है। यथा-विभाषा भाषायाम् (9, 1, 81) स्थेच भाषायाम् (6, 3, 20)प्रथमायाश्चद्विवचने भाषायाम् (7, 2, 88) पूर्वं तु भाषायाम् (8, 2, 98)। परन्तु वास्तव बात यह नहीं है, वरन् वास्तव बात यह है कि मागधी को मूलभाषा अथवा आदि भाषा कहकर वेद भाषा पर प्रधानता दी गई है, क्योंकि वह अपरिवर्तनीय मानी गई है और कहा गया है कि नरलोक के अतिरिक्त उसकी व्यापकता देवलोक तक है, प्रेतलोक और पशु जाति में भी वह सर्वत्र प्रचलित है। धार्मिक संस्कार सभी धर्म वालों के कुछ न कुछ इसी प्रकार के होते हैं, ऐसे स्थलों पर वितण्डावाद व्यर्थ है, केवल देखना यह है कि भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह विचार कहाँ तक युक्तिसंगत है, और पुरातत्त्ववेत्ताा क्या कहते हैं। वैदिक भाषा की प्राचीनता, व्यापकता और उसके मूल भाषा अथवा आदि भाषा होने के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों की सम्मति मैं नीचे उद्धत करता हूँ, उनसे इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ेगा। निम्नलिखित अवतरणों में संस्कृत भाषा से वैदिक संस्कृत अभिप्रेत है, न कि लौकिक संस्कृत।

''सर्वज्ञात भाषाओं में से संस्कृत अतीव नियमित है, और विशेषतया इस कारण अद्‌भुत है कि उसमें योरप की अद्यकालीन भिन्न-भिन्न भाषाओं और प्राचीन भाषाओं के धातु हैं।

मिस्टर कूवियर

''यह देखकर कि भाषाओं की एक बड़ी संख्या का प्रारम्भ संस्कृत से है, या यह कि संस्कृत से उसकी समधिाक समानता है, हमको बड़ा आश्चर्य होता है और यह संस्कृत के बहुत प्राचीन होने का पूरा प्रमाण है। रेडियर नामक एक जर्मन लेखक का यह कथन है कि संस्कृत सौ से ऊपर भाषाओं और बोलियों की जननी है। इस संख्या में उसने बारह भारतवर्षीय, सात मिडियन फारसी, दो अरनाटिक अलबानियन, सात ग्रीक, अठारह लेटिन, चौदह इसल्केवानियन और छः गेलिक केल्टिक को रखा है।'

लेखकों की एक बड़ी संख्या ने संस्कृत को ग्रीक और लैटिन एवं जर्मन भाषा की अनेक शाखाओं की जननी माना है। या इनमें से कुछ को संस्कृत से उत्पन्न हुई, किसी दूसरी भाषा द्वारा निकला पाया है, जो कि अब नाश हो चुकी

है। **सर विलियम जोन्स** और दूसरे लोगों ने संस्कृत का लगाव पारसी और जिन्द भाषा से पाया है।

हालहेड ने संस्कृत और अरबी शब्दों में समानता पाई है, और यह समानता केवल मुख्य-मुख्य बातों और विषयों में ही नहीं, वरन् भाषा की तह में भी उन्हें मिली है। इसके अतिरिक्त इण्डोचाइनीज और उस भाग की दूसरी भाषाओं का भी उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। -मिस्टर एडलिंग

'पुरातन ब्राह्मणों ने जो ग्रन्थ हमें दिये हैं, उनसे बढ़कर निर्विवाद प्राचीनता के ग्रन्थ पृथ्वी पर कहीं नहीं मिलते।'' - मिस्टर हालहेड-

''जिन्द के दश शब्दों में 6 या 7 शब्द शुद्ध संस्कृत हैं।'' -मिस्टर हैमर

''जिन्द और वैदिक संस्कृत का इतना अन्तर नहीं जितना वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत का है।'' -मैकडानैल

संसार की आर्यजातीय भाषाओं के साथ वैदिक भाषा का सम्बन्ध प्रकट करने के लिए, मैं यहाँ कुछ शब्दों को भी लिखता हूँ।

संस्कृत मीडी यूनानी लैटिन अंग्रेजी फारसी
पितृ पतर पाटेर पेटर फादर पिदर
मातृ मतर माटेर मेटर मदर मादर
भ्रातृ व्रतर फाटेर फेटर ब्रदर बिरादर
नाम नाम ओनोमा नामेन नेम नाम
अस्मि अह्मि ऐमी एम ऐम अस

अवतरणों को पढ़ने और ऊपर के शब्दों का साम्य देखकर यह बात माननी पड़ेगी कि वैदिक भाषा अथवा आर्य जाति की वह भाषा जिसका वास्तव और व्यापक रूप हमको वेदों में उपलब्ध होता है, आदि भाषा अथवा मूल भाषा है। आजकल के परिवर्तन और नूतन विचारों के अनुसार यदि संसार भर अथवा योरोपियन भाषाओं की जननी उसे न मानें तो भी आर्य परिवार की जितनी भाषाएँ हैं, उनकी आधारभूता और जन्मदात्री तो उसे हमें मानना ही पड़ेगा और ऐसी अवस्था में मागधी भाषा को मूल भाषा अथवा आदि भाषा कहना कहाँ तक युक्तिसंगत होगा, आप लोग स्वयं इसको सोच सकते हैं।

पालि-प्रकाशकार एक स्थान पर लिखते हैं ''पालि भाषा का दूसरा नाम मागधी है और यह उसका भौगोलिक नाम है, (पृष्ठ 13) दूसरे स्थान पर वे कहते हैं, ''मूल प्राकृत जब इस प्रकार उत्पन्न हुई, तो उसके अन्यतम भेद पाली की उत्पत्ति का कारण भी यही है, यह लिखना बाहुल्य है (पृष्ठ 48)।' इन

अवतरणों से क्या पाया जाता है, यही न कि पाली अथवा मागधी से मूल प्राकृत की प्रधानता है, ऐसी अवस्था में वह आदि और मूल भाषा कैसे हुई! तात्कालिक कथ्य वेद भाषा के साथ अनार्य भाषा का सम्मिश्रण होने से जो भाषा उत्पन्न हुई, उसे वे मूल प्राकृत मानते हैं (पृष्ठ 36) अतएव मूल प्राकृत भाषा कथ्य वेद भाषा की पुत्री हुई। अतः वेद भाषा उसकी भी पूर्ववर्ती हुई, फिर पाली अथवा मागधी मूल भाषा किम्बा आदि भाषा कैसे कही जा सकती है। विश्वकोशकार ने वैदिक संस्कृत से आर्ष प्राकृत, पाली और उसके बाद की प्राकृत का सम्बन्ध प्रकट करने के लिए शब्दों की एक लम्बी तालिका पृष्ठ 434 में दी है, उनके देखने से यह विषय और स्पष्ट हो जायेगा। अतएव उसके कुछ शब्द यहाँ उठाये जाते हैं। विश्वकोशकार ने पालि-प्रकाशकार के मूल प्राकृत के स्थान पर आर्य प्राकृत लिखा है, यह नामान्तर मात्र है-

संस्कृत आर्ष प्राकृत पाली प्राकृत
अग्निः अग्गि अग्नि अग्गी
बुद्धिः बुद्धि बुद्धि बुद्धी
मया मये, में मया मये, मइये, ममए
त्वम् तां, तुमन् तां, तुवम् तं, तुमं, तुवम्
षोडश सोलस सोलस सोलह
विंशति वीसा वीसति, वीसम् वीसा
दधि दहि, दहिम् दधि दहि, दहिम्

प्राकृत लक्षणकार **चण्ड** ने आर्ष प्राकृत को, प्राकृत प्रकाशकार **वररुचि** ने महाराष्ट्री को, पयोगसिद्धिकार **कात्यायन** ने मागधी को और जैन विद्वानों ने अर्धा मागधी को आदि प्राकृत अथवा मूल प्राकृत लिखा है। पालि प्रकाशकार एक स्थान पर (पृष्ठ 48) पाली को सब प्राकृतों से प्राचीन बतलाते हैं, कुछ लोग पाली और मागधी को दो भाषा समझते हैं, अपने कथन के प्रमाण में दोनों भाषाओं के कुछ शब्दों की प्रयोग भिन्नता दिखलाते हैं, ऐसे कुछ शब्द नीचे लिखे जाते हैं-

संस्कृत पाली मागधी
शश ससा मो
कुक्कुट कुक्कुटो रो
अश्व अस्स सांगा
श्वान सुनका साच
व्याघ्र व्यघ्घो वी

जो अभेदवादी हैं, वे इन शब्दों को मागधी भाषा के देशज शब्द मानते हैं। जो हो किन्तु अधिकांश विद्वान् पाली और मागधी को एक ही मानते हैं। कारण इसका यह है कि बुद्धदेव ने अपने उपदेश अपनी ही भाषा में दिये हैं। उनकी भाषा मागधी ही थी, क्योंकि मगध प्रान्त ही उनकी लीला भूमि थी। बुद्धदेव के समस्त उपदेश पहले पाली भाषा में ही लिखे मिलते हैं, वरन् कहा जाय तो यह कहा जा सकता है कि बौद्ध साहित्य का प्रधान और सर्वमान्य बृहदंश पाली ही में मिलता है, ऐसी दशा में दोनों भाषाओं का अभेद स्वीकार करना ही पड़ता है। किन्तु पाली जब मागधी नाम ग्रहण करती है, तब अपनी व्यापकता खोकर सीमित हो जाती है। पाली ही ऐसी प्राकृत है, जो वैदिक भाषा की अधिकतर निकटवर्ती है, इसीलिए उसको आर्ष प्राकृत का अन्यतम रूप कहा जाता है। अन्य प्राकृत भाषाएँ उसके बाद की हैं-कुछ प्रमाण पालिप्रकाश ग्रन्थ से नीचे दिये जाते हैं-

अकारान्त शब्द के तृतीया बहुवचन में पालि-भाषा में केवल विसर्ग मात्र का त्याग करके वैदिक प्रयोग ही रक्षित रहता है। यथा-देवेभिः प्रयोग के स्थान में पाली में देवेभि और विकल्प में भ के स्थान पर ह का प्रयोग करके देवेहि पद बनता है, किन्तु प्राकृत में भ का प्रयोग बिलकुल लुप्त हो जाता है, केवल देवेहि रह जाता है, आगे चलकर वह देवेहिं और देवेहिँ भी हो जाता है।

क्लीव लिंग चित्ता शब्द का प्रथमा बहुवचन पाली में चित्ता और चित्तानि दोनों होता है और यह दोनों रूप ही वेदमूलक हैं। जैसे विश्वा और विश्वानि (ऋ. 10, 169, 3) परन्तु बाद की प्राकृतिक भाषाओं में ऐसा व्यवहार नहीं होता, उनमें चित्तानि, चित्ताई, चित्ताई आदि पाया जाता है।

शानच् प्रत्यय के स्थान पर पाली में प्राचीन वैदिक भाषा के अनुसार आन और मान दोनों प्रत्यय ही प्रयुक्त होते हैं-जैसे भुञ्ज से भुञ्जान और भुञ्जमान दोनों रूप बनता है, किन्तु प्राकृत में केवल मान अथवा माण का प्रयोग होता है। इसका एकमात्र कारण यही है कि प्राकृत, मूल भाषा से पाली की अपेक्षा बहुत दूर हट गई, और इस कारण समस्त रूपों को रक्षित न रख सकी।

पाली में पारगू (पारग) आदि शब्द भी पाये जाते हैं, ये समस्त शब्द वैदिक भाषा में से ही उसमें आये हैं, यथा अग्रग अर्थ में अग्रगू आदि (पाणिनि 6, 4, 40)।

वैदिक भाषा में तुम अर्थ में तवै, तवेङ् प्रत्यय का प्रयोग अधिकता से देखा जाता है। (पा. 3, 4, 9) जैसे पातु के अर्थ में 'पातवै' इत्यादि। पाली में भी

इस प्रकार का प्रयोग बिल्कुल लुप्त नहीं हो पाया है। इन बातों पर दृष्टि देने से पाली की प्राचीनता निर्विवाद है, अन्य प्राकृत भाषाएँ उसके बाद की हैं। ये विशेषताएँ मागधी में नहीं हैं, और उसका नाम प्रान्त विशेष से भी सम्बन्ध रखता है। इसलिए कुछ लोग उसको पाली नहीं मानते, किन्तु अधिकतर विद्वानों की सम्मति वही है, जिसका उल्लेख मैंने पहले किया है।

कुछ विद्वान् गाथा से पाली की उत्पत्ति मानते हैं। पालिप्रकाशकार लिखते हैं– (पृ. 48, 50)

'गाथा की भाषा के सम्बन्ध में पूर्वकाल के पण्डितगण ने बहुत आलोचना की है। इनमें भारत के सुप्रसिद्ध प्राच्य तत्त्वविद्यावित् डॉक्टर **राजेन्द्रलाल मित्र** ने उसके विषय में जो आलोचना की है, उसको अध्यापक **मैक्समूलर** और **डॉक्टर वेबर** जैसे प्रमुख विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।'

'मिस्टर वर्न उफष् कहते हैं कि गाथा विशुद्ध संस्कृत और पाली की मध्यवर्ती भाषा है। डॉक्टर मित्र ने इसको माना है, और वे सोचते हैं कि यह गाथा ही शाक्यसिंह के जन्म ग्रहण के पूर्व देशभाषा थी। संस्कृत से गाथा और गाथा से पाली की उत्पत्ति हुई है।'1

गाथा के विषय में ऐसा विचार होने का कारण यह है कि उसमें संस्कृत वाक्यों का बड़ा अशुद्ध प्रयोग हुआ है। उसकी भाषा न तो शुद्ध संस्कृत है और न प्राकृत, उसमें दोनों का विचित्र सम्मिश्रण देखा जाता है, इसीलिए उसको संस्कृत और प्राकृत का मध्यवर्ती कहा गया है, और यही कारण है कि सबसे प्राचीन प्राकृत पाली की उत्पत्ति उससे मानी गई है। गाथा का श्लोक देखिए–

अधारुवं त्रिभवं शरदभ्रनिभम्।
नटरंग समाजगि जन्मिच्युति।
गिरिनद्य समं लघु शोघ्र जवम्।
व्रजतायुजगे पथ विद्युनभे।

संस्कृत के नियम के अनुसार दूसरे चरण के नटरंग सभा को नटरंग समम्–जगिजन्मिच्युति के स्थान पर जगति जन्मच्युतिः होना चाहिए। तीसरे चरण में गिरिनद्य समम् को गिरिनदी समम् और चतुर्थ चरण को 'ब्रजत्यायुर्जगतिश्पथविद्युद्नभसि, लिखना ठीक होगा। परन्तु उस समय भाषा ऐसी विकृत हो रही थी कि इन अशुद्ध प्रयोगों का ध्यान बिलकुल नहीं किया गया। यह सब होने पर भी पालि प्रकाशकार ने एक लम्बा लेख लिखकर और बहुत से अकाट्य प्रमाणों को देकर यह सिद्ध किया है कि गाथा की रचनाएँ अपभ्रंश

काल के लगभग हुई हैं, जो सबसे अन्तिम प्राकृत हैं। ऐसी अवस्था में यह पालीभाषा की पूर्ववर्ती नहीं हो सकती, और न उससे उसकी उत्पत्ति मानी जा सकती है। उनके प्रमाणों को मैं विस्तार भय से नहीं उठाता हूँ। किन्तु उनको पढ़ने के उपरान्त यह स्वीकार करना असंभव हो जाता है कि गाथा से पाली की उत्पत्ति हुई। यदि डॉक्टर **राजेन्द्र लाल मित्र** इत्यादि की सम्मति मान ली जाये तो पाली-भाषा उसके बाद की प्राकृत ठहरती है, और ऐसी अवस्था में उसका मूल भाषा होना और असंभव हो जाता है, मागधी की बात ही क्या। अब तक मैं जो कुछ लिख आया, उससे पाया जाता है कि पाली अथवा मागधी किसी प्रकार मूल भाषा नहीं हो सकती। उसका आधार वैदिक भाषा है, जो अनेक सूत्रों से प्रतिपादित किया जा चुका है।

इस प्रकार के मतभेद और खींचतान का आधार कुछ धार्मिक विश्वास और कुछ आपेक्षिक ज्ञान की न्यूनता है। बौद्ध ग्रन्थों में लिखा है-

'यदि माता-पिता अपनी भाषा बच्चे को न सिखलावें तो वह स्वभावतया मागधी भाषा को ही बोलेगा। इसी प्रकार एक निर्जन वन में रखा हुआ आदमी यदि स्वभाव-वश बोलने का प्रयत्न करे तो उसके मुख से मागधी ही निकलेगी। इसी भाषा का प्राधान्य तीनों लोकों में है, अन्यान्य भाषाएँ परिवर्तनशील हैं, यही सदा एक रूप में रहती है। भगवान् बुद्ध ने अपने त्रिपिटक की रचना भी इसी सनातन भाषा में की है।'1

इस प्रकार के विचारों के विषय में कुछ अधिक कथन करना व्यर्थ है। केवल एक कथन की ओर आप लोगों की दृष्टि मैं और आकर्षित करूँगा, वह यह कि कुछ लोगों का यह विचार है कि मागधी को देशभाषा मूलक मानकर मूलभाषा कहा गया है। किन्तु यह सिद्धान्त मान्य नहीं, क्योंकि यदि ऐसा होता तो द्राविड़ी और तेलगू आदि देशभाषाओं के समान वह भी एक देशभाषा मानी जाती, परन्तु उसको किसी पुरातत्त्ववेत्ता ने आज तक ऐसा नहीं माना, वह आर्य भाषा संभव ही मानी गई है, इसलिए यह तर्क सर्वथा उपेक्षणीय है। आर्यभाषा संभवा वह इसलिए मानी गई है, कि उसकी प्रकृति आर्यभाषा अथवा वेद भाषा मूलक है। प्राकृत भाषा के जितने व्याकरण हैं, उन्होंने संस्कृत के शब्दों और प्रयोगों द्वारा ही प्राकृत के शब्द और रूपों को बनाया है। प्राकृत भाषा का व्याकरण सर्वथा संस्कृतनुसारी है। संस्कृत और प्राकृत के अधिकांश शब्द एक ही झोले के चट्टे-बट्टे अथवा एक फूल के दो दल अथवा एक चने की दो दाल ज्ञात होते हैं, थोड़े से ऐसे शब्द नीचे लिखे जाते हैं-

संस्कृत मागधी संस्कृत मागधी
कृतं कतं ऐश्वर्यम् इस्सरियन
गृहं गहं मौक्तिकं मुत्ताकम्
घृतं घतं पौरः पौरो
वृत्तान्तः वुत्तान्तो मनः मनो
चौत्रः चित्तो भिक्षुः भिक्खु
क्षुद्रं खुद्दं अग्निः अग्गी

केवल कुछ शब्दों के मिल जाने से ही किसी भाषा का आधार कोई भाषा नहीं मानी जा सकती, उन दोनों की प्रकृति और प्रयोगों को भी मिलना चाहिए। वैदिक संस्कृत और मागधी अथवा पाली की प्रकृति भी मिलती है, उनका व्याकरण सम्बन्धी प्रयोग भी अधिकांश मिलता है–नीचे के श्लोक इसके प्रमाण हैं। संस्कृत श्लोक के नीचे जो दो श्लोक हैं, उनमें से पहला शुद्ध मागधी और दूसरा अर्द्ध मागधी है। देखिए उनमें परस्पर कितना अधिक साम्य है–

रभसवश नम्र सुरशिरो विगलित मन्दार
राजितांघ्रि युगः।
वीर जिनः प्रक्षालयतु मम सकल मवद्य जम्वालम्
लहश वश नमिल शुल शिल विअलिद मन्दाल
लायिदंहि युगे।
बील धिणे पक्खालदु मम शयल मयय्य यम्वालम्।
लभश वश नमिल शुल शिल विअलिद
मन्दाल लाजिदाई युगे।
बील जिणे पक्खालदु मम शयल मवज्ज जम्बालम्।

ऐसी अवस्था में यदि प्राकृत भाषा अर्थात् पाली और मागधी आदि वैदिक भाषा मूलक नहीं हैं, तो क्या देश भाषा मूलक हैं? वास्तव में मागधी अथवा अर्द्ध मागधी किम्बा पाली की जननी वैदिक संस्कृत है और यही तीसरा सिद्धान्त है, जिसको अधिकांश भाषा विज्ञानवेत्ता स्वीकार करते हैं। ऐसी अवस्था में दूसरे सिद्धान्त की अप्रौढ़ता अप्रकट नहीं। जितनी बातें पहले कही जा चुकी हैं, वे भी कम उपपत्ति मूलक नहीं हैं।

एक बात और है वह यह कि इण्डो–योरोपियन भाषा की छानबीन के समय भारतीय भाषाओं में से संस्कृत ही अन्य भाषाओं की तुलना मूलक आलोचना के लिए ली गई है, पाली, अथवा मागधी किम्बा अन्य कोई प्राकृत

नहीं, इससे भी संस्कृत की मूल-भाषा-मूलकता सिद्ध है। निम्नलिखित पंक्तियाँ इस बात को और पुष्ट करती हैं-

'यथार्थ वैज्ञानिक प्रणाली से भाषा की चर्चा पहले पहल भारतवर्ष में ही हुई इसके सम्बन्ध में एक अंग्रेज विद्वान् के कथन का सारांश यह है कि भारतीयों ने ही सर्वप्रथम भाषा को ही भाषा का रूप दिया। भारतीय ऋषियों ने सैकड़ों वर्ष तक वैदिक तथा लौकिक संस्कृत भाषा को मथकर व्याकरण शास्त्र का उत्कर्ष विधान किया। पाणिनि का व्याकरण इन गवेषणाओं का ही सार है।'' भाषा विज्ञान (पृष्ठ32)।

योरोप के प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर क्या कहते हैं। उसे भी सुनिए-

'मानव भाषा समुद्र में देशभाषाएँ द्वीप की भाँति इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं, वे सब मिलकर महाद्वीप का स्वरूप नहीं धारण कर पाती थीं। प्रत्येक विज्ञान के इतिहास में यह आपत्तिपूर्ण समय सामने आता है। यदि अचानक वह आनन्द मूलक घटना न घटी होती, जिसने इन बिखरे अंशों को बिजली की तरह चमक कर एक नियंत्रित रूप से प्रकाश में ला दिया, तो यह अनिश्चित था कि भाषा के विद्यार्थियों का हार्बिज और एडेलंग की भाषा सम्बन्धिनी लम्बी सूचियों में अनुराग बना रहता या नहीं। यह ज्योति दान करने वाली बिजली आर्य जाति की प्राचीन और आदिम भाषा संस्कृत है।'

तृतीय प्रकरण

अन्य प्राकृतिक भाषाएँ और हिन्दी

मैं पहले लिख आया हूँ, मूल प्राकृत अथवा आर्ष प्राकृत का अन्यतम रूप पाली है, अतएव सबसे प्राचीन अथवा पहली प्राकृत पाली कही जा सकती है। आर्ष प्राकृत में उल्लेख योग्य कोई साहित्य नहीं है, कारण इसका यह है कि आर्ष प्राकृत परिवर्तनशील वैदिक भाषा के उस आदिम रूप का नाम है, जब उसमें देशज शब्दों का मिश्रण आरम्भ हो गया था, उसके शब्द टूटने लग गये थे, और उनका अन्यथा व्यवहार होने लगा था। काल पाकर यह विकृति दृष्टि देने योग्य हो गई, और इतनी बढ़ गई, कि भिन्न रूप में प्रकट हुई। उस समय उसका नाम पाली पड़ा यथा समय यह पाली साहित्य की भाषा भी बनी, और उसका व्याकरण भी तैयार हुआ। कुछ काल तक अनेक विद्वानों का यह विचार था कि गाथा से पाली की उत्पत्ति हुई और इस गाथा की भाषा ही आर्ष प्राकृत है। परन्तु

आजकल यह विचार नहीं माना जाता है। यदि गाथा को वैदिक भाषा और पाली की मध्यवर्तिनी मान लें, तो आर्ष प्राकृत में भी साहित्य का अभाव न रह जावेगा, और ऐसी अवस्था में पहली प्राकृत वही होगी, बोल-चाल पर दृष्टि रखकर उसको एक पृथक् भाषा स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु प्रायः विद्वानों ने उसके अन्यतम रूप पाली को ही आदि और सबसे प्राचीन प्राकृत होने का गौरव दिया है, अतएव मैं भी इसको स्वीकार कर लेता हूँ। पाली भाषा का साहित्य बड़ा विस्तृत है। प्राकृत भाषा का पहला व्याकरण पाली में ही है, और वह कात्यायन का बनाया हुआ है। पालि प्रकाशकार कहते हैं- (पृष्ठ 101) कि पाली व्याकरण समूह संस्कृत के आदर्श पर ही रचित है, कात्यायन व्याकरण के अनेक सूत्र, का तन्त्र के संस्कृत व्याकरण के सूत्रों के साथ अधिकतर सम्बन्ध रखते हैं। अनेक सूत्र उसमें पाणिनि के भी लिये गये हैं। इस दृष्टि से भी पाली भाषा को पहली प्राकृत कहा जा सकता है, क्योंकि वह अधिकतर संस्कृतनुवर्तिनी है।

अशोक के जितने स्तम्भ प्राप्त हुए हैं, उनमें से अधिकांश की भाषा पाली ही है। यद्यपि स्तम्भ के लेखों में कहीं-कहीं भाषा भेद दृष्टिगत होता है, और इसलिए कुछ विद्वानों की सम्मति है कि अशोक के समय में ही पाली भाषा में परिवर्तन होने लग गया था, क्योंकि यह अनुमान किया जाता है कि प्रत्येक स्तम्भ की भाषा उस स्थान की प्रचलित भाषा से सम्बन्ध रखती है। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि उस समय प्रधानता पाली की ही थी। चाहे वह दो प्रकार की हो, चाहे चार प्रकार की। मैं पहले कह आया हूँ कि पाली का दूसरा नामक मागधी भी है, यद्यपि यह कथन सर्वसम्मत नहीं, फिर भी अधिकांश भाषा मर्मज्ञ यही स्वीकार करते हैं। अर्द्धमागधी का नाम ही उसको मागधी का अन्यतम रूप बतलाता है, इसलिए अशोक के जो शिलालेख मागधी अथवा अर्द्धमागधी में लिखे माने जाते हैं, उनको पाली भाषा का रूपान्तर कहना असंगत न होगा। ऐसी अवस्था में शिलालेखों पर विचार करने से भी पाली को ही पहली प्राकृत मानना पड़ेगा।

पाली के अनन्तर हमारे सामने कुछ ऐसी प्राकृत भाषाएँ आती हैं, जिनका नाम देशपरक है। वे हैं, मागधी, अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनी, इनको हम दूसरी प्राकृत कह सकते हैं। यदि हम पाली को ही मागधी मान लें तो मागधी के विषय में कुछ लिखना आवश्यक नहीं, क्योंकि पाली को हम पहली प्राकृत कह चुके हैं। किन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि मागधी नाम देशपरक है, मगध प्रान्त की भाषा का नाम ही मागधी हो सकता है, इसलिए यह स्वीकार करना

पड़ेगा कि मागधी की उत्पत्ति मगध देश में ही हुई। फिर पाली का नाम मागधी कैसे पड़ा? इसका उत्तर हम बाद को देंगे, इस समय देखना यह है कि पाली और मागधी में कोई अन्तर है या नहीं? पालि प्रकाशकार (प्रवेशिका, पृष्ठ 13, 14) लिखते हैं-

'प्राकृत व्याकरण और संस्कृत के दृश्यकाव्य समूह में मागधी नाम से प्रसिद्ध एक प्राकृत भाषा पाई जाती है, आलोच्य पाली से यह भाषा इतनी अधिक विभिन्न है, कि दोनों की भिन्नता उनके देखते ही प्रकट हो जाती है। पाठकगणों को दोनों मागधी का भेद जानना आवश्यक है, इसलिए उनके विषय में यहाँ कुछ आलोचना की जाती है। आलोचना की सुविधा के लिए हम यहाँ पाली को बौद्ध मागधी और दूसरी को प्राकृत मागधी कहेंगे।'

श्श्प्राकृत लक्षणकार **चण्ड** ने प्राकृत मागधी का इतना ही विशेषत्व दिखलाया है, कि इसमें रकार के स्थान पर लकार और सकार के स्थान पर शकार होता है। जैसे-संस्कृत का निर्झर प्राकृत मागधी में निज्झल होगा, इसी प्रकार माष होगा माश और विलास होगा विलाश। परन्तु बौद्धमागधी में इनका रूप यथाक्रम, निज्झर, मास, विनास होगा। प्राकृत मागधी में अकारान्त प्रतिपादित पुल्लिंग के प्रथमा विभक्ति का एक वचन एकारयुक्त होता है, जैसे-माषः-माशे, विलासः-विलासे, निर्झरः-निज्झले। बौद्ध मागधी में इसका रूप यथाक्रम मासो, विनासो और निज्झरो होगा।'

'इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण देकर पालि प्रकाशकार लिखते हैं (पृष्ठ 16-17) बौद्ध मागधी और प्राकृत मागधी में परस्पर और अनेक भेद हैं। बाहुल्य भय से उन सबको पूर्णतया यहाँ नहीं दिखलाया गया। किन्तु जितना दिखलाया गया, उसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों भाषाएँ परस्पर कितनी भिन्न हैं।'

'मृच्छकटिक नाटक में शकार का अधिकतर कथन विशुद्ध प्राकृत मागधी में रचित है। प्राकृत मागधी का मूल शौरसेनी है, इसलिए उसमें शौरसेनी तो मिलती ही है, स्थान-स्थान पर महाराष्ट्री के शब्द भी देखे जाते हैं। इसीलिए कहीं-कहीं शकार की भाषा को अर्द्धमागधी कहा गया है। अभिज्ञानशाकुन्तल में रक्षिपुरुष और धीवर की भाषा प्राकृत मागधी है। वेणीसंहार नाटक और उदात्तराघव के राक्षस की भाषा भी प्राकृत मागधी है। मुद्राराक्षस आदि में भी इसका व्यवहार देखा जाता है। किन्तु प्रायः इसके साथ भिन्न जातीय प्राकृत का सम्मिलन पाया जाता है।'

इन सब बातों को लिखकर पालि प्रकाशकार 18 पृष्ठ में यह लिखते हैं-

'जो कुछ कहा गया, उसको पढ़कर हृदय में स्वभावत: यह प्रश्न उदय होता है, कि 'मागधी, नाम से प्रसिद्ध होकर भी पाली, (बौद्ध-मागधी), एवं प्राकृत मागधी में परस्पर इतना भेद क्यों है? ये एक ही स्थान की भाषाएँ हैं, यह बात इनका साधारण नाम ही स्पष्टभाव से बतलाता है। तो क्या ये दोनों भाषाएँ, विभिन्न प्रदेशों की हैं? अथवा दोनों के मध्य में दीर्घकाल का व्यवधान होने के कारण एक ही अन्य रूप में परिवर्तित हो गई है। या विस्तृत मगध प्रदेश के अंश विशेष में एक, और अन्य विभाग में दूसरी प्रचलित थी? इनका परस्पर सम्बन्ध क्या है?'

इन प्रश्नों का 99 पृष्ठ में वे यह उत्तर देते हैं-

'पहले हमने बौद्धमागधी और प्राकृतमागधी के स्थान और काल के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया था। वह प्रश्न पाठकों के निकट इसी रूप में रहा। विषय इतना गुरुतर है, कि इस सम्बन्ध में मैंने जो अनुसन्धान किया है, वह इस समय प्रकाश योग्य नहीं है। समयान्तर में मैं इसका उत्तर देने की चेष्टा करूँगा।'

कम से कम इन पंक्तियों को पढ़कर यह तो स्पष्ट हो गया, कि मागधी दो प्रकार की है, और उनमें परस्पर बहुत बड़ा अन्तर है। इन पंक्तियों द्वारा यह भी विदित होता है, कि बौद्धमागधी ही पाली है, और बुद्धदेव ने इसी भाषा में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। अशोक के शिलालेख अधिकतर इसी मागधी अथवा उसके अन्यतम भेद अर्द्ध-माधी में लिखे पाये जाते हैं। इसलिए यदि पहली प्राकृत हो सकती है तो बौद्धमागधी। प्राकृत मागधी को ऐसी अवस्था में दूसरी प्राकृत मान सकते हैं। देशपरक नाम निस्सन्देह बौद्धमागधी को भी निर्विवाद रूप से पाली मानने का बाधक है, और इसी विचार से ज्ञात होता है कि एक बौद्ध विद्वान् ने मागधी की यह व्युत्पत्ति की है, 'सोच भगवा मागधी मगधे भवत्ताा साच भासामागधी। इसका यह अर्थ है कि मगध में उत्पन्न होने के कारण भगवान् बुद्ध को मागध कह सकते हैं, इसलिए उनकी भाषा को मागधी कहा जा सकता है। किन्तु इस विचार का खंडन यह कह कर किया गया है कि भाषा का नाम देशपरक होता है, व्यक्ति विशेषपरक नहीं, क्योंकि ऐसा कहना अस्वाभाविक और उस प्रत्यक्ष सिद्धान्त का बाधक है, जिसके आधार से अन्य देशभाषाओं का नामकरण हुआ। 1

यह बहुत बड़ा विवाद है, अब तक छानबीन हो रही है, इसलिए मैं स्वयं इस विषय में कुछ निश्चित रूप से कहने में असमर्थ हूँ। बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान्

सुनीति कुमार चटर्जी की सम्मति आप लोगों के अवलोकन के लिए यहाँ उद्धृत करता हूँ। वे लिखते हैं-

'महाराज अशोक के समय में एक नई साहित्यिक भाषा भारत से सिंहल में फैली, यह पाली भाषा है। पहले पण्डित लोग सोचते थे कि पाली की जड़ पूर्व में-मगध में थी, क्योंकि इसका एक और नाम मागधी है। अब पाली के सम्बन्ध में पण्डितों की राय बदल रही है। अब विचार है कि पाली पूर्व की नहीं, बल्कि पछाँह की-अर्थात् मध्य देश की ही बोली थी। वह शौरसेनी प्राकृत का प्राचीन रूप थी। बुद्धदेव के उपदेश पूर्व की बोली प्राच्य प्राकृत में हुए, जो कोशल, काशी और मगध में प्रचलित थी। फिर वे इस प्राच्य प्राकृत से और प्राकृतों में अनूदित हुए। मथुरा और उज्जैन की भाषा में जो अनुवाद हुआ, उसका नाम दिया गया 'पाली'। सिंहल में जब इस अनुवाद का प्रचार हुआ, तब वहाँ के लोग भूल से इसे मागधी के नाम से पुकारने लगे, क्योंकि पाली बुद्ध वचन था, और भगवान बुद्ध ने मगध में अपने जीवन का बहुत अंश बिताया। इस कारण बुद्ध वचन या पाली से मगध का संबंधा सोचकर उसका नाम मागधी रखा। सिंहल से ब्रह्मदेश तथा 'श्याम और कम्बोज में यह पाली भाषा फैली। इस प्रकार दो हजार वर्ष से पहले मध्यदेश की भाषा, बहिर्भारत के बौद्धों की धार्मिक भाषा बनी'।

सुनीति कुमार चटर्जी 'ओरिजन एण्ड डिवलेपमेंट ऑफ दी बंगाली लांगवेज, नामक प्रसिद्ध और विशाल ग्रन्थ के रचयिता और आर्यभाषा शास्त्र के पण्डित हैं, उनको डी. लिट् की उपाधि भी प्राप्त हो चुकी है, इसलिए उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसकी प्रामाणिकता अधिकतर ग्राह्य एवं निर्विवाद है। परन्तु उनके लेख के कुछ अंश ऐसे हैं, जो तर्करहित नहीं। वे कहते हैं-'बुद्धदेव के उपदेश पूर्व की बोली (प्राच्य प्राकृत) में हुए जो कोशल, काशी और मगध में प्रचलित थी।' इसके बाद वे यह लिखते हैं 'फिर वे (उपदेश) इस प्राच्य प्राकृत से और प्राकृतों में अनूदित हुए, मथुरा और उज्जैन की भाषा में जो अनुवाद हुआ उसका नाम दिया गया पाली' उनके कथन के इन अंगों को पढ़कर यह प्रश्न होता है कि जिस प्राच्य प्राकृत में बुद्धदेव ने उपदेश दिये उसका क्या नाम था? उसका नाम 'पाली' तो हो नहीं सकता, क्योंकि पालि तो प्राकृत के अनुवाद का नाम है, जो मथुरा और उज्जैन में बोली जाने वाली भाषा (प्राकृत) में हुआ। क्या उसका नाम मागधी था! निस्सन्देह उसका नाम मागधी होगा, और उस समय यह भाषा कोशल और काशी में भी बोली जाती होगी।

यह बात निश्चित है कि बुद्धदेव ने अपने उपदेश देशभाषा में ही दिये, उनका उपदेश मगध, कोशल और काशी में ही अधिकतर हुआ है, इसलिए उनकी भाषा का नाम मागधी होना ही निश्चित है। बौद्ध लोग इसीलिए कहते हैं–

'मागधिाकाय सभाव निरुत्तिया', अथवा 'सा मागधी मूलभासा, ' इत्यादि।

ऐसी अवस्था में बौद्धमागधी को ही पहली प्राकृत मानना पड़ेगा, और पाली को स्थानच्युत होना पड़ेगा। आज दिन भी मागधी और उसके थोड़े परिवर्तित रूप अर्द्धमागधी को प्राच्य प्राकृत ही माना जाता है, स्थान भी उनका अब तक वही है, जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है। अशोककाल के शिलालेख भी अधिकतर इन्हीं भाषाओं में पाये जाते हैं, इसलिए एक प्रकार से यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकृत होती है कि बुद्धदेव ने जिस भाषा में उपदेश दिये, वह मागधी ही थी। रहा पाली का स्थानच्युत होना, मेरा विचार यह है कि 'पाली' शब्द के नामकरण पर विचार करने से इस जटिल विषय पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ जाता है। पालिप्रकाशकार प्रवेशिका के पृष्ठ 3 में लिखते हैं–

'उल्लिखित उदाहरण समूह द्वारा यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि पाली शब्द से पहले बौद्धधर्मशास्त्र की पंक्ति अथवा मूलशास्त्र त्रिपिटक, समझा जाता था। इसके बाद कालक्रम से धीरे–धीरे त्रिपिटक के साथ सम्बद्ध अर्थकथा और साक्षात् अथवा परम्परा सम्बन्ध से उससे संबद्ध कोई ग्रन्थ ही पाली शब्द से अभिहित होने का सुयोग पा सका होगा। जैसे मूल संहिता और उससे सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रन्थ दोनों ही वेद माने जाते हैं, और जैसे प्राचीन मनु इत्यादिक धर्मशास्त्र और उससे सम्बद्ध आधुनिक अन्धाकार का ग्रन्थ, दोनों ही स्मृति कहकर गृहित होते हैं, उसी प्रकार बौद्ध साहित्य में पहले त्रिपिटक, उसके उपरांत अर्थ–कथा और तदनन्तर उससे सम्बद्ध अपर ग्रन्थ समूह 'पाली' नाम से प्रसिद्ध हुए किन्तु जिन ग्रन्थों के साथ 'पाली'(त्रिपिटक आदिक) का कोई सम्बन्ध नहीं था, उस समय वे पाली नाम से अभिहित नहीं हुए। केवल ग्रन्थ कहलाकर ही वे परिचित होते थे। मूलशास्त्र को पाली कहते थे, इसीलिए उसकी भाषा का नाम भी पालीभाषा अथवा कालक्रम से संक्षेप में केवल 'पाली' हुआ। इन सब बातों पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पालि–भाषा का आदिम अर्थ 'पाली' की अर्थात् बौद्धधर्म के मूलशास्त्र की भाषा है।'

ज्ञात होता है कि इन्हीं बातों पर दृष्टि रखकर किसी पाश्चात्य विद्वान ने पाली को कृत्रिम अथवा साहित्यिक भाषा लिखा है, परन्तु पाली प्रकाशकार उनके इस विचार का खंडन करते हैं, वे प्रवेशिका के पृष्ठ 98 में लिखते हैं–

'किसी पाश्चात्य विद्वान् ने पाली को बिलकुल कृत्रिम भाषा बतलाया है, किन्तु यह सर्वथा असंगत है, यह कहना ही बाहुल्य है।'

वे ऐसा कहते तो हैं, परन्तु उन्होंने जो पहले स्वयं लिखा है, वही उनके इस उत्तर कथन का विरोधी है। डॉक्टर चटर्जी ने जो कथन किया है, उसे आप पहले पढ़ चुके हैं, वे कहते हैं, 'पाली' मथुरा प्रान्त की भाषा है, जो शौरसेनी का पूर्वरूप है, और जिसे भूल से सिंहलवालों ने मागधी कहा। लेख इच्छा के विरुद्ध बहुत विस्तृत हो गया, किन्तु मतभिन्नता का निराकरण न हो सका। तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि आदि अथवा पहली प्राकृत वह है, जिसके उपरान्त देशपरक नाम वाली प्राकृतों की रचना हुई। इस पहली प्राकृत को पाली कहिए चाहे बौद्धमागधी अथवा आर्ष प्राकृत।

देशपरक नाम की दृष्टि से मागधी को दूसरी ही प्राकृत मानना पड़ेगा, चाहे वह बौद्धमागधी न होकर प्राकृतमागधी ही क्यों न हो। ऐसी दशा में बौद्धमागधी को प्राकृत मागधी का पूर्वरूप मानना पड़ेगा। जैसा मैं पहले दिखला आया हूँ, उससे यह बात स्पष्ट हो गई है, कि बौद्धमागधी ही बाद को पाली कहलाई। पाली नाम की कल्पना बौद्धों द्वारा ही हुई है, वे ही इस नाम के उद्भावक हैं, और बौद्धशास्त्र की पंक्ति उसका आधार है। यह जान लेने पर यह बात समझ में आ जाती है कि क्यों पाली का पर्यायवाची नाम मागधी है। मैं यह स्वीकार करूँगा कि डॉक्टर चटर्जी का कथन इस उक्ति का विरोधी है, और जैसा उन्होंने बतलाया है, उससे पाया जाता है, कि वर्तमान काल के विद्वानों का मत ही उनका मत है। तथापि सब बातों पर दृष्टि रखकर यह स्वीकार करना ही पड़ेगा, कि इन दोनों नामों का जो सम्बन्ध है, उसके पक्ष में ही प्रबल प्रमाण है और यह मान लेने से ही सब विचारों का समन्वय हो जाता है, कि बौद्धमागधी अथवा पाली पहली प्राकृत है, और प्राकृतमागधी दूसरी प्राकृत।

अर्द्धमागधी भी दूसरी प्राकृत है। जो भाषा मगध प्रान्त में बोली जाती थी वह मागधी कहलाई, किन्तु काशी और कोशल प्रदेश की भाषा अर्द्धमागधी कही गई है। अर्द्धमागधी शब्द ही बतलाता है, कि इस भाषा की शब्द सम्पत्ति इत्यादि का अर्द्धांश मागधी है। यहाँ प्रश्न यह होगा कि दूसरा अर्द्धांश क्या है? इसका उत्तर क्रमदीश्वर यह देते हैं, ''महाराष्ट्री मिश्रा मागधी, अर्थात् जिस मागधी में महाराष्ट्री शब्दों का मिश्रण हो गया है, वह अर्द्धमागधी है।'' किन्तु मारकण्डेय यह कहते हैं–

'शौरसेन्याविदूरत्वादियमेवार्धामागधी'अर्थात् शौरसेनी के सन्निकट होने के कारण इसका नाम अर्द्धमागधी है। प्रयोजन यह कि जिस मागधी पर शौरसेनी का प्रभाव पड़ गया है, वह अर्द्धमागधी है। इन दोनों सिद्धान्तों में प्रथम सिद्धान्त के पोषक अधिक लोग हैं, और वे कहते हैं कि अर्द्धमागधी पर अधिक प्रभाव महाराष्ट्री का ही है। मागधी भाषा में यदि बौद्धों के धर्मग्रन्थ हैं, तो अर्द्धमागधी में जैनों के। वह यदि बुद्धदेव के प्रभाव से प्रभावित है, तो यह महावीर स्वामी के गौरव से गौरवित। कहा जाता है कि अशोक के समय में यदि मागधी राजभाषा होने के कारण विशेष सम्मानित थी, तो अर्द्धमागधी का समादर भी कम न था, पूर्ण सम्मान का अर्द्धांश उसको भी प्राप्त था। अशोक के स्तम्भों पर पाली अथवा मागधी को यदि स्थान दान किया गया है, तो अर्द्धमागधी भी इस सम्मान से वंचित नहीं हुई, अनेक शिलालेख अर्द्धमागधी में लिखे पाये गये हैं।

महाराष्ट्री भी देशपरक नाम है, और यह भी दूसरी प्राकृत है। परन्तु स्वर्गीय पण्डित बदरीनारायण चौधरी ने अपने व्याख्यान में लिखा है ''महाराष्ट्री शब्द से प्रयोजन दक्षिण देश से नहीं किन्तु भारत रूपी महाराष्ट्र से है*प्राकृत प्रकाशकारश्वररुचि भी इसी विचार के हैं। किसी समय यह प्राकृत देशव्यापिनी थी, कहा जाता है महाराष्ट्र शब्द से ही, महाराष्ट्री का नामकरण हुआ है। कुछ लोगों ने सर्व प्राकृतों में इसी को प्रधान माना है, क्योंकि प्राकृत भाषा के व्याकरण रचयिताओं ने उसी के विषय में विशेष रूप से लिखा है। प्रायः व्याकरणों में देखा जाता है कि अन्य प्राकृतों के कुछ विशिष्ट नियमों को लिखकर शेष के विषय में लिख दिया गया है, कि महाराष्ट्री के समान उनका आदेशादि होगा। इसका साहित्य भी विस्तृत है।

शौरसेनी के विषय में श्रीयुत डॉक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी महोदय यह लिखते हैं–

'सारे उत्तर भारत में जिस समय प्राकृत या प्रादेशिक बोलियाँ प्रचलित हुईं, उस समय प्रान्तीय प्राकृतों के अन्तर्वेद–विशेषतया ब्रह्मर्षि देश या कुरु पंचाल की प्राकृत शौरसेनी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। संस्कृत नाटकों के श्रेष्ठ सद्वंशज पात्र बात करने में इस शौरसेनी ही का प्रयोग करते थे। इससे यह साबित होता है कि प्राकृत युग में शौरसेनी का स्थान क्या था। गाने में महाराष्ट्रीय प्राकृत का प्रयोग था, यह ठीक है, परन्तु इसका कारण इतना ही मालूम होता है कि महाराष्ट्रीय प्राकृत में स्वर बहुत होने से वह शौरसेनी से श्रुतिमधुर मानी जाती थी, और गाने में शायद इसीलिए लोग इसे अधिक पसन्द करते थे।'

'ईस्वी सदी के प्रारम्भ से संस्कृत के बाद उत्तर में शौरसेनी भद्र समाज में बोली जाती थी, इसका प्रभाव दूसरी प्राकृत बोलियों पर भी पड़ा। भाषा तत्त्व के विचार से **ग्रियर्सन** आदि पण्डितों ने, राजस्थान, गुजरात, पंजाब और अवधा की प्राकृत बोलियों पर शौरसेनी का विशेष प्रभाव स्वीकार किया है। राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी और अवधी के विकास में शौरसेनी ने बहुत काम किया है।'

शौरसेनी की गणना भी दूसरी प्राकृत में ही है, यह कहना बाहुल्य मात्र है। 'प्राकृत लक्षणकार' 'चण्ड' ने चार प्राकृत मानी है 'प्राकृत', 'अपभ्रंश', 'पैशाचिकी', और 'मागधी।' प्राकृत लक्षण के टीकाकार षड्भाषा मानते हैं, वे उपर्युक्त चार नामों के साथ संस्कृत और शौरसेनी का नाम और बढ़ाते हैं। वररुचि महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी, चार और हेमचन्द्र, 'मूलप्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका और अपभ्रंश छरू प्राकृत बतलाते हैं। अधयापक **लासेन** यह कहते हैं-

'श्वररुचि वर्णित महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची, इन चार प्रकार के प्राकृतों में शौरसेनी और मागधी ही वास्तव में स्थानीय भाषाएँ हैं। इन दोनों में शौरसेनी एक समय में पश्चिमांचल के विस्तृत प्रदेश की बोलचाल की भाषा थी। मागधी अशोक की शिलालिपि में व्यवहृत हुई है, और पूर्व भारत में यही भाषा किसी समय में प्रचलित थी। महाराष्ट्री नाम होने पर भी यह महाराष्ट्र प्रदेश की भाषा नहीं कही जा सकती। पैशाची नाम भी कल्पित मालूम होता है।'

विश्वकोष, पृ- 438

ऊपर के वर्णन में जहाँ प्राकृतों में केवल 'प्राकृतय और 'मूल प्राकृत' लिखा गया है, मेरा विचार है वहाँ उनका प्रयोग 'आर्य-प्राकृत अथवा पाली के अर्थ में किया गया है, जिनके विषय में पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अपभ्रंश तीसरी प्राकृत है, उसका वर्णन आगे होगा। शेष रही चूलिका पैशाची उसका वर्णन थोडे में किया जाता है।

''संस्कृत साहित्य में पिशाच शब्द का प्रयोग अधिकतर दानवों के अर्थ में हुआ है, क्योंकि वे मांसाशी थे, परन्तु वास्तव में भारत के पश्चिमोत्तर में रहने वाली एक विशेष जाति पिशाच कहलाती है। संस्कृत अथवा प्राकृत के वैयाकरणों ने पैशाची को प्राकृत का एक रूप बतलाया है, हेमचन्द्र ने उसका वर्णन विशेषतया किया है, उन्होंने कहा है यह मध्य प्रान्त की भाषा थी, और उसका साहित्य भी है। मार्कण्डेय ने बृहत्कथा से शब्द उद्धत करके यह कहा कि वह केकय प्रान्त की भाषा है, जो भारत के पश्चिमोत्तर में स्थित है। परन्तु इससे यह

स्पष्ट नहीं होता कि पैशाची वास्तव में उस प्रदेश में बसने वाली पिशाचों की भाषा थी या क्या हेमचन्द्र की पैशाची बिलकुल भारतीय भाषा है, उत्तर पश्चिम की वर्तमान पिशाचभाषा इस प्राकृत से भिन्न है। यह संभव हो सकता है कि पिशाच जब मध्यएशिया से आये तो अभारतीय (अर्थात् ईरानियन इत्यादि) विशेषताओं को भूल गये और उन विशेषताओं को सुरक्षित रखा, जिससे पैशाची प्राकृत मानी जा सके।

वर्तमान पिशाच भाषाएँ शुद्ध भारतीय नहीं हैं, उनमें उच्चारण के बहुत से नियम ऐसे हैं, जो कि इण्डोएरियन भाषाओं से उनको अलग करते हैं। जैसे वर्तमान पिशाची में 'र' का उच्चारण। यद्यपि अन्य विषयों में वे साधारणतः इण्डोएरियन भाषाओं के समान हैं, तथापि कभी-कभी उनमें ईरानियन विशेषताएँ भी झलक जाती हैं। इनमें से कुछ ईरानी विशेषताएँ ऐसी हैं, कि जिनको देखकर **'कोनो'** ने यह विचार प्रकट किया कि पैशाची में वशगली भाषा ईरानी भाषा की वर्तमानकालिक प्रतिनिधि है। इस बात का विचार करते हुए कि कुल पिशाची भाषाओं में कुछ ईरानियन विशेषताओं का अभाव है, मेरी राय यह है कि पिशाच भाषाएँ न तो शुद्ध भारतीय हैं और न शुद्ध ईरानियन। शायद उन्होंने इण्डोएरयन भाषाओं की उत्पत्ति के बाद आर्य-भाषा को, जो उसके माँ-बाप हैं, छोड़ दिया। परन्तु ज्ञात होता है कि अवेस्ता के ईरानियन विशेषताओं के विकास होने के पहले ही ऐसा हुआ। **आर. जी. भण्डारकर** की राय यद्यपि अन्य शब्दों में प्रकट की गई है, परन्तु उससे भी यही भाव प्रकट होता है। वे कहते हैं, ''यह पैशाची प्राकृत शायद आर्य-जाति की उस शाखा की भाषा है, जो कि अपनी जाति वालों के साथ बहुत दिन तक रही, परन्तु भारत में पीछे आई, और किनारे पर बस गई। या यह भी हो सकता है कि वह अपनी जाति वालों के साथ ही भारत में आई, परन्तु किनारे के पहाड़ी प्रदेशों में स्वतंत्रतापूर्वक बस जाने के कारण अपनी भाषा सम्बन्धी उच्चारण विशेषताओं का ऐसा ही विकास किया कि जिससे मैदान की सभ्य भाषा से घनिष्ठता प्राप्त कर सकी। इसी कारण उनकी भाषाओं के उच्चारण में वे परिवर्तन नहीं हुए, जो कि संस्कृत से उत्पन्न होने वाली प्राकृतों में हो सके' अन्त में मैं यह सोचता हूँ कि वर्तमान पिशाच भाषा कुछ विषयों में तलचह भाषा से मिलती-जुलती है, जिससे यह अनुमान होता है कि इसके बोलने वाले अपने वर्तमान स्थान पर भारत के मैदान से नहीं वरन् सीधे पामीर से आये और दूसरे लोग, जो कि शुद्ध इण्डोएरियन के बोलने वाले थे, भारत

के मैदान में पश्चिम से पहुँचे। यदि वास्तविक घटना ऐसी ही है, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि के मुख्य दलों से इनका दल अलग था।

तीसरी प्राकृत अपभ्रंश है। संसार परिवर्तनशील है, जैसे यथाकाल उसके समस्त पदार्थों में परिवर्तन होता है, वैसे ही भाषा में भी। मागधी, अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनी में जब अधिक परिवर्तन हुए, और एक प्रकार से उनका व्यवहार सर्वसाधारण के लिए असंभव हो गया, तब अपभ्रंश भाषा सामने आई। यह कोई अन्य भाषा नहीं थी, पूर्व कथित भाषाएँ ही बदलकर अपभ्रंश बन गईं। इस समय भारतवर्ष के उत्तरीय प्रदेश और महाराष्ट्र प्रान्त में जितनी आर्य भाषा सम्बन्धिनी भाषाएँ बोली जाती हैं, उनमें से अधिकांश भाषाओं का आधार अपभ्रंश ही है। अपभ्रंश ही रूप बदलकर अब देशभाषा के रूप में विराजमान है। प्रायः यह कहा जाता है कि जब कोई भाषा साहित्यिक हो जाती है, अर्थात् जब उसमें साहित्यिक विशेषताएँ आ जाती हैं, तो वह बोलचाल की भाषा नहीं रह जाती। यह कारण निर्देश युक्तिसंगत नहीं मालूम होता। किसी भाषा का साहित्य में गृहित हो जाना, उसके बोलचाल से बहिष्कृत होने का हेतु नहीं है। यह प्राकृतिक नियम है कि चिरकाल तक किसी भाषा का एक रूप ही नहीं रहता, विशेष कारणों से उसमें यथासमय ऐसा परिवर्तन हो जाता है, कि वह लगभग उससे इतनी दूर पड़ जाती है, कि उसका उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं ज्ञात होता। भाषामर्मज्ञ लोग भले ही सूक्ष्म दृष्टि से उनके पारस्परिक सम्बन्ध को देखते रहें, परन्तु यह सम्बन्ध सर्वसाधारण का बोधगम्य नहीं रह जाता। इसीलिए बोलचाल की भाषा स्वयं उससे अलग हो जाती है, और पूर्ववर्ती भाषा का रूप साहित्य में रह जाता है। ऐसा स्रोत वर्ष के उपरान्त ही होता है, परन्तु होता अवश्य है । अपभ्रंश भाषा ऐसे ही परिवर्तनों का फल थी। यह बात स्पष्ट है कि जो भाषा बोलचाल की होती है, जनता की शिक्षा की दृष्टि से बाद को उसमें ही ग्रन्थ-रचना होने लगती है, और धीरे-धीरे बोलचाल की भाषा ही साहित्य का रूप ग्रहण कर लेती है। अपभ्रंश भाषा भी ज्यों-ज्यों पुष्ट होती गई, त्यों-त्यों उसको साहित्यिक रूप मिलने लगा। इस भाषा में बहुत अधिक साहित्य है।

कोषकारों ने अपभ्रंश का अर्थ कुत्सित अथवा अपभाषा किया है-

एक स्थान से भ्रंश होकर जिसका पतन होता है, वही अपभ्रंश कहलाता है (दे., प्रकृतिवाद, पृ. 42)। आर्ष शब्दों के बिगड़ने से ही, प्राकृत-भाषा और अपभ्रंश की उत्पत्ति हुई है, इसीलिए उनका उल्लेख संस्कृत ग्रंथों में इसी रूप में किया गया है। गरुड़ पुराण में तो यहाँ तक लिख दिया गया है-

(पूर्व खण्ड 98, 17)

लोकायतं कुतर्क ञ्च प्राकृतं म्लेच्छभाषितम्।

न श्रोतव्यं द्विजेनैतदधोनयति तद् द्विजम्ड्ड।।

एक स्थान पर अपभ्रंश के लिए यह लिखा गया है-

आभीरादि गिरः काव्ये अपभ्रंशगिरः स्मृताः।

परन्तु स्वाभाविक नियम का प्रत्याख्यान नहीं हो सकता। अपभ्रंश का बहुत अधिक प्रचार हुआ और उसमें रचनाएँ भी हुईं। कुछ काल तक उसकी ओर पठित समाज की अच्छी दृष्टि नहीं रही, परन्तु ज्यों-ज्यों उसका प्रसार होता गया, त्यों-त्यों दृष्टिकोण भी बदलता गया, और उसको साहित्य में स्थान मिलने लगा। कुछ विद्वानों का विचार है कि दूसरी शताब्दी में उसकी रचना आरंभ हो गयी थी, और उस काल की कुछ प्राकृत रचनाओं में वह मिलती है, परन्तु अधिक लोग इस सम्मति को नहीं मानते। इन लोगों का कथन है कि अपभ्रंश की साहित्यिक रचनाएँ छठी शताब्दी से ही प्रारम्भ होती हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी डॉक्टर ग्रियर्सन के लेखों के आधार पर बनी अपनी 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' नामक पुस्तक में यह लिखते हैं-

'छठे शताब्दी में अपभ्रंश भाषा में कविता होती थी। ग्यारहवें शताब्दी के आरंभ तक इस तरह की कविता के प्रमाण मिलते हैं। इस पिछले अर्थात् ग्यारहवें शताब्दी में अपभ्रंश भाषाओं का प्रचार प्रायः बन्द हो चुका था।'

''सम्वत् 990 में देवसेन नामक एक जैन ग्रन्थकार हो गये हैं, दोहों में उनके बने दो ग्रन्थ पाये जाते हैं, एक का नाम है' श्रावकाचार' और दूसरे का 'दब्बसहावपयास' इन दोनों ग्रन्थों की भाषा अपभ्रंश कही जा सकती है। अपभ्रंश की अधिकांश रचना दोहों में ही मिलती है।

'बौद्धमत के महायान सम्प्रदाय की एक 'सहजिया' नामक शाखा है, यह शाखा विक्रमी चौदह शत में मौजूद थी, उसकी पुरानी पोथियों का संग्रह **श्रीहर प्रसाद शास्त्री** ने 'बौद्धगानओ दोहा'नाम से निकाला है, उसमें कन्ह और सरह के दोहे अपभ्रंश भाषा में लिखे गये प्रतीत होते हैं।

हेमचन्द्र प्राकृत भाषा के बहुत बड़े वैयाकरण हो गये हैं, वे विक्रमी बारहवें शताब्दी में मौजूद थे, उन्होंने 'सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासन', नामक प्राकृत भाषा का एक बड़ा व्याकरण बनाया है, उसमें अपभ्रंश भाषा के अनेक दोहे उदाहरण में लिखे गये हैं, उन दोहों में से कुछ उनके पहले के भी हैं।'

विक्रमी तेरहवें शताब्दी में (1241) सोमप्रभसूरि नामक एक जैन विद्वान् ने 'कुमार प्रतिबोध' नामक एक ग्रन्थ लिखा है, उसमें भी अपभ्रंश भाषा के दोहे मिलते हैं, जिनमें से कुछ उनके बनाये हैं और कुछ प्राचीन हैं।

विक्रमी चौदहवीं शताब्दी (1361) में जैनाचार्य मेरुतुंग ने 'प्रबन्धाचिन्तामणि' नामक एक संस्कृत ग्रन्थ बनाया, इसमें भी बीच-बीच में अपभ्रंश भाषा के दोहे मिलते हैं। स्थान-स्थान पर मालवराज मुंज के रचे अपभ्रंश दोहे भी इसमें देखे जाते हैं।

नलसिंह भट्ट भी चौदहवीं शताब्दी में हुआ है, इसका बनाया 'विजयपाल रासो' अपभ्रंश में लिखा गया है। पन्द्रहवीं शताब्दी में मैथिल कोकिल विद्यापति ने भी दो ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में लिखे, 'कीर्तिलता', एवं 'कीर्तिपताका' परन्तु इनकी रचनाओं में उनके समय में प्रचलित देश-भाषा का ढंग भी पाया जाता है, उसमें प्रायः संस्कृत के तत्सम शब्द भी मिल जाते हैं, जो प्राकृत परम्परा के विरुद्ध हैं।'

इन अवतरणों से पाया जाता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में ही अपभ्रंश का व्यवहार बन्द नहीं हो गया था, वरन चौदहवीं शताब्दी तक चलता रहा, और पन्द्रहवीं शताब्दी में भी उसमें पुस्तकें लिखी गईं, चाहे उनकी संख्या कितनी ही अल्प क्यों न हो। यह मैं पहले लिख आया हूँ कि इस समय जितनी भाषाएँ भारतवर्ष में आर्य परिवार की बोली जाती हैं, वे प्रायः अपभ्रंश से ही विकसित हुई हैं, अब मैं उनका उल्लेख पृथक-पृथक् डा. जी. ए. ग्रियर्सन की सम्मति के अनुसार करता हूँ। इधर जो आविष्कार हुए हैं, अथवा जो छानबीन की गई है, बाद को उनका उल्लेख भी करूँगा।

सिन्ध नदी के आसपास जो प्रदेश हैं, उसमें ब्राचड़ा नाम की अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी, आधुनिक सिन्धी एवं लहँड़ा की उत्पत्ति उसी से हुई। कोहिस्तानी और काश्मीरी भाषा किस अपभ्रंश से निकली, यह पता नहीं, परन्तु ब्राचड़ा अपभ्रंश से वह अवश्य प्रभावित होगी।

दाक्षिणात्य प्रदेश में बोली जाने वाली भाषाओं का सम्बन्ध वैदर्भी और महाराष्ट्री अपभ्रंश से बतलाया जाता है, इसी प्रकार उत्कली अपभ्रंश उड़िया भाषा की जननी कही जाती है।

मागधी अपभ्रंश मगही आदि वर्तमान बिहारी भाषाओं का आधार है, यही मागधी बंगाल में पहुँचकर प्राच्या अथवा गौड़ी कहलाई, और उसी के अपभ्रंश से बंगला भाषा और आसामी की उत्पत्ति हुई। मागध अपभ्रंश का बड़ा विस्तृत

रूप देखा जाता है, उत्कल अपभ्रंश भी उसी के प्रभाव से प्रभावित है, और पूर्व में ढक्की भाषा पर भी उसका अधिकार दृष्टिगत होता है। वह उत्तर दक्षिण और पूर्व में ही नहीं बढ़ी, उसने पश्चिम में भी अपना विकास दिखलाया और अर्द्धमागधी कहलाई। जिसके अपभ्रंश ने अवधी, बघेलखंडी, और छत्तीसगढ़ी का सृजन किया।

पश्चिमी भारत की वर्तमान भाषाओं का सम्बन्ध नागर अपभ्रंश से है, उसका एक रूप शौरसेनी है और दूसरा आवन्ती। शौरसेनी का विस्तार पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी में देखा जाता है और आवन्ती का प्रभाव राजस्थानी और गुजराती में। कहा जाता है पंजाब से लेकर नेपाल तक के पहाड़ी प्रदेशों में जो भाषा इस समय बोली जाती है, उसका सम्बन्ध भी उज्जैन प्रान्त की आवन्ती भाषा के अपभ्रंश से ही है, क्योंकि राजस्थानी भाषाओं की जनक वही है, और राजस्थानी भाषाओं का ही अन्यतम रूप इन पहाड़ी भाषाओं में पाया जाता है।

श्रीयुत् डॉक्टर सुनीति कुमार चटर्जी महोदय इस अपभ्रंश भाषा के विषय में क्या कहते हैं, उसे भी सुनिए–

'ईस्वी प्रथम सह। वर्षों के बीच में प्राचीन भारतवर्ष में एक नवीन राष्ट्र या साहित्यिक भाषा का उद्‌भव हुआ। यह अपभ्रंश भाषा थी, जो शौरसेनी प्राकृत का एक रूप थी। अपभ्रंश भाषा–अर्थात् यह शौरसेनी अपभ्रंश पंजाब से बंगाल तक और नेपाल से महाराष्ट्र तक साधारण शिष्ट भाषा अैर साहित्यिक भाषा बनी। लगभग ईस्वी सन् 800 से 13 या 14 सौ तक शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचारकाल था। गुजरात और राजपूताने के जैनों के द्वारा इसमें एक बड़ा साहित्य बना। बंगाल के प्राचीन बौद्ध सिद्धाचार्यगण इसमें पद रचते थे, जो अन्त में भोट (तिब्बती) भाषा में उल्था किये गये। इसके अतिरिक्त भारत में इस अपभ्रंश में एक विराट लोकसाहित्य बना जिसके टूटे-फूटे पद और गीत आदि हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण और प्राकृत पिंगल और छन्दोग्रन्थ में पाये जाते हैं। शौरसेनी अपभ्रंश की प्रतिष्ठा के कई कारण थे। ईस्वी प्रथम सहक की अन्तिम सदियों के राजपूत राजाओं की सभा में यह भाषा बोली जाती थी, क्योंकि यह भाषा उसी समय मध्यदेश और उसके संलग्न प्रान्तों में–आधुनिक पछाँह में–साधारणतः घरेलू भाषास्वरूप में इस्तेमाल होती थी। द्वितीय कारण यह है कि इस समय गोरखपंथी आदि अनेक हिन्दू समुदाय के गुरु लोग जो पंजाब और हिन्दुस्तान से नवजाग्रत हिन्दू धर्म की वाणी लेकर भारत के अन्य प्रदेशों में गये, वे भी इसी भाषा को बोलते थे, इसमें पद आदि बनाते थे, और इसी में उपदेश देते थे। उसी समय

उत्तर भारत के कन्नौजिया आदि ब्राह्मण बंगाल आदि प्रदेश में ब्राह्मण आचार और संस्कृति ले उपनिविष्ट हुए। इन सब कारणों से आज से लगभग एक हजार साल आगे, जिसे हम हिन्दी का पूर्व रूप कह सकते हैं, वही शौरसेनी अपभ्रंश, ठीक उसी प्रकार जैसे आजकल हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है, एक राष्ट्रीय साहित्यिक तथा धार्मिक भाषा हुई थी।'

अब तक जो कुछ लिखा गया, उससे यह बात प्रकट हुई कि किस प्रकार प्राचीन संस्कृत अथवा वैदिक भाषा से प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति हुई, और फिर कैसे प्राकृत भाषाओं से अपभ्रंश भाषाओं का उद्‌भव हुआ। यह भी बतलाया जा चुका है, कि अपभ्रंश भाषाओं का परिवर्तित रूप ही वर्त्तामानकालिक बोलचाल की भाषाएँ हैं, जो आजकल भारतवर्ष के अधिकांश भाग में बोली जाती हैं। हमारी हिन्दी भाषा उन्हीं भाषाओं में से बोलचाल की एक भाषा है। अपना पूर्वरूप बदलकर वह वर्त्तामान रूप में हमारे सामने है। उसका पूर्व रूप क्या था, उसकी कुछ रचनाएँ देखिए-विदग्धा मुखमण्डनकार ने अपभ्रंश भाषा की निम्नलिखित कविता बतलाई है-

रसि अह केण उच्चाडण किज्जइ।
जुयदह माणस केण उविज्जइ।
तिसिय लोउ खणि केण सुहिज्जइ।
एह पहो मह भुवणे विज्जइ।

रसिकों का उच्चाटन किस प्रकार किया जा सकता है, युवतियों का मन किस प्रकार उद्विग्न होता है, तृषितलोक क्षणभर में किस प्रकार सुखी बनाया जा सकता है, हमारा यह प्रश्न भुवन को विदित हो।

रसिअह = रसिकों, केण = क्यों, उच्चाडण = उच्चाटन, किज्जइ = किया जाय, जुयदह = युवति, माणस = मानस, उविज्जइ = ऊबना, तिसिय = तृषित्, लोउ = लोक, खणि = क्षण, सुहिज्जइ = सुखित, एह = यह, पहो = पश्न, मह = मम, भुवणे = भुवने, विज्जइ = विदित।

वैयाकरण हेमचन्द्र ने अपभ्रंश भाषा का यह उदाहरण दिया है-

बाह विछोड़वि जाहि तुइँ हऊँ तेवइँ को दोसु।
हिय पट्टिय जद नीसरहिं जाणउँ मुंज सरोसुड्ड॥

बिछोड़वि = छुड़ाना, जाहि = जाते हो, तुइँ = तू, हऊँ = हौं = हम, तेवइँ = तिवई = त्रिया, को = कौन, दोसु = दोष, पट्टिय = पट्टी, जद = यदि, नीसरहिं = निकले, जाणउँ = जानूँ, सरोसु = सरोष।

ज्ञात होता है हिन्दी भाषा का निम्नलिखित दोहा, इसी पद्य को आधार मानकर रचा गया है, देखिए दोनों में कितना साम्य है–

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानि कै मोहि।
हियरे सों जब जाहुगे सबल बखानौं तोहि।

दोनों दोहों का भाव लगभग एक है, परन्तु शब्द विन्यास में अन्तर है। पहले दोहे के जितने शब्द हैं, सभी परिचित से ज्ञात होते हैं। उसके अनेक शब्द ऐसे हैं, जो अब तक हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं, विशेष कर ब्रजभाषा की कविता में।

एक पद्य और देखिए–

अग्गिएं उण्हउ होइ जगु वाएं सीअलु तेंव।
जो पुणु अग्गिं सीअला तसु उणहत्ताणु केंव।

जग अग्नि से ऊष्ण और वायु से शीतल होता है। जो अग्नि से शीतल होता है, वह फिर ऊष्ण कैसे होगा।

अग्गिएं = अग्नि से, उण्हउ = ऊष्ण, होइ = होता है, जगु = जगत, वाएँ = वायु, सीअलु = शीतल, तेंव =त्यों, पुणु = पुनि, तसु = सो, केवँ = क्यों, उण्हत्ताणु = ऊष्ण।

अपभ्रंश भाषा की रचनाओं को पढ़कर उसके शब्दों का मैंने जो अर्थ लिख दिया है, उनको देखकर आप लोगों को यह ज्ञात हो जावेगा कि किस प्रकार हिन्दी का विकास अपभ्रंश भाषा से धीरे-धीरे हुआ। इस समय हिन्दी भाषा का रूप बहुत विस्तृत है, उसका प्रचार बिहार से पंजाब तक और हिमालय से मध्यप्रदेश तक है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उस पर दूसरी प्राकृतों के अपभ्रंश का कुछ प्रभाव नहीं है, परन्तु यह निश्चित है कि उसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। चिरकाल तक हिन्दी भाषा का परिचय केवल भाषा कहकर ही दिया जाता रहा। हिन्दी भाषा के प्राचीन साहित्य ग्रन्थों में उसका भाषा नाम ही मिलता है, गोस्वामी जी रामायण में लिखते हैं 'भासाभणित मोर मत थोरी', अब भी पुराने विचार के लोग और प्रायः संस्कृत के पण्डित उसे भाषा ही कहते हैं। नागरी यद्यपि लिपि है, परन्तु पहले क्या अब भी बहुत से लोग हिन्दी को नागरी कहते हैं, और नागरी शब्द को हिन्दी का पर्यायवाची शब्द मानते हैं। परन्तु हिन्दी-संसार का पठित समाज कम से कम पचास वर्ष से उसको' हिन्दी' ही कहता है, और साधारणतया हिन्दी-संसार क्या अन्यत्र भी अब वह इसी नाम से परिचित है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि इस हिन्दी नाम की कल्पना क्या आधुनिक है! वास्तव में यह कल्पना आधुनिक नहीं है, चिरकाल

से उसका यही नाम है, परन्तु यह सत्य है कि इस नाम के प्रयोग में भ्रान्ति होती आई है और अब भी कभी-कभी वह अपना प्रभाव दिखलाये बिना नहीं रहती। मुसलमान जब भारतवर्ष में आये, और उन्होंने जब दिल्ली एवं आगरा को अपनी राजधानी बनाया तो अनेक कार्य सूत्र से उनको अपने आसपास की देशी भाषा का नामकरण करना पड़ा। क्योंकि फारसी, अरबी, अथवा संस्कृत तो देशभाषा को कह नहीं सकते थे और वह वास्तव में फारसी, अरबी अथवा संस्कृत थी भी नहीं, इसलिए उन्होंने देशभाषा का नाम 'हिन्दी' रखा। यह नाम रखने का हेतु यह भी हुआ कि वे भारतवर्ष को 'हिन्द' कहते थे, इसलिए इस देश की भाषा को उन्होंने 'हिन्दी कहना ही उचित समझा। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू शब्द ही से हिन्दी शब्द बना, किन्तु यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि हिन्दू शब्द भी हिन्द शब्द से ही बना है। यद्यपि कुछ लोग यह बात नहीं मानते, और अन्य प्रकार से हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति करते हैं, परन्तु बहुमान्य सिद्धान्त यही है कि 'हिन्द' शब्द से ही हिन्दू शब्द बना है। क्यों यह सिद्धान्त बहुमान्य है, इस विषय में अपने एक व्याख्यान का कुछ अंश यहाँ उठाता हूँ-

'हिन्दी शब्द उच्चारण करते ही, हृदय उत्फुल्ल हो जाता है, और नस-नस में आनन्द की धारा बहने लगती है। यह बड़ा प्यारा नाम है, कहा जाता है, इस नाम में घृणा और अपमान का भाव भरा हुआ है, परन्तु जी इसको स्वीकार नहीं करता। हिन्दू शब्द से ही हिन्दी का सम्बन्ध नहीं है-वरन् हिन्द शब्द उसका जनक है-हिन्द शब्द देशपरक है, और भारतवर्ष का पर्यायवाची शब्द है। यदि हिन्दू शब्द से ही उसका सम्बन्ध माना जावे तो भी अप्रियता की कोई बात नहीं। आज दिन हिन्दू शब्द ही इक्कीस करोड़ संख्या का सम्मिलन सूत्र है, यह नाम ही ब्राह्मण से लेकर अस्पृश्य जाति के पुरुष तक को एक बन्धन में बाँधता है। आर्य नाम उतना व्यापक नहीं है, जितना हिन्दू नाम, यह कभी विष रहा हो, पर अब अमृत है। वह पुण्य-सलिला-सुरसरी जल-विधौत, सप्तपुरी-पावन-रजकणपूत और पुनीत वेद मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित है, क्या अब भी उसमें अपावनता मौजूद है। इतना निराकरण के लिए कहा गया, इस विषय में मेरा दूसरा सिद्धान्त है। यह सत्य है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों अथवा पुराणों में हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं है, यह सत्य है कि मेरुतन्त्र का 'हीनश्च दूषयत्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिय'और शिव रहस्य का 'हिन्दू धर्म प्रलोप्तारोभविष्यन्ति कलौयुगे'आधुनिक श्लोक खंड हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि विजेता मुसलमानों ने बलपूर्वक हिन्दुओं से हिन्दू नाम नहीं स्वीकार कराया। यदि बलात् यह नाम स्वीकार कराया गया होता, तो

चन्दवरदाई ऐसा स्वधर्माभिमानी अब से सात सौ बरस पहले, अपने निम्नलिखित पद्य में हिन्दुवान, शब्द का प्रयोग न करता। वह लिखता है–

'हिन्दुवान रान भय भान मुख गहिय तेग चहुँआन अब'

वास्तव बात यह है कि फारस–निवासी चिरकाल से भारत को हिन्द कहते आये हैं। अब से लगभग पाँच सहस्र वर्ष की पुरानी पुस्तक **जिन्दावस्ता** में इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है, उसकी 163वीं आयत यह है–

'चूं व्यास ' हिन्दी, बलख' आमद'
गुस्तास्पजरतुश्तरा बखवाँद'

यह हिन्द नाम सिन्धु के सम्बन्ध से पड़ा है, क्योंकि फारसी में हमारा 'स' 'ह' हो जाता है, जैसे सप्त से हफ्त, असुर से अहुर, सोम से होम बना वैसे ही सिंध से हिंध अथवा हिन्द बन गया और इसी हिन्द से ही हिन्दू शब्द की वैसे ही उत्पत्ति है, जैसे इण्डस से इण्डिया और इण्डियन की। जब मुसलमान जाति विजेता बनकर भारत में आई, तो वह यहाँ के निवासियों को इसी प्राचीन नाम से पुकारती रही, अतएव उसके संसर्ग और प्रभाव से यह शब्द सर्वसाधारण में गृहित हो गया। इस सीधी और वास्तविक बात को स्वीकार न करके यह कहना कि हिन्दू माने काफिर के हैं, अतएव बलात् यह नाम हिन्दुओं से स्वीकार कराया गया, अनुचित और असंगत है।'

डॉक्टर जी. ए. ग्रियर्सन क्या कहते हैं, उसे भी सुनिए–

'यूरोपियन लेखकों ने 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग बड़ी लापरवाही के साथ किया है। यह फारसी शब्द है, और इसका अर्थ है, भारत का अथवा भारत से सम्बन्ध रखने वाला। परन्तु लोग इसका सम्बन्ध हिन्दू शब्द से बतलाते हैं, जो ठीक नहीं। पुराने समय में भी मध्यभारत की भाषा, भारत में सबसे महत्त्व की होती थी। यह स्थानीय भाषा नहीं है, वरन् एक प्रकार से' हिन्दुस्तानी' है–जो कि उत्तरी और पश्चिमी भारत के बोल–चाल की भाषा है'1 मुसलमान लोग हमारी देश भाषा को बहुत पहले से हिन्दी कहते आये हैं, इसका प्रमाण खुसरो की रचनाओं में मौजूद है। खुसरो ईस्वी तेरहवें शताब्दी में हुए हैं–उन्होंने हिन्दी भाषा में भी रचना की है। हिन्दुओं को फारसी सिखलाने के लिए उन्होंने **खालिकवारी** नाम की एक पुस्तक लिखी है, उसमें वे कहते हैं–

मुश्क काफूरस्त कस्तूरी कपूर।
'हिन्दवी, आनन्द शादी औसरूर।
सोजनो रिश्ता व हिंदी सूई ताग।'

इसका अर्थ हुआ मुश्क को कस्तूरी, काफूर को कपूर, शादी और सरूर को आनन्द, एवं सोजन और रिश्ता को हिन्दी में सूई तागा कहते हैं।

अपनी हिन्दी रचना में एक जगह वे यह कहते हैं–

फारसी बोली आईना। तुर्की ढूँढी पाईना।
' हिन्दी, बोली आरसी आए। खुसरो कहे कोई न बताये।'

इसका अर्थ हुआ फारसी में जिसे आईना कहते हैं, हिन्दी में उसको आरसी। मलिक मुहम्मद जायसी भी हिन्दी को हिन्दवी ही कहते हैं–

तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि।
जामें मारग प्रेम का सबै सराहै ताहि।

इन पद्यों से यह स्पष्ट हो गया कि अब से छः–सात सौ बरस पहले से हमारे मध्यवर्ती देश की भाषा हिन्दी कहलाती है। परन्तु यह अवश्य है कि हिन्दुओं में यह नाम बहुत पीछे गृहित हुआ है, जैसा मैं ऊपर लिख आया हूँ। पहले हिन्दवी अथवा हिन्दुई को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। हिन्दुई शब्द गँवारी बोलचाल अथवा साधारण कोटि की भाषा के लिए प्रयुक्त होता था। इसीलिए उच्च हिन्दी अथवा उसकी साहित्यिक रचनाओं का नाम भाषा था। परन्तु जब यह भाषा बहुत व्यापक हुई, और उसमें अनेक अच्छे–अच्छे ग्रन्थ निर्मित हुए, सुदूर प्रान्तों से सुन्दर–सुन्दर समाचार–पत्र निकले, तब विचार बदला और उस समय से हिन्दी भाषा कहकर ही उसका परिचय दिया जाने लगा। आज दिन तो हिन्दी अपने नाम के अर्थानुसार वास्तव में हिन्द की भाषा बन रही है।

चतुर्थ प्रकरण

आर्य भाषा परिवार

हिन्दी के विकास के विषय में और बातों के लिखने के पहले यह आवश्यक जान पड़ता है कि आर्यभाषा परिवार की चर्चा की जावे, क्योंकि इससे हिन्दी सम्बन्धी बहुत–सी बातों पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना है। डॉक्टर जी. ए. ग्रियर्सन ने लन्दन के एक बुलेटिन में इस विषय पर एक गवेषणापूर्ण लेख सन् 1918 में लिखा है, उसी के आधार से मैं इस विषय को यहाँ लिखता हूँ, कुछ और ग्रन्थों से भी कहीं–कहीं सहायता ली गई है।

भारत की भाषाओं के तीन विभाग किये जा सकते हैं, वे तीन भाषाएँ ये हैं–

1.आर्य भाषाएँ, 2. द्रविड़ भाषाएँ, 3. और अन्य भाषाएँ। अन्य भाषाओं के अन्तर्गत मुण्डा और तिब्बत वर्मन भाषाएँ हैं, द्रविड़ भाषा मुख्यत: दक्षिण में बोली जाती है। आर्यभाषा उत्तरी मैदानों में फैली हुई है, गुजरात और महाराष्ट्र प्रान्त में भी उसका प्रचलन है, उसके अन्तर्गत अधिकांश पहाड़ी भाषाएँ भी हैं। हिन्दूकुश के दक्षिणी पहाड़ी देशों में एक चौथी भाषा भी पाई जाती है, जिसको डार्डिक अथवा वर्तमानकालिक पिशाचभाषा कहते हैं।

1. मध्यदेशीय भाषा उत्तरीय भारत के मध्य में और उसके चारों ओर फैली हुई है, साधारणतया यह पश्चिमी हिन्दी कहलाती है। बाँगड़ई, ब्रजभाषा, कन्नौजी और बुन्देलखंडी भाषाएँ इसके अन्तर्गत हैं। बाँगड़ई या हरियानी यमुना के पश्चिम में पूर्व दक्षिणी पंजाब की भाषा है, यह मिश्रित भाषा है, जिसमें हिन्दी, पंजाबी और राजस्थानी सम्मिलित हैं। ब्रजभाषा मथुरा के चारों ओर और गंगा दोआबा के कुछ भागों में बोली जाती है, इसका साहित्य भण्डार बड़ा विस्तृत है। कन्नौज के आसपास और अन्तर्वेद में कन्नौजी भाषा का प्रचलन है, यह भाषा उत्तर में नेपाल की तराई तक फैली हुई है, इसमें और ब्रज भाषा में बहुत थोड़ा अन्तर है। बुन्देलखंड की बोली बुन्देली है, जो दक्षिण में नर्मदा की तराई तक पहुँचती है, यह भाषा भी ब्रजभाषा से बहुत मिलती है।

पश्चिमी हिन्दी का एक रूप वह शुद्ध हिन्दी भाषा है, जो मेरठ और दिल्ली के आसपास बोली जाती है, इसको हिन्दुस्तानी भी कहते हैं। गद्य हिन्दी साहित्य और उर्दू रचनाओं का आधार आजकल यही भाषा है, आजकल यह भाषा बहुत उन्नत अवस्था में है, और दिन-दिन इसकी उन्नति हो रही है। इसका पद्यभाग उर्दू सम्बन्धी तो बहुत बड़ा है, परन्तु हिन्दी में भी आजकल उसका विस्तार बढ़ता जाता है। अधिकांश हिन्दी भाषा की कविताएँ आजकल इसी भाषा में हो रही हैं, इसको खड़ी बोली कहा जाता है।

बाँगड़ई जिस प्रान्त में बोली जाती है, उस प्रान्त का नाम बाँगड़ा है, इसी सूत्र से उसका यह नामकरण हुआ है। हरियाना प्रान्त में इसे हरियानी कहते हैं-कर्नाटक में यह जाटू कही जाती है, क्योंकि जाटों की वह बोलचाल की भाषा है।

कन्नौजी में साहित्य का अभाव है, इसलिए दिन-दिन यह भाषा क्षीण हो रही है, और उसका स्थान दूसरी बोलियाँ ग्रहण कर रही हैं। बुन्देलखंडी भाषा में कुछ साहित्य है, परन्तु ब्रजभाषा का ही उस पर अधिकार देखा जाता है।

साहित्य की दृष्टि से इन सब में ब्रजभाषा का प्राधान्य है, जो कि शौरसेनी की प्रतिनिधि है।

'पंजाबी' हिन्दीभाषा के उत्तर-पश्चिम ओर है, और इसका क्षेत्र पंजाब है। पूर्वीय पंजाब में हिन्दी है, और पश्चिमी पंजाब में लहँड़ा, जो बहिरंग भाषा है। पंजाबी के वर्ण राजपूताने के महाजनी और काश्मीर के शारदा से मिलते-जुलते हैं इसमें तीन ही स्वर वर्ण हैं। व्यंजन वर्ण भी स्थान-स्थान पर कई ढंग से लिखे जाते हैं। गुरु अंगदजी ने इसका संशोधन ईस्वी सोलहवीं शताब्दी में किया, उसी का परिणाम 'गुरुमुखी' अक्षर हैं। अमृतसर के चारों ओर उच्च-पंजाबी भाषा बोली जाती है। यद्यपि स्थान-स्थान पर उसका कुछ परिवर्तित रूप मिलता है, पर वास्तव में भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। 'डोगरी' जम्मू स्टेट और कुछ परिवर्तन के साथ काँगड़ा जिले में बोली जाती है। पंजाबी साहित्य कम है। दोनों ग्रन्थसाहब यद्यपि गुरुमुखी अक्षरों में लिखे हैं, परन्तु उनकी भाषा पश्चिमी हिन्दी है, कोई-कोई रचना ही पंजाबी भाषा में है। पंजाबी भाषा में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य नहीं है, यद्यपि शनैःशनैः उसमें संस्कृत तत्सम का प्रयोग अधिकता से होने लगा है।

पंजाबियों की यह सम्मति है कि अमृतसर जिले की माझी बोली ही ऐसी है, जिसमें पंजाबी का ठेठ रूप पाया जाता है। मुसलमानों ने गुजरात और गुजरानें वाला में बोली जाने वाली पंजाबी के आधार से अपने साहित्य की रचना की है। इनकी भाषा हिन्दू लेखकों की अपेक्षा अधिक ठेठ है। इनकी भाषा में पश्चिमी हिन्दी का रंग भी पाया जाता है, इस भाषा में अब भी साहित्य की रचना होती है, इस मिश्रित भाषा का पुराना साहित्य भी मिलता है।

मौलवियों और पादरियों ने भी अपने धर्म का प्रचार करने के लिए पंजाबी भाषा में रचना की है, इनमें से **अब्दुल्ला आसी** का बनाया हुआ 'अनवाअ वाराँ' बहुत प्रसिद्ध है।

मुसलमानों ने कुछ जंगनामे और यूसुफजुलेखा की कहानी भी पंजाबी भाषा में पद्यबद्ध की है। हीर राँझे की प्रसिद्ध कथा भी पंजाबी पद्य का सुन्दर ग्रन्थ है, इसकी रचना **सय्यद वारिस शाह** ने की है, इसकी भाषा ठेठ पंजाबी समझी जाती है।

पंजाबी के दक्षिण में 'राजस्थानी' है, राजस्थानी द्वारा हिन्दी दक्षिण पश्चिम में फैली, हिन्दी 'राजस्थानी' के क्षेत्र में पहुँचकर गुजरात के समुद्र तक बढ़ी और वहाँ गुजराती बन गई। इसीलिए राजस्थानी और गुजराती बहुत मिलती हैं।

राजस्थानी में कई भाषाएँ अथवा बोलियां हैं, परन्तु उनके चार मुख्य विभाग हैं। उत्तर में 'मेवाती' दक्षिण पूर्व में 'मालवी' पश्चिम में' मारवाड़ी' और मध्यप्रदेश में 'जयपुरी' का स्थान है। प्रत्येक की बहुत-सी उपभाषाएँ हैं। 'दो महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के कारण 'मारवाड़ी' और 'जयपुरी' में भेद है। 'जयपुरी' में सम्बन्ध कारक का चिन्ह 'हो' और क्रिया का पुराना धातु 'अछ' है। परन्तु 'मारवाड़ी' में सम्बन्धकारक का चिन्ह 'रो' और 'है' धातु है। गुजराती में कोई निर्देश योग्य अवान्तर भेद नहीं है, परन्तु उत्तरी गुजराती दक्षिणी गुजराती से मुख्य बातों में भेद रखती है। 'राजस्थानी' का स्थान समस्त राजपूताना और उसके आसपास के कुछ विभाग हैं, और गुजराती का स्थान गुजरात और काठियावाड़ हैं, जिनका प्राचीन नाम सौराष्ट्र है।

राजस्थान की बोलियों में 'मारवाड़ी' और 'जयपुरी' ही ऐसी हैं, जिनमें साहित्य पाया जाता है, 'मारवाड़ी' का साहित्य प्राचीन ही नहीं विस्तृत भी है। जिस मारवाड़ी भाषा में कविता लिखी गई है उसे 'डिंगल' कहते हैं, इसमें चारणों की ओजस्विनी रचनाएँ हैं। 'जयपुरी' में **दादूदयाल** और उनके शिष्यों की वाणियाँ हैं और इस दृष्टि से उसका साहित्य भी मूल्यवान है। ब्रजभाषा की कविता को 'पिंगल' कहते हैं, उससे भेद करने के लिए ही 'डिंगल' नाम की कल्पना हुई है।

गुजराती साहित्य बड़ा विस्तृत है, इसके निर्माण में जैन साधुओं ने भी हाथ बँटाया है, उन्होंने धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं लिखे, बड़े-बड़े काव्यों की भी रचना की है, जिन्हें रासो अथवा रास कहते हैं। गुजराती साहित्य में पारसी और मुसलमानों की भी रचनाएँ मिलती हैं, परन्तु उनमें फारसी, अरबी शब्दों का प्रयोग अधिकतर हुआ है। गुजराती भाषा के प्रतिष्ठित और अधिक प्रसिद्ध कवि **नरसिंह** मेहता हैं, जो वीं पन्द्रहवीं शताब्दी में हुए हैं। ये जाति के नागर ब्राह्मण थे, इनकी रचना भावपूर्ण ही नहीं भक्तिमयी भी है।

मध्यप्रदेश के पूर्व में पूर्वी हिन्दी है। पूर्वीय हिन्दी पर मध्यप्रदेशीय अथवा पश्चिमी हिन्दी का प्रभाव बराबर पड़ता रहा है। साथ ही बाहरी भाषाओं के संसर्ग से भी वह नहीं बची, इसलिए उस पर दोनों का अधिकार देखा जाता है। साधारणत: इसकी संज्ञाओं और विशेषणों का रूप पूर्व की बहिरंग भाषाओं से मिलता-जुलता है, और क्रियाओं एवं धातुओं का रूप मध्यदेशीय हिन्दी से। पूर्वीय हिन्दी में तीन प्रधान भाषाएँ हैं। 'अवधी', 'बघेली' और 'छत्तीसगढ़ी'। अवधी को बैसवाड़ी भी कहते हैं, यह भाषा अवधा के दक्षिण पश्चिम में बोली

जाती है। कहा जाता है यह बैसवाड़ी राजपूतों की भाषा है। अवधी का दूसरा नाम' कोशली' है। अवधी और बघेली में बहुत कम अन्तर है। छत्तीसगढ़ी पहाड़ी भाषा है, और अधिक स्वतंत्र है, उस पर कुछ उत्कल भाषा का प्रभाव भी पाया जाता है। यदि पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा भगवान् कृष्णचन्द्र की गुण गाथाओं से पूर्ण है, तो पूर्वी हिन्दी की अवधी भगवान् रामचन्द्र के कीर्तिकलाप से उद्भासित है। यदि पश्चिमी हिन्दी के सर्वमान्य महाकवि प्रज्ञाचक्षु **सूरदास** जी हैं, तो पूर्वी हिन्दी के सर्वोच्च महाकवि **गोस्वामी तुलसीदास** है। यदि उन्होंने प्रेमसिद्धान्त की पराकाष्ठा अपनी रचनाओं में दिखलायी, तो इन्होंने भक्तिरस की वह धारा बहाई जिससे समस्त हिन्दी-संसार आप्लावित है। अवधी भाषा के मलिक मुहम्मद जायसी भी आदरणीय कवि हैं, उनका 'पधवत' अवधी भाषा का बहुमूल्य ग्रन्थ है, उसमें अधिकतर बोलचाल की भाषा का प्रयोग देखा जाता है, अवधी भाषा में कुछ और ग्रन्थ भी पाये जाते हैं, परन्तु उनमें कोई विशेषता नहीं है। कबीर साहब को भी अवधी भाषा का कवि माना जाता है, उन्होंने स्वयं लिखा है, 'बोली मेरी पुरुब की' परन्तु उनकी रचनाओं के देखने से यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती। उनके पद्यों की विचित्र भाषा है, उसमें किसी भाषा का वास्तविक रूप नहीं दिखलाई देता। नागरी प्रचारिणी सभा से जो उनकी ग्रन्थावली निकली है, और जो उनके समय में लिखित पुस्तक के आधार से सम्पादित हुई है, उसमें पंजाबी भाषा का ढंग ही अधिक देखा जाता है। अवधी भाषा में साहित्य है, परन्तु ब्रजभाषा के समान वह विस्तृत और विशाल नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास और कविवर सूरदास को छोड़कर हिन्दी-संसार के जितने कवि और महाकवि हुए हैं, उन सबकी अधिक रचनाएँ ब्रजभाषा में ही हैं। एक से एक बड़े कवियों का सहारा पाकर पाँच सौ वर्ष में ब्रजभाषा का साहित्य-भण्डार जितना बड़ा और विशाल हो गया है, उतना बड़ा भण्डार किसी दूसरी देशभाषा का नहीं है।

दक्षिण भारत में मराठी ही एक ऐसी भाषा है, जिसको आर्यभाषा परिवार की कह सकते हैं। मराठी को महाराष्ट्री प्राकृत की जेठी बेटी कह सकते हैं। वह दक्षिणी उपत्यका, पश्चिमीघाट और अरब समुद्र के मध्य भाग में बोली जाती है। यह बरार और उसके पूर्व के कुछ प्रदेशों की भी भाषा है, इसका प्रचार मध्यप्रान्त में भी देखा जाता है, परन्तु वहाँ उसका शुद्ध रूप अधिक सुरक्षित नहीं मिलता। बस्तर राज्य में से होते हुए, यह उड़िया भाषा की कुछ भूमि में भी प्रवेश कर जाती है। इसके दक्षिण में द्राविड़ भाषाएँ हैं, और उत्तर-पश्चिम में राजस्थानी,

गुजराती और पूर्वी एवं पश्चिमी हिन्दी है। मराठी अपने पूर्व की छत्तीसगढ़ी हिन्दी से बहुत कुछ समानता रखती है।

मराठी में तीन प्रधान भाषाएँ अथवा बोलियाँ हैं। पहली देशी मराठी है, जो पूना के चारों ओर शुद्धतापूर्वक बोली जाती है। उत्तरी और मध्य कोंकण में यही भाषा अनेक रूपों में दिखलाई देती है, पर सच्ची कोकणी ही दूसरी भाषा है, जो कोंकण के दक्षिण भाग में पाई जाती है, और इन सबों से भिन्नता रखती है। तीसरी बरारी और नागपुरी है, जो बरार और मध्यप्रान्त के कुछ भाग में प्रचलित है, शुद्ध मराठी में और इसमें उच्चारण सम्बन्धी भिन्नता है। बस्तर में बोली जाने वाली भाषा को 'हलाबी' कहते हैं, इसमें मराठी और द्राविड़ी का मिश्रण देखा जाता है। पहली मराठी ही शिष्टभाषा समझी जाती है, और साहित्य इसी भाषा में है। मराठी साधारणत: नागरी अक्षरों में लिखी जाती है, कोंकणी भाषा के लिखने में कनारी वर्णों से काम लिया जाता है। मराठी का साहित्य-भण्डार बड़ा है, और इसमें मूल्यवान कविता पाई जाती है। एक बात में मराठी कुल आर्य-परिवार की भाषाओं से पृथक् है, वह यह कि मराठी के उच्चारण पर वैदिक काल का प्रभाव देखा जाता है, जब कि अन्य भाषाओं ने अपने उच्चारण को स्वतंत्र कर लिया है।

मराठी का पुराना रूप ताम्रपत्रों और शिला-लेखों में पाया जाता है, ईस्वी के बारहवीं शताब्दी के कुछ ऐसे ताम्रपत्र और शिलालेख पाये गये हैं। ईस्वी चौदहवें शताब्दी में ज्ञानदेव नामक एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं, उन्होंने भगवद्गीता पर मराठी में ज्ञानेश्वरी टीका लिखी है। उन्हीं के समय में नामदेवजी भी हुए, जिनकी हिन्दी रचना भी पाई जाती है। मराठी के अभंगों के रचयिताओं में एकनाथ और तुकाराम का नाम अधिक प्रसिद्ध है। स्वामी रामदास का 'दासबोधा' भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ईस्वीं उन्नीसवीं शताब्दी में **मोरोपन्त** एक बड़े प्रसिद्ध कवि हो गये हैं।

पूर्वी हिन्दी के पूर्व में बिहारी भाषा है, आजकल बिहारी भाषा भी हिन्दी ही मानी जाती है। बिहारी कुल बिहार, छोटानागपुर और संयुक्त प्रान्त के कुछ पूर्वी भागों में बोली जाती है, अब तक इसमें मागधी प्राकृत की दो विशेषताएँ पाई जाती हैं। 'स' काश' में बदल जाना और अकारान्त शब्दों का एकारान्त हो जाना। बिहारी की तीन प्रधान भाषाएँ हैं-मैथिली, मगही और भोजपुरी। ईस्वी पन्द्रहवीं शताब्दी से मैथिली में कुछ साहित्य पाया जाता है। 'मगही' प्राचीन मागधी प्राकृत की प्रतिनिधि है, और उसी के अपभ्रंश से वर्तमान रूप में परिणत

हुई है। मैथिली और मगही के व्याकरण और शब्दों में बहुत समानता है, पर मगही में साहित्य का अभाव है। भोजपुरी का इन दोनों से अधिक अन्तर है, यह दोनों से सीधी है। मगही को तिरहुतिया भी कहते हैं। **हार्नल महोदय** ने बिहारी को पूर्वी हिन्दी कहा है।

मैथिल कोकिल **विद्यापति** मैथिली भाषा के बहुत बड़े कवि हुए हैं, इनकी रचनाएँ बड़ी ही मधुर एवं भावमयी हैं। उनकी पदावली बहुत ही सरस है, उसमें राधिका के मधुर भावों का बड़ा हृदयग्राही चित्रण है। उनकी रचना की जितनी ममता हिन्दी भाषा वालों को है, उतनी ही बँगला भाषियों को। ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग उनकी रचनाओं में बड़ी ही रुचिरता के साथ किया गया है। भोजपुरी में भी साहित्य नहीं मिलता, परन्तु इस भाषा में लिखे गये ग्रामीण गीत प्रायः सुने जाते हैं, जो बड़े ही मनोहर होते हैं। **पं. रामनरेश त्रिपाठी** ने हाल में जो ग्राम्य गीतों का संग्रह प्रकाशित किया है, उसमें भोजपुरी गीतों का भी पर्याप्त संग्रह हो गया है।

बिहार के दक्षिण पूर्व में बोली जाने वाली भाषा उड़िया कहलाती है। मागधी अपभ्रंश से ही इसकी उत्पत्ति भी मानी जाती है, जहाँ पर यह मराठी भाषा के समीप पहुँचती है, वहाँ इसमें उसका मिश्रण भी देखा जाता है। बंगाल के समीप पहुँचकर यह बंगाली भाषा से भी प्रभावित है। उड़िया को उत्कली और उड्री भी कहते हैं। इसमें साहित्य भी पाया जाता है, और इस भाषा के भी अच्छे-अच्छे कवि हुए हैं। अधिकांश रचनाएँ इसकी कृष्णलीलामयी हैं, और उनमें यथेष्ट सरसता है।

यह भाषा उड़ीसा में, बिहार, मद्रास एवं मध्यप्रान्त के कुछ भागों में बोली जाती है, महाराज नरसिंह देव द्वितीय के एक शिलालेख में इसके प्राचीन स्वरूप का कुछ पता चलता है, यह शिलालेख विक्रमी चौदहवें शताब्दी का है। इसका आदि कवि **उपेन्द्र भञ्ज** समझा जाता है। **कृष्णदास** का रसकल्लोल नामक ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है। इस भाषा का आधुनिक साहित्य भी विशेष उन्नत नहीं है।

बंगाल की भाषा बँगला है। ईस्वी चौदहवीं शताब्दी के उपरान्त, इसका साहित्य बढ़ने लगा, और इस समय बहुत ही समुन्नत है। इसकी बोलचाल की भाषा के प्रधान रूप तीन हैं। पूर्वी, पश्चिमीय और उत्तरीय। प्रत्येक में अलग-अलग कई बोलियाँ हैं। हुगली के चारों ओर पश्चिमीय है, और गंगा के उत्तर प्रदेश में उत्तरीय, जो कि उड़िया भाषा से मिलती-जुलती है। ढाका के

आसपास पूर्वीय भाषा है, जो स्थान-स्थान पर परस्पर बड़ी भिन्नता रखती है। रंगपुरी भाषा आसाम के पश्चिमी छोर पर है, और उत्तरी बंगाल से लगे हुए हिस्सों में बोली जाती है। चटगाँव के आसपास उच्चारण की विशेषताओं के कारण बिलकुल एक नये ढंग की बोली बन गई है, जो कठिनता से बँगला कही जा सकती है। बँगला में 'स' का उच्चारण 'श' होता है इस विषय में वह मागधी से मिलती है। प्राचीन बंगाली कविता में मागधी प्राकृत के कर्ता का चिह्न 'ए' भी सुरक्षित पाया जाता है। जैसे' इष्टदेव' और 'नयनम' के स्थान पर नयने आदि। यह चिह्न वर्तमान बँगल गद्य में भी पाया जाता है।

बँगला भाषा इस समय आर्य परिवार की समस्त भाषाओं से उन्नत है। उसका साहित्य भण्डार सर्व विषयों से परिपूर्ण है। प्रत्येक विषय के ग्रन्थों की रचना उसमें हुई है, और होती जा रही है। विश्वकवि श्रीयुत की रचनाओं से उसको बहुत बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। जैसे कृतविद्य लेखक इस समय बँगला भाषा में हैं, किसी भारतीय भाषा में नहीं हैं, बँगला के साहित्य में **मानिकचन्द** के गीत सबसे प्राचीन हैं। **चण्डीदास** और कृत्तिवास भी बहुत बड़े कवि हो गये हैं। आधुनिक कवि और लेखकों में **बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी** और माइकल मधुसूदनदत्ता आदि ने भी बड़ी कीर्ति पाई है।

आसाम में बोली जाने वाली भाषा आसामी कहलाती है, यह आर्य-परिवार की एक भाषा है। इस देश में रहने वाली बहुत-सी जातियाँ तिब्बती वर्मन भाषा में बातचीत करती हैं। मगध की मागधी प्राकृत का पता तीन धाराओं से लगाया जा सकता है। पहली धारा है दक्षिण में बोली जाने वाली उड़िया, दूसरी है दक्षिण और पूर्व की पश्चिमीय और पूर्वीय बँगला, तीसरी उत्तर पूर्व की आसामी। बँगला भाषा ही अधिक उत्तर पूर्व में पहुँचकर आसामी बन गई है। यद्यपि आसामी तिब्बती वर्मन भाषा के प्रभाव और संसर्ग के कारण और उच्चारण दोनों में बँगला से बहुत भिन्नता रखती है, परन्तु बँगला से परिवर्तित होकर वर्तमान रूप धारण करने के प्रमाण उसमें बहुत अधिक मौजूद हैं। इसका साहित्य भी उन्नत है, और इसमें बहुत से ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं, जिनको आसामी 'बूरंजी' कहते हैं। कुछ काल तक पादरियों की चेष्टा से आसामी भाषा अपने मुख्यरूप में बँगला से अधिक उन्नत हो गई थी, पर अब फिर उसमें संस्कृत शब्दों का अधिक प्रवेश हो रहा है।

आसाम को ही संस्कृत में कामरूप कहा गया है, बंगाली उसे 'ओशोम' कहते हैं, इसी 'ओशोम' से पहले 'ओशोमी' और बाद को आसामी उसकी भाषा

का नाम पड़ा। इसमें दूसरे प्रकार के साहित्य भी हैं। आसामी भाषा का सबसे प्राचीन ग्रन्थ भागवत का अनुवाद है, जो कि ईस्वी चौदहवीं शताब्दी में हुआ था। **श्री शंकर** नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् ने यह अनुवाद किया था।

कुछ पहाड़ी भाषाएँ भी ऐसी हैं कि जिनका सम्बन्ध आर्य परिवार की भाषा से है। इस प्रकार की भाषाएँ तीन हैं और वे पूर्व में नेपाल से लेकर पश्चिम में पंजाब की पहाड़ियों तक फैली हुई हैं। इनकी संज्ञा है-1. पूर्वीय पहाड़ी 2. मध्य पहाड़ी 3.पश्चिमीय पहाड़ी।

योरोपियन लोग नेपाली भाषा को पूर्वीय पहाड़ी भाषा कहते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं। नेपाल की भाषा का नाम 'नेवारी' है। पूर्वीय पहाड़ी के और भाषाओं का नाम, पार्वतीय, पहाड़ी भाषा और खसकुरा है। यह 'खसकुरा' खसों की भाषा है, और नागरी लिपि में लिखी जाती है।

गढ़वाल और कुमायूँ के ब्रिटिश जिलों की और गढ़वाल रियासत की भाषा मध्य पहाड़ी कहलाती है। इसकी दो प्रधान शाखाएँ हैं, कुमाउँनी और गढ़वाली। इन दोनों भाषाओं में साहित्य बहुत कम है, इनी-गिनी पुस्तकें ही इसमें मिलती हैं।

शिमला और उसके आसपास की पहाड़ियों में एक-दूसरे से मिलती-जुलती कई भाषाएँ हैं, जिन्हें पश्चिमी पहाड़ी कहते हैं। इन भाषाओं में कोई साहित्य नहीं है। इनका क्षेत्र पश्चिमोत्तर प्रदेश में जौसार और बावर से प्रारंभ होकर पंजाब की रियासतों सिरमौर, मण्डी, चन्दा तथा शिमला पहाड़ी और कुल्लू होते हुए पश्चिम में काश्मीर तक विस्तृत है। इन भाषाओं में जौंसारी, किऊँथली कुल्लुई, चमिआल्ही आदि प्रधान हैं।

ये पहाड़ी भाषाएँ राजस्थानी भाषा से मिलती-जुलती हैं। इनमें गुजराती भाषा का भी पुट है। कारण इसका यह है कि सोलहवीं ईस्वी शताब्दी में और उससे कुछ पहले भी विशेषकर मुसलमानों के समय में राजस्थान अथवा गुजरात से कुछ विजयिनी जातियाँ मुख्यतः राजपूत इन प्रदेशों में आये, और वहाँ की मुण्डा तथा तिब्बती वर्मन आदि जातियों को जीतकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। उनके प्रभाव से ही जनता में उनका धर्म और भाषा भी फैली। कुछ कालोपरान्त इस प्रदेश में लगभग सभी हिन्दू धर्मावलम्बी हो गये, और सभी की भाषा थोड़े परिवर्तन से राजस्थानी बन गयी। मैं पहले लिख आया हूँ कि गुजराती और राजस्थानी में थोड़ा ही अन्तर है, यही बात यहाँ की भाषा में भी पाई जाती है।

उत्तरी पश्चिमीय समूह की भाषा लहन्दी और सिन्धी भी आर्य परिवार की है। लहन्दा पश्चिमी पंजाब की भाषा है, उसको पश्चिमीय पंजाबी, जाटकी, उच्ची और हिन्दीकी भी कहते हैं। लहन्दा का शब्दार्थ है, सूर्य का डूबना, अथवा एश्चिम। जटकी का अर्थ है जाटों की भाषा। उच्ची का अर्थ है उच्च नगर की भाषा। 'हिन्दीकी, हिन्दुओं की भाषा है, यह पश्चिमी भाग में बोली जाती है, यहाँ पश्तो बोलने वाले मुसलमान रहते हैं।'

लहन्दा की तीन बोलियाँ हैं। दक्षिणीय या मुलतानी, उत्तरीय पूर्वी या पोठवारी, उत्तरीय पश्चिमी या धान्नी! लहन्दा में ग्राम्यगीत के अतिरिक्त और कोई साहित्य नहीं है। ईस्वी सोलहवें शताब्दी की लिखी हुई गुरु नानक देव की एक जन्म साखी (जीवन-चरित्र) और कुछ साधारण कविताएँ जहाँ-तहाँ मिल जाती हैं। मुसलमानों की कुछ रचनाएँ पोठहारी बोली में पाई जाती हैं। परन्तु उसको लोग पंजाबी भाषा में लिखी गई मानते हैं।

सिन्धी सिन्धु की भाषा है, दक्षिण में यह समुद्र तक फैली हुई है, उत्तर में आकर यह लहन्दा से मिल जाती है। सिन्ध में प्राचीन काल का ब्राचव् देश था, प्राकृत वैयाकरणों ने यहाँ ब्राचव् अपभ्रंश और ब्राचव् पैशाची का होना स्वीकार किया है। सिन्धी की पाँच भाषाएँ हैं-बिचोली, सिरादकी, लाड़ी, थरेली और कच्छी। बिचोली भाषा मध्य सिन्ध की है, साहित्यिक यही भाषा है, और इसी में साहित्य है। सिरादकी-बिचोली का एक रूप है, वास्तव में उसकी भिन्न सत्ता नहीं है। केवल थोड़ा-बहुत उच्चारण का अन्तर है। सिन्धी सिरादकी को सबसे शुद्ध समझते हैं। लाड़ी लाडू प्रदेश की भाषा है-इसमें भद्दापन है। लाडू का शब्दार्थ है ढालुवाँ। बिचोली और इसमें यह अन्तर है कि इसमें बहुत से प्राचीन रूप पाये जाते हैं, वर्तमान पिशाच भाषा की विशेषताएँ भी इसमें मिलती हैं। थरेली और कच्छी दोनों मिश्रित भाषाएँ हैं। पहली भाषा थारू में बोली जाती है, और यह परिवर्तनशील है, क्योंकि सिंधी भाषाएँ धीरे-धीरे राजस्थानी मारवाड़ी द्वारा प्रभावित होती जाती हैं। कच्छी कच्छ में बोली जाती है, इसमें सिन्धी और गुजराती का मिश्रण है। सिन्धी में साहित्य है, परन्तु थोड़ा। थरेली को 'बरोची' और ठाटका भी कहते हैं, थल से थरु शब्द बना है, इस थरु में बोले जाने के कारण ही 'थरेली' नाम की रचना हुई है। सिरादकी को कुछ सिन्धी पृथक् बोली मानते हैं। **अब्दुल लतीक** नाम का एक प्रसिद्ध कवि ईस्वी अठारहवीं सदी में हो गया है। उसने जो ग्रन्थ रचा है, उसका नाम **'शाहजो रिसालो'** है। इसमें सूफी मत के सिद्धान्तों की छोटी-छोटी कथाएँ लिखकर समझाया गया है। सिन्धी को

सिन्धा का हाफिज कहते हैं। इस भाषा में वीररस की कुछ सुन्दर कविताएँ भी मिलती हैं।

पैशाची भाषा के विषय में पहले कुछ चर्चा हो चुकी है। उसके सम्बन्ध की विशेषता यहाँ लिखी जाती है। वर्तमान पिशाच भाषा के बोलने वाले दक्षिण में काबुल नदी के पास और उत्तर पश्चिम हिमालय की नीची श्रेणिशिनायों में और उत्तर में हिन्दूकुश एवं मुस्तरा श्रेणियों के बीच में रहते हैं। इसके तीन विभाग हैं–काफिर, खोआर और डर्ड। काफिप्र के बोलने वाले काफिरिस्तान में रहते हैं, बशराली इनकी प्रसिद्ध भाषा है, **डेविडसन** ने इस पर एक अच्छा व्याकरण लिखा है, **कोनो** ने इस भाषा का एक कोश भी लिख दिया है। इसके बोलने वाले काफिरिस्तान की वशगल नामक तराई में रहते हैं, इसी से इसका नाम वशगली है। इसके दक्षिण में बाई–काफिर रहते हैं, जिनकी बोली बाईअला है, इसमें और वशगली में बड़ी घनिष्ठता है। 'वेरों'वशगली के पश्चिम की दुर्गम घाटियों में रहने वाले प्रेशुओं की भाषा है, इसमें और वशगली में बड़ा अन्तर है। वेरों में जैसी कि स्थिति संकेत करती है, अन्य भाषा की अपेक्षा ईरानियन प्रभाव ही अधिक है–जैसे कि 'ड' का 'ल' में बदल जाना। परन्तु दूसरी ओर यह उच्चारण में डार्ड भाषा से मिलती है, जो बात और काफिर भाषाओं में नहीं पाई जाती। गबरवटी या गब्रभाषा गबेरों की भाषा है, जो कि नसरत की देश की एक जाति है, यह देश बशगल और चित्राल नदियों के संगम पर है। 'कलाशा' कलाशा–काफिरों की भाषा है, यह भी इन्हीं दोनों नदियों के दोआबे में बोली जाती है। **विडल्फ** ने गवरबटी भाषा का शब्दकोष बनाया है, लेटनर का डार्डिस्तान, कलाशा के विषय में बहुत कुछ बतलाता है। 'पशाई' पैशाची से निकली है, और लगभन के देहकानों की बोली है। पशाई पर जो कि सबसे दक्षिण की भाषा है, पश्चिमी पंजाब के एण्डोएरियन भाषाओं का प्रभाव है। दूसरी ओर कलाशा लोअर भाषा से प्रभावित है। कुल काफिर भाषाओं पर पास की पश्तो भाषा का बहुत बड़ा असर देखा जाता है।

खोआर 'खोयाको' जाति की भाषा है, इसका स्थान वर्तमान पिशाच भाषाओं के काफिर और डार्ड समूह के मध्य में है। यह अपर चित्राल और यासीन के एक भाग की भाषा है। इसे चित्राली या चत्रारी भी कहते हैं। **लेटनर** के 'डार्डिस्तान' नामक ग्रन्थ में इसके विषय में बहुत कुछ लिखा हुआ है, इस भाषा पर **विडल्फ** और **ब्रीयेन** ने व्याकरण भी बनाया है।

डार्ड भाषा समूह में सबसे प्रधान शिना है। यह शिन जाति की भाषा है। ये लोग काश्मीर के उत्तर के रहने वाले हैं। बिडल्फ की ट्राइब्स आव दि हिन्दूकुश और लेटनर, के 'डार्डिस्तान' के देखने से इस बड़ी जाति और इसकी भाषा के विषय का पूरा ज्ञान होता है। **मेगस्थनीज** ने इनको 'डरडेई' कहा है, और महाभारत में इन्हें डारडस लिखा गया है। शिना की बहुत-सी बोलियाँ हैं, उनमें सबसे मुख्य 'जिलजित' घाटी की 'जिलजित' भाषा है। अस्तोर घाटी में बोली जाने वाली भाषा अस्तोरी कहलाती है। चिलासी, गुरेजी, ट्रास और डाहहनू की दो-दो भाषाएँ हैं, जिनके साथ 'बालती' का व्यवहार भी किया जाता है। यूरोपियनों ने 'डार्ड' शब्द का प्रयोग हिन्दुकुश के दक्षिण में बोली जाने वाली कुल इण्डोएरियन भाषाओं के लिए किया है। डार्डिक शब्द इसी से निकला है, जो वर्तमान पिशाची भाषा का भी बोधाक है।

कश्मीरी अथवा काशीरु काश्मीर की भाषा है, इसका आधार शिना की तरह की एक भाषा है। कश्मीरी के बहुत से शब्द-जैसे व्यक्तिवाचक, सर्वनाम अथवा घनिष्ठताबोधक-प्रायः शिना के समान है। बहुत पहले से ही संस्कृत के प्रभाव में रहकर इसने अपने साहित्य का विकास अधिक किया है, इस कारण इसके शब्द भण्डार पर संस्कृत या उसके अन्य अंगों का बहुत प्रभाव पड़ा है। विशेष करके पश्चिम पंजाब की लहन्दा भाषा का जो कि काश्मीर के दक्षिणी सीमा पर प्रचलित है। ईस्वी चौदहवीं शताब्दी से अठारहवें शताब्दी के आरम्भ तक काश्मीर मुसलमानों के अधिकार में रहा है। इन पाँच सौ वर्षों में बहुत लोग मुसलमान हो गये, और इसी सूत्र से कश्मीरी भाषा में अनेक अरबी, फारसी के शब्द भी सम्मिलित हो गये। इसका प्रभाव बचे हिन्दुओं की भाषा पर भी पड़ा है। कश्मीरी में आदरणीय साहित्य है। 1875 ई. में ईश्वर कौल ने संस्कृत भाषा के व्याकरण की प्रणाली पर 'काश्मीर शब्दामृत' नामक एक व्याकरण भी बनाया है। इन्होंने इस भाषा की उच्चारण प्रणाली को बहुत सुधारा है, फिर भी वह सर्वथा निर्दोष नहीं हुई है। स्थान-स्थान पर काश्मीरी भाषा में भिन्नता भी है, इसकी सबसे प्रधान भाषा काष्टवारी है। स्थानीय भाषाओं के नाम 'दोड़ी' श्रामबनी' और 'पौगुली' है। काश्मीरी ही एक ऐसी पैशाची भाषा है, कि जिसके लिखने के वर्ण निजके हैं, उसे शारदा कहते हैं। प्राचीन पुस्तकें इसी वर्ण में लिखी हुई हैं।

'मैया' एक और भाषा है, जो वास्तव में बिगड़ी हुई शिना है, यही नहीं, कोहिस्तान में शिना के आधार से बनी हुई, बहुत-सी बोलियाँ बोली जाती हैं।

परन्तु दक्षिणी भाग में लहन्दा और पश्तो का अधिक प्रभाव देखा जाता है। ये सब भाषाएँ कोहिस्तानी कहलाती हैं, परन्तु इनमें 'मैया' को प्रधानता है। इन भाषाओं का उल्लेख विडल्फ ने अपने ग्रन्थ 'ट्राइब्स आव दि हिन्दूकुश' में किया है। इनमें से किसी में न तो साहित्य है, और न लिखने के वर्ण हैं। कोहिस्तान पर बहुत समय तक अफगानों का अधिकार रहा है, इसीलिए वहाँ अब पश्तो का ही अधिक प्रचार है, कोहिस्तानी उन मुसलमानों की ही भाषा रह गई है, जिनको अपनी प्राचीन भाषा से प्रेम है।

सिंध नदी के इस कोहिस्तान के पश्चिम में स्वात नदी का कोहिस्तान है, यहाँ की प्रधान भाषा भी पश्तो ही है, पर यहाँ भी अब तक कुछ ऐसी जातियाँ हैं, जो शिना के आधार पर बनी हुई बोलियाँ बोलती हैं। प्रधान भाषा गरबी और अन्य भाषाएँ तोरवाली या तोरवल्लाव और वाश्कारिक है। विडल्फ ने इन बोलियों का भी वर्णन किया है। मैया और गरबी दोनों मिश्रित भाषाएँ हैं।

अन्त में यह कह देना आवश्यक है कि प्राचीन पैशाची के बहुत से शब्द और रूप वर्तमान पैशाची की विविध शाखाओं में अब तक थोड़े से परिवर्तन के साथ पाये जाते हैं। जैसे कलाशा में ककबक, बेरों में ककोकु, वशगली में ककक इत्यादि, इस शब्द का अर्थ है चिड़िया। वैदिक संस्कृत में इसको 'कृकवाकृ' कहते हैं। खोआर में द्रोखम शब्द मिलता है, जो संस्कृत का द्रम है, जिसका अर्थ है-चाँदी। संस्कृत क्षीर वशगली का शीर है, जिसका अर्थ श्वेत है। संस्कृत का स्वसार खोआर का इस्युसार है, जिसका अर्थ बहिन होता है।

हिन्दूकुश में दो छोटे-छोटे राज्य हैं, हुञ्जा और नागर। यहाँ के रहने वालों की एक अलग भाषा है, परन्तु यह आर्य-भाषा नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी भी भाषा के वंश के साथ अब तक नहीं हुआ है। यह भाषा अपने प्राचीन रूप में वर्तमान पिशाच भाषा बोले जाने वाले देशों में, और बलतिस्तान के पश्चिम में जहाँ कि अब तिब्बती वर्मन भाषा बोली जाती है, एक समय में बोली जाती थी। ये अनार्य भाषाएँ 'बुरुशस्की' विद्दल्प' की ब्रूरीश्की और लेतनेट की खजुवा हैं। लगभग कुल वर्तमान पिशाच भाषाओं में इसके फुटकल शब्द पाये जाते हैं। जैसे-वर्मी शब्द, चोमार, जिसका अर्थ लोहा है, काश्मीरी के सिवा प्रत्येक वर्तमान पिशाच भाषाओं में बोला जाता है। यह शायद इसी भाषा का प्रभाव है, कि वर्तमान पिशाच भाषा में 'र' अक्षर का विचित्र प्रयोग है। इन सब भाषाओं में वह 'र' अक्षर तालव्य होने की ओर झुकाव रखता है। इस झुकाव की उत्पत्ति वर्तमान पिशाच भाषा से नहीं हुई है। क्योंकि इसका सम्बन्ध केवल इसी भाषा

से नहीं है, और न यह किसी एक समूह की सम्बन्धित भाषाओं की विशेषता है। वरन् यह एक देश की भाषा विशेष की विशेषता है, अर्थात् कुछ वर्तमान पिशाच भाषाओं और निकट के बलतिस्तान भर में इसका प्रचार है। तिब्बती वर्मन भाषा बालती में कुछ ऐसे परिवर्तन होते हैं, जो कि पूर्वी तिब्बती वर्मन भाषाओं में (जैसे पुरिक और लद्दाखी) में नहीं दिखाई देते। तिब्बती वर्मन भाषा बालती और वर्तमान आर्य भाषा पैशाची की अर्थात् दोनों की यह विशेषता एक ही उद्गम से आई है, और इस देश में वही इनका पूर्वज है। खास बुरुस्की में परिवर्तन के इस तरह के उदाहरणों का मिलना असंभव है, क्योंकि उसके आसपास कोई ऐसी भाषा नहीं है, जिससे उसकी तुलना की जा सके। यह अकेली है, और जाने हुए इसके एक भी सम्बन्धी नहीं है।

कहा जाता है पैशाची भाषा में **गुणाढ्य** नामक एक विद्वान् ने 'बव्कथा' अर्थात् 'बृहत्कथा' नामक एक ग्रन्थ लिखा था, यह ग्रन्थ अब नहीं प्राप्त होता। इसका संस्कृत अनुवाद पाया जाता है, जो काश्मीर के दो विद्वानों का किया हुआ है। इनका नाम **क्षेमेन्द्र** और **सोमदेव** था। इस संस्कृत ग्रन्थ का नाम 'कथासरित्सागर' है। 'बव्कथा' पैशाची भाषा के साहित्य का प्रधान ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त काश्मीरी भाषा में कुछ और ग्रन्थ हैं, परन्तु उनमें कोई विशेष प्रसिद्ध नहीं हैं।

काश्मीरी भाषा की प्रथम कवि एक स्त्री है, जिसका नाम लल्ला अथवा लालदेह था, वह चौदहवीं शताब्दी में हुई है। मुसलमान कवियों में महमूद गामी प्रसिद्ध है, यह अठारहवें शताब्दी में था, इसने 'यूसुफजुलेखा' 'लैला-मजनू' और 'शीरीं-फरहाद' नाम की पुस्तकें फारसी ग्रन्थों के आधार से लिखी हैं।

हेमचन्द्र ने दो प्रकार की पैशाची का वर्णन अपने प्राकृत व्याकरण में किया है। पहली को केवल पैशाची और दूसरी को चूलिका-पैशाची लिखा है। पैशाची का वर्णन पाद 4 के 303 से 324 तक के सूत्रों में और चूलिका पैशाची का निरूपण 325से 328 तक सूत्रों में किया गया है। **रामशर्मा** ने अपने प्राकृत कल्पतरु के पैशाची के दो भेद लिखे हैं, 1. शुद्ध और 2.संकीर्ण। शुद्ध के सात और संकीर्ण के चार उपभेद उन्होंने बतलाये हैं-शुद्ध के सात भेद ये हैं-

1. मगध पैशाचिका, 2. गौड़ पैशाचिका, 3. शौरसेनी पैशाचिका, 4. केकय पैशाचिका, 5. पांचाल पैशाचिका, 6. ब्राचड पैशाचिका, 7. सूक्ष्मभेद पैशाचिका।

संकीर्ण के चार उपभेद ये हैं-

1. भाषाशुद्ध, 2. पदशुद्ध, 3. अर्द्धशुद्ध, 4. चतुष्पद शुद्ध।

आर्य भाषा परिवार में सिंहली और जिप्सी भाषाओं की भी गणना की जाती है।

अब से ढाई सहस्त्र वर्ष पहले **विजय कुमार** अपने अनुयायियों के साथ सिंहल गया था और वहाँ उसने बुद्ध-धर्म के साथ आर्य-भाषा का भी प्रचार किया था, उसी की संतान सिंहली है, जो अब तक वहाँ प्रचलित है। सिंहली का प्राचीन रूप ईस्वी दशवीं शताब्दी का है, उसको 'इलू' कहते हैं। इस सिंहली का प्रभाव मालद्वीप भाषा पर भी पड़ा है। इस भाषा में थोड़ा-बहुत साहित्य भी है। किन्तु कोई प्रसिद्ध ग्रन्थ नहीं है।

पश्चिमी एशिया एवं यूरोप के कई भागों में फिरने वाली कुछ जातियाँ 'जिप्सी' कहलाती हैं, ये किसी स्थान विशेष में नहीं रहतीं, यत्र-तत्र सकुटुम्ब पर्यटन करती रहती हैं। इनकी भाषा का नाम भी जिप्सी है। पाँचवीं शताब्दी में जो प्राकृत रूप आर्यभाषा का था, इनकी भाषा उसी की संतान है। यद्यपि भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण करते रहने और अनेक भाषा-भाषियों के संसर्ग से उनकी भाषा में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। परन्तु उनकी भाषा के शब्द भण्डार पर आर्यभाषा की छाप लगी स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

पंचम प्रकरण

अन्तरंग और बहिरंग भाषा

जिन आर्य परिवार की भाषाओं का वर्णन अभी हुआ, कहा जाता है, उनमें दो विभाग हैं। एक का नाम है अन्तरंग भाषा और दूसरी का बहिरंग। इन भाषाओं की मध्य की भाषा को मध्यवर्ती भाषा कहते हैं, और वह है अर्द्धमागधी से प्रसूत वर्तमान काल की पूर्वी हिन्दी।

अन्तरंग भाषा में निम्नलिखित भाषाओं की गणना है। 1. पश्चिमी हिन्दी, 2. पूर्वी पहाड़ी, 3. मध्य पहाड़ी, 4. पंजाबी, 5. राजस्थानी, 6. गुजराती और 7. पश्चिमीय पहाड़ी।

निम्नलिखित भाषाएँ बहिरंग कहलाती हैं-

1. मराठी, 2. उड़िया, 3. बिहारी, 4. बंगाली, 5. आसामी, 6. सिंधी और 7. पश्चिमी पंजाबी।

हौर्नेल का विचार है कि आर्यों के भारत में दो दल आये, एक पहले आया और दूसरा बाद को। जो दल पहले आया, वह मध्य देश में आकर वहीं बस गया।

इस दल के पश्चात् दूसरा प्रबल दल आया और उसने अपने सजातियों को मध्य देश से निकाल बाहर किया। निकाले जाने पर पहले दल वाले मध्यदेश के ही चारों ओर अर्थात् उसके पूर्व, पश्चिम उत्तर और दक्षिण ओर फैल गये, और वहीं बस गये। नवागत आर्य मध्यदेश में बस जाने के कारण 'अन्तरंग' और प्रथमागत आर्य मध्य देश के बाहर निवास करने के कारण 'बहिरंग' कहलाये। 'अन्तरंग' आर्यों में ही वैदिक संस्कृत और ब्राह्मण-कालीन विचारों का विकास हुआ। भारत में दो भिन्न विरोधी दल आने के सिद्धान्त को डॉक्टर जी. ए. ग्रियर्सन ने भी स्वीकार किया है। वे कहते है 'बहिरंग' आर्यों का 'डार्डिक' भाषा-भाषियों से घनिष्ठ सम्बन्ध था, और ऐसा ज्ञात होता है कि वे उन्हीं की एक शाखा थे। मध्य देश से चले जाने पर बहिरंग आर्य पंजाब, सिंधा, गुजरात, राजपूताना, महाराष्ट्र प्रदेश, पूर्वीय हिन्दी क्षेत्र, बिहार और उत्तर में हिमालय की तराइयों में बसे। मध्य देश के अन्तरंग आर्यों की भाषा का वर्तमान प्रतिनिधि पश्चिमी हिन्दी है। अन्य प्रचलित आर्य भाषाएँ, 'बहिरंग' आर्य भाषा से विकसित हुई हैं। 1

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब पंजाब, गुजरात और राजपूताना बहिरंग आर्यों का ही निवास-स्थान था, तो वहाँ की भाषाएँ अन्तरंग कैसे हो गईं? सिंध, महाराष्ट्र और बिहार के समान बहिरंग क्यों नहीं हुई? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि प्रचारकों और विजेताओं द्वारा मध्यदेश की शौरसेनी भाषा का बहुत बड़ा प्रभाव बाद को पंजाब, गुजरात और राजस्थान पर पड़ा, इसलिए इन स्थानों की भाषाएँ काल पाकर अन्तरंग बन गईं। इसी प्रकार राजस्थान और गुजरात के कुछ विजयी आगन्तुकों के प्रभाव से हिमालय की तराइयों की भाषा भी अन्तरंग हो गई। डॉ. जी. ए. ग्रियर्सन लिखते हैं-

'मध्य देश निवासी आर्यों के वहाँ से राजपूताना और गुजरात में आ बसने के विषय में बहुत-सी प्रचलित कथाएँ हैं। पहली यह है कि महाभारत के युद्ध काल में द्वारिका की नींव गुजरात में पड़ी। जैनों के प्राचीन कथानकों के अनुसार गुजरात का सबसे पहला चालुक्य राजा कन्नौज से आया। कहा जाता है नौवीं ई शताब्दी के प्रारम्भ काल में पश्चिमीय राजपूताने के **भीलमाल** अथवा **भीनमाल** नामक स्थान के एक गुर्जर राजपूत ने भी गुजरात को जीता। मारवाड़ के राठौर कहते हैं कि वे वहाँ पर बारहवीं ईस्वी शताब्दी में कन्नौज से आये। जयपुर के कछवाहे अयोध्या से आने का दावा करते हैं। गुजरात और राजपूताने का घनिष्ठ राजनीतिक सम्बन्ध इस ऐतिहासिक घटना से भी प्रकट होता है कि मेवाड़ के गहलोत वहाँ पर सौराष्ट्र से आये।'

'गुर्जरों ने हूण तथा अन्य आक्रमणकारियों के साथ छठी शताब्दी में भारत में प्रवेश किया और वे शीघ्र ही बड़े शक्तिशाली हो गये। भारत के चार प्रदेशों ने इन्हीं के नाम के आधार से अपना नाम ग्रहण किया है, उनमें से दो हैं गुजरात और गुजरान वाला। ये दोनों पंजाब के जिले हैं, तीसरा है गुजरात प्रान्त। **अलबरूनी** 'जो दशवीं ईसवी शताब्दी में यहाँ आया, चौथा नाम बतलाता है, यह वह प्रदेश है, जो जयपुर के उत्तर पूर्वीय भाग तथा अलवर राज्य के दक्षिण भाग से मिलकर बना है, **डॉक्टर भण्डारकर** भी इस कथन की पुष्टि करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि पिछले गुर्जर हिमालय के उस भाग से आये, जिसे सपादलक्ष कहते हैं। यह प्रदेश आधुनिक कुमायूँ गढ़वाल और उसका पश्चिमी भाग माना जा सकता है। पूर्वीय राजपूताना उस समय इन गुर्जरों से भर गया था।

इन पंक्तियों के पढ़ने से आशा है यह स्पष्ट हो गया होगा कि किस प्रकार मध्य देश के विजयी गुजरात और राजस्थान में पहुँचे और कैसे उनके प्रभाव से प्रभावित होने के कारण इन प्रान्तों में अन्तरंग भाषा का प्रचार हुआ। यहाँ मैं यह भी प्रकट कर देना चाहता हूँ कि गुर्जर विदेशी भले ही हों, परन्तु वे मध्य देश वालों की सभ्यता के ही उपासक और प्रचारक थे, क्योंकि ब्राह्मणों द्वारा दीक्षित होकर उन्होंने वैदिक धर्म में प्रवेश किया था। डॉक्टर ग्रियर्सन लिखते हैं-

'अब इस बात को बहुत से विद्वानों ने स्वीकार किया है, कि कतिपय राजपूतों के दल परदेशी गुर्जरों के वंशज हैं, उनका केन्द्र आबू पहाड़ तथा उसके आसपास का स्थान था। प्रधानत: वे कृषक थे, पर उनके पास भी प्रधान लोग और योद्धा थे। जब यह दल गण्यमान्य हो गया, तो उनको ब्राह्मणों ने क्षत्रिय पदवी दी, और वे राजपुत्र अथवा राजपूत कहलाने लगे, कुछ उनमें से ब्राह्मण भी बन गये।-गुर्जरों के ब्राह्मण-क्षत्रिय बनने के सिद्धान्त का आजकल प्रबल खंडन हो रहा है, परन्तु मुझको इस वितण्डावाद में नहीं पड़ना है। मैंने इन पंक्तियों को यहाँ इसलिए उठाया है, कि जिससे इस सिद्धान्त पर प्रकाश पड़ सके कि किस प्रकार गुजरात, राजस्थान और पूर्वीय पंजाब में अन्तरंग भाषा का प्रचार हुआ। अब विचारना यह है कि अन्तरंग और बहिरंग भाषाओं में कौन-सी ऐसी विभिन्नताएँ हैं, जो एक को दूसरी से अलग करती हैं। डॉक्टर चटर्जी कहते हैं-

'डॉक्टर ग्रियर्सन ने जिन कारणों के आधार से अन्तरंग और बहिरंग भाषाओं को माना है, वे प्रधानत: भाषा सम्बन्धी हैं। विचार करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि पश्चिमी हिन्दी तथा अन्य आर्य भाषाओं में कुछ विषमताएँ हैं। उन्होंने देखा कि ये विषमताएँ 'जो कि सब 'बहिरंग' भाषाओं में एक ही हैं, प्राचीन आर्यभाषाओं

के दोनों विभागों अर्थात् अन्तरंग और बहिरंग भाषाओं के भेद से ही उत्पन्न हुई हैं। केवल इतना ही नहीं कि बहिरंग भाषाओं की पारस्परिक समानता उन्हीं बातों में है, जिनमें अन्तरंग भाषा से भिन्नता है, वरन् डार्डिक भाषाएँ प्रायः उन्हीं कुल विशेषताओं से भरी हैं, जिनसे कि बहिरंग भाषाएँ परिपूर्ण हैं! इसलिए अन्तरंग से उसकी भिन्नता और स्पष्ट हो जाती है'।

कुछ मुख्य-मुख्य भिन्नताएँ लिखी जाती हैं-

'इन दोनों शाखाओं की भाषाओं के उच्चारण में अन्तर है। जिन वर्णों का उच्चारण सिसकार के साथ करना पड़ता है, उनको अन्तरंग भाषा वाले बहुत कड़ी आवाज से बोलते हैं, यहाँ तक कि वह दन्त्य स हो जाता है। परन्तु बहिरंग भाषा वाले ऐसा नहीं करते। इसी से मध्यदेश वालों के 'कोस' शब्द को सिन्ध वालों ने 'कोह' कर दिया। पूर्व की ओर बंगाल में यह 'स' 'श' हो जाता है। आसाम में गिरते-गिरते 'स' की आवाज 'च' की-सी हो गई है। काश्मीर में तो उसकी कड़ी आवाज बिलकुल जाती रही है, वहाँ भी अन्तरंग भाषा का 'स' बिगड़कर 'ह' हो गया है।

संज्ञाओं में भी अन्तर है, अन्तरंग भाषाओं की मूल विभक्तियाँ प्रायः गिर गई हैं, उनका लोप हो गया है और धीरे-धीरे उनकी जगह पर और ही छोटे-छोटे शब्द मूल शब्दों के साथ जुड़ गये हैं, जो विभक्तियों का काम देते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा की 'का' 'को' 'से' आदि विभक्तियों को देखिए। ये जिस शब्द के अन्त में आती हैं, उस शब्द का उन्हें मूल अंश न समझना चाहिए। ये पृथक् शब्द हैं, और विभक्तिगत अपेक्षित अर्थ देने के लिए जोड़े जाते हैं। इसलिए बहिरंग भाषाओं को व्यवच्छेदक भाषाएँ कहना चाहिए। बहिरंग भाषाएँ जिस समय पुरानी संस्कृत के रूप में थीं, संयोगात्मक थीं। 'का' 'को' 'से' आदि से जो अर्थ निकलता है उसके सूचक शब्द उनमें अलग नहीं जोड़े जाते थे। इसके बाद उन्हें व्यवच्छेदक रूप प्राप्त हुआ, सिंधी और काश्मीरी भाषाएँ अब तक कुछ-कुछ इसी रूप में हैं। कुछ काल बाद फिर ये भाषाएँ संयोगात्मक हो गईं, और व्यवच्छेदक अवस्था में जो विभक्तियाँ अलग हो गई थीं, वे इनके मूलरूप में मिल गईं। बँगला में षष्ठी विभक्ति का चिहन 'एर' इसका अच्छा उदाहरण है।

क्रियाओं में भी भेद हैं, बहिरंग भाषाएँ पुरानी संस्कृत की किसी ऐसी एक या अधिक भाषाओं से निकली हैं, जिनकी भूतकालिक भाववाच्य क्रियाओं से सर्वनामात्मक कर्त्ता के अर्थ का भी बोध होता था। अर्थात् क्रिया और कर्त्ता एक

ही में मिले होते थे। यह विशेषता बहिरंग भाषा में भी पाई जाती है। उदाहरण के लिए बँगला भाषा का 'मारिलाम' देखिए। इसका अर्थ है 'मैं ने मारा' परन्तु अन्तरंग भाषाएँ किसी ऐसी एक या अधिक भाषाओं से निकली हैं, जिनमें इस तरह के क्रियापद नहीं प्रयुक्त होते थे। उदाहरण के लिए हिन्दी का 'मारा' लीजिये, इससे यह नहीं ज्ञात होता कि किसने मारा। मैंने मारा, तुमने मारा, उसने मारा, जो चाहिए समझ लीजिए। 'मारा' का रूप सब के लिए एक ही होगा। इससे साबित है कि अन्तरंग और बहिरंग भाषाएँ प्राचीन आर्यभाषा की भिन्न-भिन्न शाखाओं से निकली हैं, इनका उत्पत्ति स्थान एक नहीं है।'

पहले पृष्ठों में मैंने इस सिद्धान्त को नहीं स्वीकार किया है, कि आर्य जाति बाहर से आई। मैंने प्रमाणों के द्वारा यह सिद्ध किया है कि आर्य जाति भारत के पश्चिमोत्तर भाग से ही आकर भारतवर्ष में फैली। यद्यपि इस सिद्धान्त के मानने से भी मध्यदेश में आर्यों के इस दल का पहले और दूसरे दल का बाद में आना स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु इस स्वीकृति की बाधक वह विचार परम्परा है, जो इस बात को भली-भाँति प्रमाणित कर चुकी है कि पश्चिमागत आर्य-जाति का समूह चिरकाल तक सप्त-सिन्धु में रहा, और वहीं वैदिक संस्कृति और सभ्यता का विकास हुआ। मेरा विचार है पूर्वागत और नवागत आर्य समूह की कल्पना, और इस सिद्धान्त के आधार पर अन्तरंग और बहिरंग भाषाओं की सृष्टि-युक्ति-संगत नहीं, हर्ष है कि आजकल इस विचार का विरोध होने लगा है।

कुछ विवेचक भाषा-विभिन्नता सिद्धान्त को साधारण मानते हैं, उनका कथन है कि विभिन्नताएँ वे विशेषताएँ नहीं बन सकतीं, जो किसी एक भाषा को दूसरी भाषा से अलग करती हैं। बहिरंग भाषा की जिन विभिन्नताओं के आधार पर अन्तरंग भाषा को उससे अलग किया जाता है, वे स्वयं उसमें मौजूद हैं। इन लोगों ने जो प्रमाण दिये हैं, उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं। अन्तरंग और बहिरंग भाषा की उपरिलिखित विभिन्नताओं की चर्चा करके 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामक ग्रन्थ में यह लिखा गया है-

'इस मत का अब खंडन होने लगा है और दोनों प्रकार की भाषाओं के भेद के जो कारण ऊपर दिखाये गये हैं, वे अयथार्थ सिद्ध हैं। जैसे-'स' का 'ह' हो जाना केवल बहिरंग भाषा का ही लक्षण नहीं है, किन्तु अन्तरंग मानी जाने वाली पश्चिमी हिन्दी में भी ऐसा होता है। इसके तस्य-तस्स-तास-ताह-ता (ताके-ताहि इत्यादि) करिष्यति-करिस्सदि-करिसद-करिहइ-करिहै, एवं केसरी

से केहरी आदि बहुत से उदाहरण मिलते हैं। इसी प्रकार बहिरंग मानी जाने वाली भाषाओं में भी 'स' का प्रयोग पाया जाता है-जैसे राजस्थानी (जयपुरी) करसी, पश्चिमी पंजाबी 'करेसी' इत्यादि। इसी प्रकार संख्या-वाचकों में 'स' का 'ह' प्रायः सभी मध्यकालीन तथा आधुनिक आर्य-भाषाओं में पाया जाता है। जैसे पश्चिमी हिन्दी में 'ग्यारह' 'बारह' चौहत्तर इत्यादि।'1

अन्तरंग बहिरंग भेद के संयोगावस्था के प्रत्ययों और वियोगावस्था के स्वतन्त्र शब्दों के भेद की कल्पना भी दुर्लभ है। अन्तरंग मानी गई पश्चिमी हिन्दी तथा अन्य सभी आधुनिक भाषाओं में संयोगावस्थापन्न रूपों का आभास मिलता है। यह दूसरी बात है कि किसी में कोई रूप सुरक्षित है, किसी में कोई। पश्चिमी हिन्दी और अन्य आधुनिक आर्य-भाषाओं की रूपावली में स्पष्टतः हम यही भेद पाते हैं कि उसमें कारक चिन्हों के पूर्व विकारी रूप ही आते हैं। जैसे-'घोड़े का' में 'घोड़े'। यह घोड़े, घोड़हि (घोटस्य अथवा घोटक. तृतीया बहुवचन विभक्ति, 'हि'-भिः) से निकला है। यह विकारी रूप संयोगावस्थापन्न होकर भी अन्तरंग मानी गई भाषा का है। इसके विपरीत बहिरंग मानी गई बँगला का घोड़ार, और बिहारी का 'घोराक' रूप संयोगावस्थापन्न नहीं किन्तु घोटककर और घोटककर-क्क से घिस घिसाकर बना हुआ सम्मिश्रण है। पुनश्च अन्तरंग मानी हुई जिस पश्चिमी हिन्दी में वियोगावस्थापन्न रूप ही मिलने चाहिए, कारकों का बोध स्वतन्त्र सहायक शब्दों के द्वारा होना चाहिए, उसी में प्रायः सभी कारकों में ऐसे रूप पाये जाते हैं, जो नितान्त संयोगावस्थापन्न हैं। अतएव वे बिना किसी सहायक शब्द के प्रयुक्त होते हैं।

उदाहरण लीजिए-

कर्त्ता एकवचन-घोड़ो (ब्रजभाषा) घोड़ा (खड़ी बोली) घरु (ब्रजभाषा नपुंसकलिंग)।

कर्त्ता बहुवचन-घोड़े (-घोड़ेह घोड़हि = तृतीया बहुवचन 'मैं' के समान प्रथम में प्रयुज्यमान)।

करण-आंखों (=अक्खिहिं, खुसरो वाको आंखों दीठा-अमीर खुसरो) कानों (कण्णाहिं)।

करण- (कर्त्ता)-मैं (ढोला मइं तुहुँ वारिआ) मैं सुन्यो साहिबिन ऑषिकीन - पृथ्वी तैं, मैं ने, तैं ने (दुहरी विभक्ति)-

अपादान-एकवचन-भुक्खा (=भूख से-बाँगड़ई) भूखन, भूखों (ब्रज-भाषा, (कनौजी)।

अधिकरण-एकवचन-घरे-आगे-हिंडोरे (बिहारी लाल) माथे (सूरदास)।

दूसरे बहिरंग मानी गई पश्चिमी पंजाबी में भी पश्चिमी हिन्दी के समान सहायक शब्दों का प्रयोग होता है। घोड़ेदा (घोडे का) घोड़े ने घोड़े नूँ इत्यादि। इससे यह निष्कर्ष निकला कि बँगला आदि में पश्चिमी हिन्दी से बढ़कर कुछ संयोगावस्थापन्न रूपावली नहीं मिलती। अतः उसके कारण दोनों में भेद मानना अयुक्त है।'

डॉक्टर चटर्जी ने इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है, और अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में बड़ा पाण्डित्य प्रदर्शन किया है। खेद है कि मैं उनके सम्पूर्ण विवेचन को स्थान की संकीर्णता के कारण यहाँ नहीं उठा सकता। परन्तु विवेचना के अन्तिम निर्णय को लिख देना चाहता हूँ, वह यह है और मैं उससे पूर्णतया सहमत हूँ-

'पुरातत्त्व और मानव इतिहास के आधार पर 'बहिरंग' आर्यों का 'अंतरंग' आर्यों के चारों ओर बस जाने की बात को पुष्ट करने की चेष्टा उसी प्रकार अप्रमाणित रह जाती है, जैसे भाषा सम्बन्धी सिद्धान्त के सहारे से निश्चित की हुई बातें।'

2. देखो, 'आरेजिन ऐंड डवलेपमेण्ट ऑफ बंगाली लैंग्वेज', पृ. 33 (ई 31)

षष्ठ प्रकरण

हिन्दी भाषा की विभक्तियाँ सर्वनाम और उसकी क्रियाएँ

हिन्दी विभक्तियों के विषय में कुछ विद्वानों ने ऐसी बातें कही हैं, जिससे यह पाया जाता है, कि वे विदेशीय भाषाओं से अथवा द्राविड़ भाषा से उसमें गृहित हुई हैं, इसलिए इस सिद्धान्त के विषय में भी कुछ लिखने की आवश्यकता ज्ञात होती है, क्योंकि यदि हिन्दी भाषा वास्तव में शौरसेनी अपभ्रंश से प्रसूत है, तो उसकी विभक्तियों का उद्गम भी उसी को होना चाहिए। अन्यथा उसकी उत्पत्ति का सर्वमान्य सिद्धान्त संदिग्ध हो जाएगा। किसी भाषा के विशेष अवयव और उसके धातु किसी मुख्य भाषा पर जब तक अवलम्बित न होंगे, उस समय तक उससे उसकी उत्पत्ति स्वीकृत न होगी। ऐसी अनेक भाषाएँ हैं, जिनमें विदेशी भाषाओं की कुछ क्रियाएँ भी मिल जाती हैं। यदि केवल उनके आधार से हम विचार करने लगेंगे तो उस विदेशी भाषा से ही उनकी उत्पत्ति माननी पड़ेगी,

किन्तु यह बात वास्तविक और युक्ति-संगत न होगी। दूरी बात यह है कि एक ही भाषा में विभिन्न भाषाओं के अनेक व्यावहारिक शब्द मिलते हैं, विशेष करके आदान-प्रदान अथवा खान-पान एवं व्यवहार सम्बन्धी। यदि ऐसे कुछ शब्दों को ही लेकर कोई यह निर्णय करे कि इस भाषा की उत्पत्ति उन सभी भाषाओं से है, जिनके शब्द उसमें पाये जाते हैं, तो कितनी भ्रान्तिजनक बात होगी, और इस विचार से तथ्य का अनुसंधान कितना अव्यावहारिक हो जाएगा। इन्हीं सब बातों पर दृष्टि रखकर किसी भाषा का मूल निर्धारण करने के लिए उससे सम्बन्ध रखने वाले मौलिक आधारों की ही मीमांसा आवश्यक होती है। विभक्तियों और प्रत्ययों की गणना भाषा के मौलिक अंगों में ही की जाती है। इसलिए विचारणीय यह है कि हिन्दी भाषा की विभक्तियाँ कहाँ से आई हैं, और उनका आधार क्या है?

''डॉक्टर 'के' कहते हैं कि हिन्दी का 'को' (जैसे-हमको) और बँगला का 'के' (जैसे राम के) तातार देशीय अन्त्यवर्ण 'क' से आगत हुआ है। डॉक्टर **'काल्डवेल'** अनुमान करते हैं कि द्राविड़ भाषा के 'कु' से हिन्दी भाषा का 'को' लिया गया है। वे यह भी कहते हैं कि हिन्दी प्रभृति देशी भाषाएँ द्राविड़ भाषा से उत्पन्न हुई हैं। **डॉक्टर हार्नली** और **राजा राजेन्द्र लाल** मित्र ने इन सब मतों का अयुक्त होना सिद्ध किया है।'' डॉक्टर हार्नली की सम्मति यहाँ उठाई जाती है-

''डॉक्टर 'काल्डवेड' का कथन है कि आर्यगण, आर्यावर्त जय करके जितना आगे बढ़ने लगे, उतना ही देश में प्रचलित अनार्य भाषा संस्कृत शब्दों के ऐश्वर्य द्वारा पुष्टि लाभ करने लगी। इसलिए यह भ्रम होता है, कि अनार्य भाषाएँ संस्कृत से उत्पन्न हैं। किन्तु संस्कृत का प्रभाव कितना ही प्रबल क्यों न हो, इन सब भाषाओं का व्याकरण उसके द्वारा परिवर्तित न हो सका। इसके उत्तर में **डॉक्टर हार्नली** कहते हैं, आर्यगण बहुत समय तक आर्यवर्त में रहकर सहसा अनार्य गणों की भाषा ग्रहण कर लेंगे, यह बात विश्वास योग्य नहीं। उन लोगों ने चिरकाल तक संस्कृत जातीय पाली और प्राकृत भाषा का व्यवहार किया था, यह बात विशेष रूप से प्रमाणित हो गई है। नाटकादिकों के प्राकृत द्वारा यह भी दृष्टिगत होता है कि विजित अनार्यों ने भी अपने प्रभुओं की भाषा को ग्रहण कर लिया था। इतने समय तक हिन्दू लोग अपनी भाषा और व्याकरण को अनार्यगण में प्रचलित रखकर भी अन्त में क्यों अनार्य व्याकरण के शरणागत होंगे, यह विचारणीय है। दूसरी बात यह है कि देशभाषाओं की

उत्पत्ति के समय (आर्यभाषा की दीर्घकाल व्यापी अखंड राजत्व के उपरान्त) विजित अनार्यगण की भाषा देश में प्रचलित थी। इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। इतिहास में अवश्य कभी-कभी यह भी देखा गया है, कि विजेता जातियों ने विजित जातियों का व्याकरण ग्रहण कर लिया है, जैसे नार्मन लोगों ने इंग्लैण्ड में और अरब एवं तुर्की लोगों ने आर्यावर्त में तथा फ्रान्स वालों ने गल में। किन्तु इन सब स्थानों में विजेता लोग विजित लोगों की अपेक्षा अल्प शिक्षित थे। उपनिवेश स्थापन के प्रारम्भ काल से ही भाषा ग्रहण का सूत्रपात उन्होंने कर दिया था। विजयी जाति बहुकाल पर्यन्त अपनी भाषा और स्वातंत्रय गौरव की रक्षा करके अन्त में असभ्य जातियों के निकट उसको विसर्जित कर दे, इतिहास में कहीं यह बात दृष्टिगत नहीं होती।

देशीय भाषाओं को समस्त-विभक्तियाँ प्राकृत से ही प्राप्त हुई हैं, इस बात को डॉक्टर राजेन्द्र लाल मित्र, हार्नली, और अन्य जर्मन पण्डितों ने दिखलाने की चेष्टा की है और विद्वानों ने भी इस सिद्धान्त को पुष्ट किया है। मैं क्रमशः प्रत्येक विभक्तियों के विषय में उन लोगों के विचारों का उल्लेख करता हूँ।

1. कर्त्ता कारक में भूतकालिक सकर्मक क्रिया के साथ ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली में 'ने' का प्रयोग होता है, किन्तु अवधी में ऐसा नहीं होता। ब्रज भाषा में भी प्रायः कवियों ने इस प्रयोग का त्याग किया है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अवधी के समान ब्रजभाषा में 'ने' का प्रयोग होता ही नहीं। प्रथमा एकवचन में कहीं-कहीं कर्त्ता के साथ 'ए' का प्रयोग देखा जाता है। यथा-'शु अणेहु शिक्षाण कम्प के शामीए निद्धण के विशोहेदि मृ. क. 3 अंक' बँगला भाषा में भी पहले इस प्रकार का प्रयोग देखा जाता है-यथा

कदाचित ना दे सिद्धहेनो रूप ठान।

कोन मते विधाता ए करिछे निर्माण। रामेश्वरी महाभारत, पृ. 89

'किन्तु अब बँगला में भी प्रथमा एकवचन में इस 'ए' का अभाव है, अब बँगला में प्रथमा का रूप संस्कृत के समान होता है, किन्तु अनुस्वार अथवा विसर्ग वर्ज्जित'। 1 प्रश्न यह है कि प्राकृत भाषा के उक्त 'ए' का सम्बन्ध क्या हमारी हिन्दी भाषा के 'ने' से है?

'एक विद्वान की सम्मति है कि यह 'ने' वास्तव में करण कारक का चिन्ह है, जो हिन्दी में गृहित कर्मवाच्य रूप के कारण आया है, संस्कृत में करण कारक का 'इन' प्राकृत में 'एण' हो जाता है, इसी 'इन' का वर्ण विपरीत हिन्दी रूप में 'ने' है।'

2. कर्म और सम्प्रदान। **टम्प** का अनुमान है कि बँगला कर्म और सम्प्रदान कारक का 'के' संस्कृत के सप्तमी में प्रयुक्त 'कृते' शब्द से आया है। इस 'कृते' के निमित्तार्थक प्रयोग का उदाहरण स्थान-स्थान पर मिलता है-यथा।

वालिशो वत कामात्मा राजा दशरथो भृशम।
प्रस्थापयामास वनं - hकृते यरू प्रियंसुतम्ड्ड

यह कृते शब्द प्राकृते में 'किते' 'किउ' एवं 'को' इन तीनों रूपों में ही व्यवहृत हुआ है। इसलिए टम्प का यह अनुमान है कि शेषोक्त 'को' के साथ हिन्दी के 'को' और बँगला के 'के' का सम्बन्ध है।

'बंगभाषा और साहित्य' नामक ग्रन्थ के रचयिता टम्प की सम्मति से सहमत न होकर अपनी सम्मति यों प्रकट करते हैं-

'मैक्समूलर कहते हैं कि संस्कृत के स्वार्थे 'क' से बँगला का के (हिन्दी का को) आया है। पिछले समय में संस्कृत में स्वार्थे 'क' का प्रयोग अधिकतर देखा जाता है। मैं मैक्समूलर के मत को ही समीचीन समझता हूँ।

श्रीमान् पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी कहते हैं-

'पुरानी संस्कृत का एक शब्द 'कृते', है जिसका अर्थ है (लिए) होते-होते इसका रूपान्तर 'कहुँ' हुआ, वर्तमान 'को' इसी का अपभ्रंश है' हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति, पृ.70।

एक विद्वान् की सम्मति और सुनिए-

'संस्कृत रूप 'कृते प्राकृत में किते हो गया, और नियमानुसार त का लोप होने से 'किये' हुआ, और फिर वही के में परिणत हो गया। 'को' प्रत्यय संस्कृत के कर्म-कारक के नपुंसक 'कृत' से हुआ। प्राकृत में 'कृत' बदलकर 'कितो' हुआ, और त के लोप होने से 'कियो' बना, और अन्त में उसने 'क' का रूप धारण कर लिया।'

आप लोगों ने सब सम्मतियाँ पढ़ लीं, अधिकांश सम्मति यही है कि 'को' की उत्पत्ति 'कृते' से है। 'को' का प्रयोग कर्म-कारक में तो होता ही है, संप्रदान के लिए भी होता है, संप्रदान की एक विभक्ति 'के लिए' भी है। 'कृते' में यह निमित्तार्थक भाव भी है, जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है। इसलिए मैं भी 'कृते' से ही 'को' की उत्पत्ति स्वीकार करता हूँ।

3. करण और अपादान कारक की विभक्ति हिन्दी भाषा में 'से' है। करण कारक के साथ 'से' प्रायः उसी अर्थ का द्योतक है, जिसको संस्कृत का 'द्वारा' शब्द प्रकट करता है, इस 'से' में एक प्रकार से सहायक होने

अथवा सहायक बनने का भाव रहता है। यदि कहा जाये कि 'बाण से मारा' तो इसका यही अर्थ होगा कि बाण द्वारा अथवा बाण के सहारे से या बाण की सहायता से मारा। परन्तु अपादान का 'से' इस अर्थ में नहीं आता, उसके 'से' में अलग करने का भाव है। जब कहा जाता है 'घर से निकल गया' तो यही भाव उससे प्रकट होता है कि निकलने वाला घर से अलग हो गया। जब कहते हैं 'पर्वत से गिरा' तो भी वाक्य का 'से' पर्वत से अलग होने का भाव ही सूचित करता है। 'से' एक विभक्ति होने पर भी करण और अपादान कारकों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। 'बंग-भाषा और साहित्य' कार लिखते हैं-'प्राकृत में 'हिंतो' शब्द पंचमी के बहुवचन में व्यवहृत होता है, इसी 'हिंतो' शब्द से बँगला 'हइते' की उत्पत्ति हुई है।'' उन्होंने प्रमाण के लिए वररुचि का यह सूत्र भी लिखा है 'भावो हिंतो सुंतो'। ब्रजभाषा में 'से' का प्रयोग नहीं मिलता उसमें ते का प्रयोग 'से' के स्थान पर देखा जाता है। 'से' के स्थान पर कबीरदास को 'सेती' अथवा 'सेंती' और चन्दबरदाई को 'हुँत' लिखते पाते हैं। इससे अनुमान होता है कि जैसे बँगला में 'हिंतो' से हइते बना, उसी प्रकार हिन्दी में 'हुँत' और

'तें' और ऐसे ही 'सुंतो' के आधार से 'सेंती' और से। कुछ विद्वानों की यह सम्मति है कि संस्कृत के 'सह' अथवा सम से 'से' की उत्पत्ति हुई है। करण में सहयोग का भाव पाया जाता है, ऐसी अवस्था में उसकी विभक्ति की उत्पत्ति 'सह' होने की कल्पना स्वाभाविक है। इसी प्रकार 'सम' से 'से' की उत्पत्ति का विचार इस कारण से हुआ पाया जाता है कि प्राचीन कवियों को सम को' से' के स्थान पर प्रयोग करते देखा जाता है। निम्नलिखित पद्यों को देखिए-

कहि सनकादिक इन्द्र सम।
बलि लागौ जुधा इन्द्र समड्ड
पृथ्वीराज रासो।

अवधी में, कहीं ब्रजभाषा में भी 'से' के स्थान पर 'सन' का प्रयोग किया जाता है। इस 'सन' के स्थान पर 'सें' और सों भी होता है। इसलिए कुछ भाषा-मर्मज्ञों ने यह निश्चित किया है कि 'सम' से 'सन' हुआ और 'सन' से सों और फिर 'से' हुआ। ऊपर लिख आया हूँ कि प्राकृत में पंचमी बहुवचन में 'हितो' होता है। अनुमान किया गया है कि 'हितो' से ही पंचमी का 'तेंहूंबना परन्तु 'से' का ग्रहण पंचमी में कैसे हुआ, यह बात अब तक यथार्थ रूप से निर्णित नहीं हुई।

4. सम्बन्ध कारक की विभक्ति के विषय में अनेक मत देखा जाता है–मि. ci~ अनुमान करते हैं कि हिन्दी का 'का' और बँगला–भाषा की षष्ठी विभक्ति का चिहन, संस्कृत षष्ठी बहुवचन के 'अस्माकम' एवं 'युष्माकम' इत्यादि के 'क' से गृहित है। किन्तु **हार्नली साहब** ने के अनुमान के विरुद्ध अनेक युक्तियाँ दिखलाई हैं, उनके मत से संस्कृत के 'कृते' के प्राकृत रूपान्तर से ही बँगला और हिन्दी के षष्ठी कारक का चिहन, 'का' अथवा विभक्ति ली गई है। 'कृते' से प्राकृत 'केरक' उत्पन्न हुआ है। इस 'केरक' का अनेक उदाहरण पाया जाता है, जहाँ यह 'केरक', शब्द प्रयुक्त हुआ है, वहाँ उसका कोई स्वकीय अर्थ दृष्टिगत नहीं होता, वहाँ वह केवल षष्ठी के चिन्ह–स्वरूप ही व्यवहृत हुआ है–यथा

'तुमम पि अप्पणो केरिकम् जादि मसुमरेसि'
'कस्स केरकम् एदम् पवँणम् ' मृ–क षष्ठ–अंक

इसी केरक अथवा केरिक से हिन्दी 'कर' श्केर' और 'केरी' की उत्पत्ति हुई है।

पहले लिखा गया है कि मैक्समूलर की यह सम्मति है कि संस्कृत का स्वार्थे 'क' ही बदलकर कर्म कारक का 'को' हो गया है, 'बंगभाषा और साहित्य' के रचयिता ने इसको स्वीकार भी किया है, मेरा विचार है कि इसी स्वार्थे 'क' से षष्ठी विभक्ति के 'का' की उत्पत्ति हुई है। केरक के स्थान में प्राकृत भाषा में केरओ प्रयोग मिलता है, यही केरओ काल पाकर केरो बन गया, कर, केर और केरी भी हुआ परन्तु सम्बन्ध का चिन्ह 'का' 'की' 'के' भी यही बन गया, यह कुछ क्लिष्ट कल्पना ज्ञात होती है। जैसे–केरो, केरी, और कर का प्रयोग हिन्दी–साहित्य में मिलता है–यथा

बंदों पदसरोज सब केरे–तुलसी
क्षत्र जाति कर रोष–तुलसी
हौं पंडितन केर पछलगा–जायसी
उसी प्रकार 'क' का प्रयोग भी देखा जाता है–यथा
वनपति उहै जेहि क संसारा–
बनिय क सखरज ठकुर क हीन।
वैद क पूत व्याधा नहिं चीन।

जब सम्बन्ध में 'क' का प्रयोग देखा जाता है, तो यह विचार होता है कि क्या यही स्वार्थे क बदल कर सम्बन्ध की विभक्ति तो नहीं बन गया है? जो

कहीं अपने मुख्य रूप में और कहीं 'का' 'के' 'की' बनकर प्रकट होता है! यदि वह कर्म का चिन्ह मैक्समूलर के कथनानुसार हो सकता है, तो सम्बन्ध का चिह्न क्यों नहीं बन सकता। पहला विचार यदि विवाद-ग्रस्त हो तो हो सकता है, परन्तु यह विचार उतना वादग्रस्त नहीं वरन् अधिकतर संभव परक है, यदि कहा जावे कि स्वार्थे 'क' का अर्थ वही होता है, जो उस शब्द का होता है, जिसके साथ वह रहता है, उसका अलग अर्थ कुछ नहीं होता, जैसे संस्कृत का वृक्षक, चारुदत्ताक, अथवा पुत्रक आदि, एवं हिन्दी का बहुतक, कबहुँक एवं कछुक आदि। तो जाने दीजिए उसको, निम्नलिखित सिद्धान्त को मानिए-

प्राय: तत्सम्बन्धी अर्थ में संस्कृत में एक प्रत्यय 'क' आता है-

जैसे-मद्रक = मद्र देश का, रोमक = रोम देश का। प्राचीन हिन्दी में 'का' के स्थान में 'क' पाया जाता है, जिससे यह जान पड़ता है कि हिन्दी का 'का' संस्कृत के क प्रत्यय से निकला है।

जो कुछ अबतक कहा गया उससे इस सिद्धान्त पर उपनीत होना पड़ता है कि प्राकृत भाषा का 'केरक, केरओ', आदि से' केरा, केरी, और केरो', आदि की और सम्बन्ध सूचक संस्कृत के 'क' प्रत्यय से 'का, 'के', 'की उत्पत्ति अधिकतर युक्तिसंगत है।

5. अधिकरण कारक का चिह्न हिन्दी में 'मैं' 'मांहि' 'मांझ' इत्यादि है। साथ ही 'पै, पर'आदि का प्रयोग भी सप्तमी में देखा जाता है जैसे कोठे पर है। केवल 'ए' का प्रयोग भी संस्कृत के समान ही हिन्दी में भी देखा जाता है-जैसे, आप का कहा सिर माथे, में थे का 'ए'। सप्तमी में इस प्रकार का जो क्वचित् प्रयोग खड़ी बोलचाल में देखा जाता है, यह बिलकुल संस्कृत के 'गहने' 'कानने' आदि सप्तम्यन्त प्रयोग के समान है, ब्रजभाषा और अवधी में इस प्रकार का अधिक प्रयोग मिलता है-जैसे घरे गैलें, आदि। 'पर और पै'का प्रयोग संस्कृत के 'उपरि' शब्द से हिन्दी में आया है। एक विद्वान् की यह सम्मति है-

'हिन्दी के कुछ रूपों में अधिकरण कारक के 'में' चिह्न के स्थान पर 'पै' का प्रयोग होता है, इसकी उत्पत्ति संस्कृत के उपरि शब्द से हुई है। पहले पहल उपरि का पर हुआ, जैसे मुख पर-बाद को पै बन गया।'1

मैं, माँहि, माँझ इत्यादि की उत्पत्ति कहा जाता है कि मध्य से हुई है। ब्रजभाषा और अवधी दोनों में माँहि और माँझ का प्रयोग देखा जाता है, किन्तु खड़ी बोली में केवल 'में' का व्यवहार होता है। ब्रजभाषा में 'में' के स्थान पर 'मैं' ही प्राय: लिखा जाता है। प्राकृत भाषा का यह नियम है कि पद के आदि

का 'धय' 'झ' और अन्त का 'धय' 'ज्झं' हो जाता है। 2 इस नियम के अनुसार मध्य शब्द का अन्त्य 'धय' जब 'ज्झ' से बदल जाता है, तो मज्झ शब्द बनता है, यथा-बुधयते, बुज्झते, सिधयति-सिज्झति इत्यादि। यही मज्झ शब्द ब्रजभाषा और अवधी में माँझ, और अधिक कोमल होकर माँह, माहिं आदि बनता है। इसी माँह, माँहि से मैं और में की उत्पत्ति भी बतलाई जाती है। प्राकृत की सप्तमी एक वचन में 'संमि' का प्रयोग होता है। कुछ लोगों की सम्मति है कि प्राकृत के संमि अथवा म्मि से में अथवा मैं की उत्पत्ति है।

विभक्तियों के विषय में यद्यपि यह निश्चित है कि वे संस्कृत अथवा प्राकृत से ही हिन्दी अथवा अन्य गौड़ीय भाषाओं में आई हैं। परन्तु कभी-कभी विरुद्ध बातें भी सुनाई पड़ती हैं, जैसे-यह कि द्राविड़ भाषा के सम्प्रदान कारक के 'कु' विभक्ति से हिन्दी भाषा के 'को' अथवा बँगला भाषा के 'के' की उत्पत्ति हुई। ऐसी बातों में प्रायः अधिकांश कल्पना ही होती है। इसलिए, उनमें वास्तवता नहीं होती, विशेष विवेचन होने पर उनका निराकरण हो जाता है। तो भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अब तक निर्विवाद रूप से विभक्तियों के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। जितनी बातें ज्ञात हो सकी हैं, उनका ही उल्लेख यहाँ किया जा सका।

सर्वनाम भी भाषा के प्रधान अंग हैं, और किसी भाषा के वास्तविक स्वरूप ज्ञान के लिए क्रिया सम्बन्धी प्रयोगों का अवगत होना भी आवश्यक है, इसलिए यहाँ पर कुछ उनकी चर्चा भी की जाती है।

उत्तम पुरुष एकवचन में 'मैं' और बहुवचन में 'हम' होता है, संस्कृत के 'अस्मद्' शब्द से दोनों की उत्पत्ति बतलाई जाती है। प्राकृत में तृतीया के एकवचन का रूप 'मया' और बहुवचन का रूप 'अम्हेहि' और 'अम्हेभि' होता है। प्रथमा के बहुवचन का रूप 'अम्हे' है। अपभ्रंश में यह 'मया' 'मइ' महँ हो जाता है। यथा-'ढोला महँ तुहुँ वारिया' इसी मइँ से हिन्दी के मैं की और बहुवचन 'अम्हेहि' अथवा 'अम्हे' से हम की उत्पत्ति बतलायी जाती है। मृच्छकटिक नाटक में 'अस्मद्' का प्राकृत रूपआम्हि भी मिलता है, कहा जाता है, इसी आम्हि से बँगला के आमि की उत्पत्ति हुई है। बँगला के आमि से हमारे मैं और हम की बहुत कुछ समानता है। आगे चलकर इसी मैं से 'मुझे' 'मुझको' और 'मेरा' आदि और हम से 'हमको और हमारा' आदि रूप बनते हैं। एक विद्वान की सम्मति है कि अहम् से 'हम' की उत्पत्ति वैसे ही है, जैसे अ के गिर जाने से अहै से है की।

मध्यम पुरुष का तू, तुम संस्कृत युष्मन् से बनता है। प्राकृत में प्रथमा का एकवचन त्वं और तुवं और बहुवचन 'तुम्ह' होता है। चतुर्थी और षष्ठी का एकवचन 'तुम्हं' बनता है। इन्हीं के आधार से तू और तुम की उत्पत्ति हुई है। बँगला में तुम को तुमि लिखते हैं, दोनों में बहुत अधिक समानता है, कहा जाता है इस तुमि की उत्पत्ति भी 'तुम्हि' से ही हुई है। इसी तुम से 'तुझ' और तुम्हारा एवं तेरा आदि रूप आगे चलकर बने। हिन्दी में अब तक 'तुम्ह' का प्रयोग भी होता है।

मध्यम पुरुष के लिए आप शब्द भी प्रयुक्त होता है, इस शब्द का आधार संस्कृत का 'आत्मन्' शब्द है। इसका प्राकृत रूप अप्पा और अप्पि है। इसी से आप शब्द निकलता है, बँगला में आपके स्थान पर आपनि और बिहार में आपुन बोला जाता है, जिसमें, आत्मन् की पूरी झलक है।

अन्य पुरुष के शब्द वह और वे संस्कृत के (अदस्) शब्द से बने हैं, यह कुछ लोगों की सम्मति है। प्रथमा एकवचन में इसका प्राकृतरूप असु और बहुवचन में अमू होता है, 6 संस्कृत के प्रथमा एकवचन में असौ होता है, प्राकृत में यही असौ, अखु हो जाता है। अपभ्रंश में प्रायः वह के स्थान पर सु प्रथमा एकवचन में आता है-यथा 'अन्नु सुघण थण हारु' 'सु गुण लायण्ण निधि' ऐसी अवस्था में कहा जा सकता है कि इसी 'सु' से वह की उत्पत्ति है। परन्तु यहाँ स्वीकार करना पड़ेगा कि अ गिर गया है। यह क्लिष्ट कल्पना है। एक दूसरे विद्वान् भी संस्कृत के असौ से ही वह और वे की उत्पत्ति मानते हैं। तद् के प्रथमा एकवचन का रूप 'स' और बहुवचन का रूप ते होता है पुंल्लिंग में। स्त्रीलिंग में यही सा और ता हो जाता है। तद् के द्वितीया का एकवचन पुंल्लिंग में तं और स्त्रीलिंग में ताम होगा। अपभ्रंश के निम्नलिखित पद्यों में इनका व्यवहार देखा जाता है।

'सा दिसि जोइ म रोइ ' सा मालइ देसन्तरिअ'
'तंतेवड्डउँ समरभर ' सो च्छेयहु नहिंलाहु'
'तं तेत्तिाउ जलु सायर हो सो ते बहुवित्थारु'
' जइ सो वड़दि प्रयावदी ' ते मुग्गडा हराविआ'
'अन्ने ते दीहर लोअण'

इससे पाया जाता है कि सः से 'सो' और वह की और 'ते' से 'वे' की उत्पत्ति है। ब्रजभाषा और अवधी दोनों में वह के स्थान पर 'सो' का और वे के स्थान पर ते का बहुत अधिक प्रयोग है। गद्य में अब भी 'वह' के स्थान पर 'सो'

का प्रयोग होते देखा जाता है। यदि ते से वे की उत्पत्ति मानने में कुछ आपत्ति हो तो उसको वह का बहुवचन मान सकते हैं।

प्राकृत भाषा का यह सिद्धान्त है कि त वर्गय 'ण' 'ह', और 'र' के अतिरिक्त जब किसी दूसरे व्यंजन वर्ण के बाद यकार होता है तो प्रायः उसका लोप हो जाता है, और तत् संयुक्तवर्ण के द्वित्व प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार कस्य को कस्स और यस्य का जस्स और तस्य का तस्स प्राकृत में होता है, और फिर उनसे क्रमशः किस, कास, कासु जास, जासु और तास, तासु आदि रूप बनते हैं। ऐसे ही संस्कृत कः से प्राकृत को और हिन्दी कौन-संस्कृत यः से प्राकृत में जो बनता है। जो हिन्दी में उसी रूप में गृहित हो गया है। संस्कृत किम् से हिन्दी का क्या और कोपि से हिन्दी का कोई निकला है। अपभ्रंश में किम् का रूप काँइ और कोपि का रूप कोवि पाया जाता है यथा 'अम्हे निन्दहु कोबिजण अम्हे बप्णउ कोबि' 'काइँ न दूरे देक्खइ।'

हिन्दी भाषा की अधिकांश क्रियाएँ संस्कृत से ही निकली हैं। संस्कृत में क्रियाओं के रूप 500 से अधिक पाये जाते हैं, उन सबके रूप हिन्दी में नहीं मिलते, फिर भी जो क्रियाएँ संस्कृत से हिन्दी में आई हैं, उनकी संख्या कम नहीं है। हिन्दी में कुछ क्रियाएँ, अन्य भाषाओं से भी बना ली गई हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। उनकी चर्चा आगे के प्रकरण में की जाएगी। संस्कृत क्रियाओं का विकास हिन्दी में किस रूप में हुआ है, और हिन्दी में किस विशेषता से वे ग्रहण की गई हैं, केवल इसी विषय का वर्णन थोड़े में यहाँ करूँगा, प्रत्येक विषयों का दिग्दर्शन मात्र ही इस ग्रन्थ में हो सकता है, क्योंकि अधिक विस्तार का स्थान नहीं। विशेष उल्लेख योग्य खड़ी बोली की क्रियाएँ हैं, जिनका मार्ग अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं से सर्वथा भिन्न है।

खड़ी बोल-चाल को हिन्दी में 'है' का एकाधिपत्य है। 'था' का व्यवहार भी उसमें अधिकता से देखा जाता है। बिना इनके अनेक वाक्य अधूरे रह जाते हैं और यथार्थ रीति से अपना अर्थ प्रकट नहीं कर पाते। 'है' की उत्पत्ति के विषय में मतभिन्नता है! कोई-कोई इसकी उत्पत्ति अस् धातु से बतलाते हैं और कोई भू धातु से। ओरिजन ऑफ दि हिन्दी लैंग्वेज के रचयिता यह कहते हैं-

'संस्कृत में भू-भवानि-भव, भोमि के स्थान पर वररुचि ने भू-हो-हुआ आदि रूप दिया है। दो सहस्र वर्ष से 'हो' का प्रयोग होने पर भी ब्रजभाषा के भूतकाल के भू-धातु का रूप भया-भये-भयो आदि का प्रयोग अब तक होता है। 'हो' का प्रकृत रूप' होमे' और हिन्दी रूप 'हूं' है।

इस अवतरण से यह स्पष्ट है कि वररुचि ने भू धातु से ही होना धातु की उत्पत्ति मानी है, इसी होना का एक रूप 'है' है। अवधी में 'है' के स्थान पर 'अहै का प्रयोग भी होता है' यथा

'साँची अहै कहनावतिया अरी ऊँची दुकान की फीकी मिठाई'

इसलिए यह विचार अधिकता से माना जाता है कि अस् से ही है की उत्पत्ति है। 'अस्' 'से' 'अहै' 'स्' 'के' 'ह' हो जाने के कारण बना, और व्यवहाराधिक्य से अ के गिर जाने के कारण केवल 'है' का प्रयोग होने लगा। दोनों सिद्धान्तों में कौन माननीय है, यह बात निश्चित रीति से नहीं कही जा सकती, दोनों ही पर तर्क-वितर्क चल रहे हैं, समय ही इसकी उचित मीमांसा कर सकेगा। 'था' की उत्पत्ति 'स्था' धातु से मानी जाती है, ओरिजन ऑफ दि हिन्दी लैंग्वेज के रचयिता भी इसी सिद्धान्त को मानते हैं।

इस 'है', और 'था' के आधार से बने कुछ हिन्दी क्रियाओं के प्रयोग की विशेषताओं को देखिए। संस्कृत चलति का अपभ्रंश एवं अवधी में चलइ और ब्रजभाषा में चलय अथवा चलै रूप वर्तमान-काल में होगा।

परन्तु खड़ी बोलचाल की हिन्दी में इसका रूप होगा-चलता है। संस्कृत में प्रत्यय न तो शब्द से पृथक् है, न अवधी में, ब्रजभाषा में भी नहीं जो कि पश्चिमी हिन्दी ही है। इनके शब्द संयोगात्मक 'हैं', उनमें 'है' का भाव मौजूद है। परन्तु खड़ी बोली का काम बिना 'है' के नहीं चला, उसमें है लगा, और बिलकुल अलग रह कर। खड़ी बोली की अधिकांश क्रियाएँ 'हैं' से युक्त हैं। था के विषय में भी ऐसी ही बातें कही जा सकती हैं। खड़ी बोली के प्रत्ययों और विभक्तियों को प्रकृति से मिलाकर लिखने के लिए दस बरस पहले बड़ा आन्दोलन हो चुका है। कुछ लोग इस विचार के अनुकूल थे और कुछ प्रतिकूल। संयोगवादी प्राचीन प्रणाली की दुहाई देते थे, और कहते थे कि वैदिककाल से लेकर आज तक आर्यभाषा की जो सर्वसम्मत रीति प्रचलित है, उसका त्याग न होना चाहिए। प्रकृति से प्रत्ययों और विभक्तियों को अलग करने से पहले तो शब्दों का अयथा विस्तार होता है, दूसरे उनके स्वरूप पहचानने और प्रयोग में बाधा उपस्थित होती है। वियोगवादी कहते संयोग जटिलता का कारण है, संयुक्त वर्ण जिसके प्रमाण हैं। इसलिए सरलता जनसाधारण की सुविधा और बोलचाल पर ध्यान रखकर जो नियम आजकल इस बारे में प्रचलित हैं, उनको चलते रहना चाहिए। जीत वियोग वादियों की ही हुई। अब भी कुछ लोग प्रकृत और प्रत्ययों को मिलाकर लिखते हैं, परन्तु साधारणतया वे अलग ही लिखे जाते हैं! कहा

जाता है, हिन्दी भाषा में यह प्रणाली फारसी भाषा से आई है। फारसी में प्रायः इस प्रकार के शब्द अलग लिखे जाते हैं और उर्दू उन्हीं अक्षरों में लिखी जाती है जिन अक्षरों में फारसी। इसलिए जैसे हिन्दी की क्रिया आदि उर्दू में लिखे जाते हैं, वैसे ही हिन्दी में भी लिखे जाने लगे। इस कथन में बहुत कुछ सत्यता है, परन्तु मैं इस विवाद में पड़ना नहीं चाहता। मेरा कथन इतना ही है कि विभक्तियाँ अथवा प्रत्यय प्रकृति के साथ मिलाकर लिखे जाएँ या न लिखे जाएँ। परन्तु ये ही हिन्दी भाषा के वे सहारे हैं, जिनके आधार से वह संसार को अपना परिचय दे सकती है। इस प्रकरण में मैंने जिन विभक्तियों, सर्वनामों, प्रत्ययों और क्रियाओं का वर्णन किया है, वे हिन्दी भाषा के शब्दों, वाक्यों और उनके अवयवों के ऐसे चिह्न हैं, जो उसको अन्य भाषाओं से अलग करते हैं, इसलिए उनका निरूपण आवश्यक समझा गया।

सप्तम प्रकरण

हिन्दी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव

हिन्दी भाषा में सबसे अधिक संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। इस हिन्दी भाषा से मेरा प्रयोजन साहित्यिक हिन्दी भाषा से है। बोलचाल की हिन्दी में भी संस्कृत के शब्द हैं, परन्तु थोड़े, उसमें तद्भव शब्दों की अधिकता है। हिन्दुओं की बोलचाल में अब भी संस्कृत के शब्दों के प्रयुक्त होने का यह कारण है, कि विवाह यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के समय कथावार्ता और धर्म-चर्चाओं में, व्याख्यानों में और उपदेशों में, नाना प्रकार के पर्व और उत्सवों में, उनको पंडितों का साहाय्य ग्रहण करना पड़ता है। पण्डितों का भाषण अधिकतर संस्कृत शब्दों में होता है, वे लोग समस्त क्रियाओं को संस्कृत पुस्तकों द्वारा कराते हैं। अतएव उनके व्यवहार में भी संस्कृत शब्द आते रहते हैं। सुनते-सुनते अनेक संस्कृत शब्द उनको याद हो जाते हैं, अतएव अवसर पर वे उनका प्रयोग भी करते हैं। जब पुलकित चित्त से भगवान का स्मरण करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास के अथवा कविवर सूरदास के पदों को गाते हैं, अन्य भक्तों के भजनों को सुनते हैं, उस समय भी अनेक संस्कृत शब्द उनकी जिह्वा पर आते रहते हैं, और उनके विषय में उनका ज्ञान बढ़ता रहता है। इसलिए हिन्दुओं की बोलचाल में संस्कृत शब्दों का होना स्वाभाविक है। तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इनकी संख्या अधिक नहीं है। जो संस्कृत के शब्द अपने शुद्ध रूप में व्यवहृत होते हैं,

उनको तत्सम कहते हैं, यथा हर्ष, शोक, कार्य, कर्म, व्यवहार, धर्म आदि। जो संस्कृत शब्द प्राकृत में होते हुए हिन्दी तक परिवर्तित रूप में पहुँचे हैं, उनको तद्भव कहते हैं। जैसे काम, कान, हाथ इत्यादि। हिन्दी भाषा इन तद्भव शब्दों से ही बनी है। तद्भव शब्द के लिए यह आवश्यक नहीं है, कि जिस रूप में वह प्राकृत में था, उस रूप को बदलकर हिन्दी में आवे, तभी तद्भव कहलावे, यदि उसने अपना संस्कृत रूप बदल दिया है और प्राकृत रूप में ही हिन्दी में आया है तो भी तद्भव कहलावेगा। हस्त को लीजिए, जब तक इस शब्द का व्यवहार शुद्ध रूप में होगा, तब तक वह तत्सम है। प्राकृत में हस्त का रूप हत्थ हो जाता है और हत्थ हिन्दी में हाथ हो जाता है।

हिन्दी भाषा की रीढ़ ऐसे ही शब्द हैं, यह स्पष्ट तद्भव है। परन्तु यदि हत्थ के रूप में ही हिन्दी में ले लिया जाता तो भी तद्भव ही कहलाता। प्राकृत में लोचन, लोयन बन जाता है और हिन्दी में इसी रूप में गृहित होता है, थोड़ा भी नहीं बदलता, तो भी तद्भव ही कहलाता है। क्योंकि लोचन से उत्पन्न होने के कारण लोयन में तद्भवता (उत्पन्न होने का भाव) मौजूद है। तत्सम शब्द के आदि और मध्य का हलन्त वर्ण प्रायः हिन्दी में सस्वर हो जाता है, प्राकृत और अपभ्रंश में भी इस प्रकार का प्रयोग पाया जाता है, क्योंकि सुखमुखोच्चारण के लिए जनसाधारण प्रायः संयुक्त वर्णों के हलन्त वर्णों को सस्वर कर देता है, संस्कृत में इसको युक्तविकर्ष कहते हैं, ऐसे ही शब्द अर्द्ध तत्सम कहलाते हैं। धारम, करमयकिरपा, हिरदय, अगिन, सनेह आदि ऐसे ही शब्द हैं, जो धर्म, कर्म, कृपा, हृदय, अग्नि, स्नेह के वे रूप हैं, जो जनता के मुखों से निकले हैं। अवधी और ब्रजभाषा में ऐसे शब्दों का अधिकांश प्रयोग मिलता है। इन भाषा के कवियों ने भी भाषा को कोमल करने के लिए ऐसे कुछ शब्द गढ़े हैं। परन्तु खड़ीबोली के कवियों का मार्ग बिलकुल उलटा है, वे अर्द्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग करते ही नहीं। हिन्दी का गद्य तो उस को पास फटकने नहीं देता। 1. तत्सम, 2. अर्द्ध तत्सम और 3. तद्भव के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में और एक प्रकार के शब्द पाये जाते हैं, इनको 4. देशज कहते हैं। ये देशज वे शब्द हैं, जिनके आधार संस्कृत अथवा प्राकृत शब्द नहीं हैं। वे अनार्यों अथवा विजातीय भाषाओं से हिन्दी में आये हैं। जैसे गोड़, टाँग, उर्दू आदि। किसी-किसी की यह सम्मति है कि ऐसे शब्दों के विषय में यह ठीक पता नहीं चलता, कि वे कहाँ से आये, इसलिए वे देशज मान लिये गये। कुछ अनुकरणात्मक शब्द भी हिन्दी में हैं-जैसे खटखटाना, गड़बड़ाना, बड़बड़ाना, फड़फड़ाना, चटपट, खटपट इत्यादि। कहा जाता है ऐसे

कुल शब्द देशज हैं, परन्तु अनेक भाषा मर्मज्ञों ने इस प्रकार के बहुत से शब्दों की उत्पत्ति संस्कृत से ही बतलाई है। सीधा मार्ग देशज शब्दों के निर्धारण का यही ज्ञात होता है कि जो तत्सम, तद्भव, अर्द्ध तत्सम, तत्समाभास अथवा विदेशी शब्द नहीं हैं, उन्हें देशज मान लिया जावे। हिन्दी भाषा में कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त होते हैं, जो देखने में तत्सम ज्ञात होते हैं, परन्तु वास्तव में वे तत्सम शब्द नहीं होते। जिनको संस्कृत का ज्ञान साधारण होता है, आदि में उनके द्वारा ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है, जब उनके अनुकरण से दूसरे लोग भी उनका व्यवहार करने लग जाते हैं, तो काल पाकर वे गृहित हो जाते और भाषा में चल जाते हैं। इस प्रकार के शब्द हैं, हरीतिमा, लालिमा, सत्यानाश, प्रण और मनोकामना आदि। कुछ संस्कृत के विद्वान इस प्रकार के शब्दों का व्यवहार करने के विरोधी हैं, उनके द्वारा अब भी इस प्रणाली का यथा समय विरोध होता रहता है, परन्तु मेरा विचार है कि ऐसे चल गये और व्यापक बन गये, शब्दों का विरोध सफलता नहीं लाभ कर सकता। कारण इसका यह है कि समस्त प्राकृतों और अपभ्रंश भाषाओं की उत्पत्ति ही इस प्रकार हुई है। भाषा में जब स्थान मिल गया है, तब इस प्रकार के शब्दों का निकाल बाहर करना साधारण बात नहीं, ऐसी अवस्था में उनको उस भाषा का स्वतंत्र प्रयोग मान लेना ही अधिक युक्ति-संगत ज्ञात होता है। अनेक व्याकरण रचयिताओं ने इस पथ का अवलम्बन किया है, ऐसे शब्दों को तत्समाभास कह सकते हैं।

हिन्दी शब्द-भण्डार पर विदेशी भाषाओं के शब्द का भी बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। 'नानक' शब्द का प्रयोग नामकरण के लिए प्रायः काम में लाया जाता है, नानकचंद, नानक बख्शाम अब भी रखे जाते हैं, परन्तु वास्तव में 'नानक' यूनानी शब्द है। 'कचहरी' शब्द घर-घर प्रचलित है, और साहित्यिक भाषा में भी चलता रहता है, परन्तु है यह पुर्तगाली भाषा का शब्द। शक और हूणों के शब्द भी प्राकृत और अपभ्रंश से होकर हिन्दी में आये हैं, परन्तु सबसे अधिक उसमें फारसी, अरबी और अंग्रेजी के शब्द पाये जाते हैं। 900 ईस्वी के लगभग मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्धु को जीता, भारत के एक बड़े प्रदेश में मुसलमानों की यह पहली विजय थी, उसके बाद 100 वर्ष तक पंजाब में मुसलमानों का राज्य रहा, तदुपरान्त वे धीरे-धीरे भारत भर में फैल गये और लगभग 800 वर्ष तक उनका शासन चलता रहा। विजेता की भाषा का कितना प्रभाव विजित जाति पर पड़ता है, यह अप्रकट नहीं। इस आठ सौ वर्ष के बहुव्यापी समय में उसने कितना अधिकार भारतीय भाषाओं पर जमाया, इसका प्रमाण वे स्वयं दे रही हैं।

हिन्दी भाषा वहाँ की भाषा थी, जहाँ पर मुसलमानों के साम्राज्य का केन्द्र था, और जहाँ उनकी विजय वैजयन्ती उस समय तक उड़ती रही, जब तक उनका साम्राज्य ध्वंस नहीं हुआ। इसीलिए हिन्दी भाषा पर उनकी भाषा का बहुत अधिक प्रभाव देखा जाता है। अरबी मुसलमानों की धार्मिक भाषा थी। विजयी मुसलमान भारत में अरब से ही नहीं, ईरान और तुर्किस्तान से भी आये। इसलिए हिन्दी भाषा पर अरबी, फारसी और तुर्की तीनों का प्रभाव पड़ा। इन तीनों भाषाओं के शब्द अधिकता से उसमें पाये जाते हैं। अधिकता का प्रत्यक्ष प्रमाण उर्दू है, जो कठिनता से हिन्दी कही जा सकती है।

इन भाषाओं के अधिकतर शब्द संज्ञा रूप में गृहित हुए हैं। मुसलमानों के साथ बहुत से ऐसे पदार्थ और सामान भारत में आये, जिनका कोई संस्कृत और देशज नाम नहीं था, इसलिए हिन्दी में उनका अरबी, फारसी आदि नाम ही व्यवहार में आया। जैसे साबुन, चिलम, नैचा, हुक्का, रिकाबी, तश्तरी आदि। प्रायः देखा जाता है कि शिक्षित जन ही नहीं, अपठित लोग भी राजकीय भाषा बोलने में अपना गौरव समझते हैं, इस कारण अनेक संस्कृत और हिन्दी शब्दों के स्थान पर भी अरबी, फारसी एवं तुर्की शब्दों का प्रचार हुआ और यह दूसरा हेतु हिन्दी में विदेशी शब्दों के आधिक्य का हुआ।

आजकल वायु, मसिभाजन, लेखनी आदि के स्थान पर हवा 'दावत' और कलम आदि का ही अधिक प्रयोग देखा जाता है। नीचे लिखे शब्दों जैसे अनेक शब्द ऐसे हैं कि जिनके स्थान पर हम गढ़े शब्दों का ही प्रयोग कर सकते हैं, फिर भी वे इतने सुबोध न होंगे, इसलिए ऐसे शब्द ही प्रायः मुखों से निकलते, और उनकी व्यापकता हिन्दी में बढ़ाते हैं–

मजदूर, वकील, गुलाब, कोतल, परदा, रसद, कारीगर आदि।

इस प्रकार के शब्दों को छोड़कर इन भाषाओं के कुछ संज्ञाओं को लेकर भी उन्हें क्रिया का रूप हिन्दी नियमानुसार दिया गया और आजकल वे क्रियाएँ हिन्दी में निस्संकोच भाव से प्रचलित हैं। शरमाना, फरमाना, कबूलना, बदलना, बख्शना, आदि ऐसी ही क्रियाएँ हैं। शर्म, फरमान, कबूल, बदल, बख्श, आदि संज्ञाओं के अन्त में हिन्दी का धातु चिह्न लगाकर इन्हें क्रिया का रूप दिया गया, और आजकल उनसे सब काल की क्रियाएँ हिन्दी व्याकरण के नियमानुसार बनती रहती हैं। इन भाषाओं के आधार से बहुत से ऐसे शब्द भी बन गये हैं, कि जिनका आधा हिस्सा हिन्दी शब्द है, और दूसरा आधा अरबी–फारसी इत्यादि का कोई शब्द। जैसे पानदान, पीकदान, हाथीवान, समझदार, ठीकेदार आदि। इस

प्रकार की कुछ क्रियाएँ भी बना ली गई हैं। जैसे खुश होना, रवाना होना, दिल लगाना, जखम पहुँचाना, इलाज करना, हवा हो जाना आदि।

मुसलमानों की अदालत और दफ्तरों के काम पहले प्रायः हिन्दी में होते थे, परन्तु अकबर के समय में राजा टोडरमल ने दफ्तर को हिन्दी से फारसी में कर लिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू फारसी पढ़ने के लिए विवश हुए, और कचहरी एवं दफ्तरों का काम फारसी में होने लगा। इससे भी प्रचुर फारसी अरबी आदि के शब्दों का प्रचार जन-साधारण और हिन्दी में हुआ, और कानून एवं अदालत सम्बन्धी सैकड़ों पारिभाषिक शब्द व्यवहार में आने लगे। काजी, नाजिम, कानूनगो, समन, नाबालिग, बालिग, दस्तावेज आदि ऐसे ही शब्द हैं।

अरबी, फारसी में कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं, जो उनकी वर्णमाला में मौजूद हैं, परन्तु हिन्दी वर्णमाला में उनका अभाव है। जब फारसी, अरबी और तुर्की के शब्दों का प्रचार हुआ तो उनके शब्दगत अक्षरों की विशेष ध्वनियों की ओर भी लोगों की दृष्टि आकर्षित हुई, क्योंकि बिना उन ध्वनियों की रक्षा किये शब्दों का शुद्धोच्चारण असंभव था। परिणाम यह हुआ कि कुछ विशेष चिह्न के द्वारा इस न्यूनता की पूर्ति की गई। यह विशेष चिह्न वह बिन्दु है, जो अरबी के अपेक्षित अक्षरों के नीचे लगाया जाता है। ध्वनियों की रक्षा अ, ग, क, ख, ज, फ, लिख कर की जाती है। किन्तु कुछ भाषा-मर्मज्ञ इस प्रणाली के प्रतिकूल हैं। उनका यह कथन है कि ग्राहक भाषा सदा ग्राह्य भाषाओं के शब्दों को अपने स्वाभाविक उच्चारणों के अनुकूल बना लेती है। ऐसी अवस्था में हिन्दी वर्णों पर बिन्दु लगाकर अरबी-फारसी के अक्षरों की ध्वनियों की रक्षा करना युक्तिमूलक नहीं। ऐसा करने से व्यर्थ वर्णमाला के वर्णों का विस्तार होता है। मेरा विचार है कि जब पठित समाज अरबी, फारसी के विशेष अक्षरों का उच्चारण उसी रूप में करता है, जिस रूप में उनका उच्चारण उन भाषाओं में होता है तो इस प्रकार के उच्चारणों की रक्षा के लिए हिन्दी भाषा के अक्षरों में विशेष संकेतों के द्वारा कुछ परिवर्तन करने की जो प्रणाली गृहित हैं, वह सुरक्षित क्यों न रखी जावे। उर्दू कोर्ट की भाषा है, कचहरी दरबार में उसी का प्रचार है। सरकारी दफ्तरों में उसी से ही काम लिया जाता है। उर्दू की लिपि वही है, जो अरबी, फारसी की है, इसलिए अरबी, फारसी के शब्द उसमें शुद्ध रूप में लिखे जाते हैं। शुद्ध रूप में लिखे जाने के कारण उनका उच्चारण भी शुद्ध रूप में होता है। सरकारी कचहरियों से कुछ न कुछ सम्बन्ध प्रजा मात्र का होता है। मान की रक्षा कौन नहीं करता। जब लोग देखते हैं कि अरबी, फारसी शब्दों का शुद्ध

उच्चारण न करने से प्रतिष्ठा में बट्टा लगता है, शिष्ट-प्रणाली में अन्तर पड़ता है, अधिकारियों की दृष्टि से गिरना पड़ता है, तो उनको विवश होकर अरबी, फारसी शब्दों के उच्चारण के समय उनकी विशेषताओं की रक्षा करनी पड़ती है। पठित समाज अवश्य ऐसा करता है, गँवार और मूर्खों की बात दूसरी है। यदि आवश्यकताएँ अथवा कारण विशेष हमको अरबी और फारसी शब्दों का शुद्धोच्चारण करने के लिए विवश करते हैं और सभा, समाज, पारस्परिक व्यवहार, एवं कुछ अंतर्जातीय लोगों से सम्मिलन के अवसरों पर हमको शुद्ध उर्दू बोलने की आवश्यकता होती है, तो उसके फारसी, अरबी के विशेष शब्दों को हिन्दी अक्षरों में शुद्ध लिखने की प्रणाली प्रचलित क्यों न रखी जावे। दूसरी बात यह कि पूर्णता लाभ के लिए जैसे भाषा के व्यापक और पूर्ण होने की आवश्यकता है, वैसे ही लिपि को। लिपि की अपूर्णता प्रायः भाषा की पूर्णता की बाधक होती है। यह ज्ञात है कि उर्दू अरबी लिपि में लिखी जाती है, अरबी लिपि में हिन्दी का ट वर्ण है ही नहीं, उसमें हिन्दी के ख, घ, छ, झ, थ, धा, फ, भ अक्षरों का भी अभाव है। उर्दू वालों ने एक नहीं, अनेक चिह्नों का उद्भावन कर अपने अभावों की पूर्ति की, और इस प्रकार अपनी लिपि को पूर्ण बना लिया है। रोमन अक्षरों को पूर्ण बनाने के लिए आये दिन इस प्रकार की उद्भावनाएँ होती ही रहती हैं। फिर हिन्दी, वह हिन्दी पीछे क्यों रहे, जो सभी लिपियों से शक्तिशालिनी है और जिसमें ही यह गुण है, कि जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है। यदि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके, कोई लिपि पूर्ण बन सकती है, तो हिन्दी में यह शक्ति सबसे अधिक है। वह अपूर्ण क्यों रहे, और क्यों यह प्रकट करे कि वह न्यूनताओं से भरी है, और पूर्णता लाभ करने की उसमें शक्ति नहीं।

अरबी फारसी लिपियों में जो ऐसे वर्ण हैं, जिनका उच्चारण हिन्दी वर्णों के समान है, उनके लिखने में कुछ परिवर्तन नहीं होता, वरन् फारसी-अरबी के कई वर्णों के स्थान पर हिन्दी का एक ही वर्ण प्रायः काम देता है। परिवर्तन उसी अवस्था में होता है, जब उनमें फारसी-अरबी वर्णों से अधिकतर उच्चारण की विभिन्नता पाई जाती है। नीचे कुछ इसका वर्णन किया जाता है।

अरबी में कुल 28 अक्षर हैं, इनमें फारसी भाषा के चार विशेष अक्षरों पे, चे, जे, गाफ के मिलाने से वे 32 हो जाते हैं। उनको मैं नीचे लिखता हूँ-

।। इनमें से, से, हे, साद, जाद, तो, जो, अैन और कफ अरबी के विशेष अक्षर हैं-फारसी और अरबी के विशेष अक्षरों को, निम्नलिखित शेर में स्पष्ट किया गया है-

सावो, हावो, सादो, जादो, तोवो, जोवो, अैन, कफ। हर्फे ताजी फारसीदां, पे, वो, चे, वो, जे, वो, गाफ। इनमें से के स्थान पर हिन्दी में, अ, ब, प, ज, च, द, र, श, क, ग, ल, म, न, व, य, लिखा जाता है। दोनों भाषाओं के उक्त अक्षरों का उच्चारण कुछ भिन्न ज्ञात होता है, परन्तु प्रयोग में कोई भिन्नता नहीं है, इसलिए फारसी के इन तेरह अक्षरों के स्थान पर हिन्दी अक्षरों का व्यवहार बिना किसी परिवर्तन के होता है। फारसी के शेष अक्षरों में से कुछ अक्षर तो ऐसे हैं, जिनमें से दो या तीन अक्षरों के स्थान पर हिन्दी का एक अक्षर काम देता है और कुछ ऐसे हैं जिनके लिए समान उच्चारित अक्षरों के नीचे बिन्दु लगाना पड़ता है, नीचे ऐसे अक्षर लिखे जाते हैं।

1. के स्थान पर 'क' 'ख' 'अ' 'ग'और फ लिखा जाता है जैसे का कैम का खरबूजा का अैनक का गायब और का फजूल आदि किन्तु के स्थान पर प्रायः अ ही लिखने की प्रणाली है। कारण इसका यह है कि अैन का उच्चारण अधिकतर पठित समाज भी अ का सा-ही करता है, इसका प्रमाण यह है कि मअलूम के स्थान पर मालूम ही लिखा जाता है को आम नहीं आम ही कहते और लिखते हैं।
2. और दोनों के स्थान पर हिन्दी का ह ही काम देता है, जैसे का हाल और हवा का हवा। और का काम हिन्दी का त देता है, और तौर और तीर ही लिखे जाते हैं।
3. और हिन्दी में स बन जाते हैं। जैसे का सूरत का सवाब और का सर इत्यादि।

इन पाँचों अक्षरों का उच्चारण प्रायः ज के समान है, इसलिए हिन्दी में इनके स्थान पर ज ही लिखा जाता है जैसे का जैल का जोर, का जामिन का जाहिर इत्यादि।

फारसी में एक हे मुखफी कहा जाता है, के अन्त में जो हे है वही हे मुखफषी है। हिन्दी में यह आ हो जाता है जैसे रोजा, कूजा, सबजा, जर्रा आदि। कुछ लोगों ने इस हे के स्थान पर विसर्ग लिखना प्रारम्भ किया था, अब भी कोई-कोई इसी प्रकार से लिखना पसन्द करते हैं जैसे रोजः, कूजः, सब्जः, जर्रः आदि। परन्तु अधिक सम्मति इसके विरुद्ध है, मैं भी प्रथम प्रणाली को ही अधिकतर युक्ति सम्मत समझता हूँ।

हिन्दी भाषा का अन्यतम रूप उर्दू है। दिल्ली मुसलमान सम्राटों की राजधानी अन्तिम समय तक थी। दिल्ली के आसपास और उसके समीपवर्ती

मेरठ के भागों में जो हिन्दी बोली जाती है, उसी में लश्कर के लोगों की बोलचाल का मिश्रण होने से जिस भाषा की उत्पत्ति हुई, शाहजहाँ के समय भी उसी का नाम उर्दू पड़ा। कारण इसका यह है कि तुर्की भाषा में लश्कर को उर्दू कहते हैं। किसी भाषा में अन्य भाषा के कुछ शब्द मिल जाएँ तो इससे उस भाषा का कुछ रूप बदल जा सकता है, परन्तु वह भाषा अन्य भाषा नहीं बन जाती। उर्दू भाषा की रीढ़ हिन्दी भाषा के सर्वनाम, विभक्तियाँ, प्रत्यय और क्रियाएँ ही हैं, उसकी शब्द-योजना भी अधिकतर हिन्दी भाषा के समान ही होती है, ऐसी अवस्था में वह अन्य भाषा नहीं कही जा सकती।

मैंने चतुर्दश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापतित्त्व-सूत्र से जो इस बारे में लिखा था, विषय को और स्पष्ट करने के लिए उसे भी यहाँ उद्धृत करता हूँ।

'यदि अन्य भाषा के शब्द सम्मिलित होने से किसी भाषा का नाम बदल जाता है, तो फारसी, अंग्रेजी आदि बहुत-सी भाषाओं का नाम बदल जाना चाहिए। फारसी में अरबी और तुर्की के इतने अधिक शब्द मिल गये हैं, कि उतने शब्द आज भी हिन्दी में इन भाषाओं अथवा फारसी के नहीं मिले, फिर क्यों फारसी फारसी कही जाती है और हिन्दी उर्दू कहलाने लगी। फारस के विख्यात महाकवि **फिरदोसी** ने अपने शाहनामा में एक स्थान पर लिखा है, 'फलक गुफ्त अहसन मलक गुफ्त जेह' अहसन और जेह अरबी शब्द हैं, अतएव उनसे प्रश्न हुआ कि आपने कुल किताब तो खालिस फारसी में लिखी, इस शेर में दो अरबी के शब्द कैसे आ गये? उन्होंने कहा कि 'फलक व मलक गुफ्त न मन गुफ्त' मतलब यह कि फलक और मलक ने कहा मैंने नहीं कहा! कहाँ यह भाव और कहाँ यह कि एक तिहाई से अधिक अरबी शब्द फारसी में दाखिल हो गये, तो भी फारसी का नाम फारसी ही रहा। उर्दू भाषा की प्रकृति आज भी हिन्दी है, व्याकरण उसका आज भी हिन्दी प्रणाली में ढला हुआ है, उसमें जो फारसी मुहावरे दाखिल हुए हैं, वे सब हिन्दी रंग में रँगे हैं। फारसी के अनेक शब्द हिन्दी के रूप में आकर उर्दू की क्रिया बन गये हैं। एक वचन बहुधा हिन्दी रूप में बहुवचन होते हैं, फिर उर्दू हिन्दी क्यों नहीं है? यदि कहा जावे फारसी, अरबी, और संस्कृत शब्दों के न्यूनाधिक्य से ही उर्दू हिन्दी का भेद स्थापित होता है, तो यह भी नहीं स्वीकार किया जा सकता, क्योंकि अनेक उर्दू शायरों का बिलकुल हिन्दी से लबरेज शेर उर्दू माना जाता है और अनेक हिन्दी कवियों का फारसी और अरबी से लबालब भरा पद्य हिन्दी कहा जाता है-कुछ प्रमाण लीजिए-

1. मुसलमानों का धार्मिक विश्वास है कि फलक (आकाश) और मलक (देवता) की भाषा अरबी है।

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता।।
(मोमिन)

लोग घबरा के यह कहते हैं कि मर जाएँगे।
मर के गर चैन न पाया तो किधर जाएँगे।
(जौक)

लटों में कभी दिल को लटका दिया।
कभी साथ बालों के झटका दिया।।
(मीरहसन)

हिन्दी-भरी कविता आपने उर्दू की देख ली। अब अरबी फारसी भरी हिन्दी की कविता देखिए-

जेहि मग दौरत निरदई तेरे नैन कजाक।
तेहि मग फिरत सनेहिया किये गरेबां चाक।
- रसनिधि।

यों तिय गोल कपोल पर परी छूट लट साफ।
खुशनवीस मुंशी मदन लिख्यो कांच पर काफ।
- शृंगार सरोज

मैं यहाँ कुछ अंग्रेज और भारतीय विद्वानों की सम्मति उठाना चाहता हूँ-आप लोग देखें, वे क्या कहते हैं-

'उर्दू का व्याकरण ठीक हिन्दी के व्याकरण से मिलता है' उर्दू हिन्दी से भिन्न नहीं है। 1

-डॉक्टर राजेन्द्र लाल मित्र

'उर्दू के बड़े प्रसिद्ध कवि **वली** और **सौदा** की भाषा तथा हिन्दी के अति प्रसिद्ध कवि तुलसीदास और बिहारी लाल की भाषा में कुछ अन्तर नहीं है, दोनों ही आर्य्य-भाषा हैं। इसलिए हिन्दी उर्दू को अलग मानना बड़ी भारी भूल है।'2

-मि. बीम्स

&Mr- Beems

'जो भाषा आज हिन्दुस्तानी कहलाती है उसी का नाम हिन्दी, उर्दू और रखता भी है। इसमें अरबी, फारसी और संस्कृत भाषा के शब्द हैं।'- डॉ. गिल क्राइस्ट

आजकल उर्दू अधिक बदल रही है, उसमें फारसी तरकीबों का अधिकतर प्रयोग होने लगा है। मेवा का मेवों, निशान का निशानों, मजदूर का मजदूरों, शहर का शहरों, दवा का दवाओं और कसबा का कसबों ही पहले लिखा जाता था, क्योंकि हिन्दी के नियमानुसार उनका बहुवचन रूप यही बनता है। परन्तु अब फारसी के अनुसार उनका बहुवचन रूप मेवात, निशानात, मजदूरान, शहरात, अदबिया, कसबात अथवा कसबाजात लिखना अधिक पसंद किया जाता है। इसी प्रकार हिन्दी के कुछ कारक-चिह्नों का लोप करके फारसी शब्दों को फारसी तरकीब में ढाला जाने लगा है, रोजेसियह, इशरते कतरा, नशयेइश्क, मुर्दादिल, गरीबुलवतनी, मसायलेतसव्वुफ आदि इसके प्रमाण हैं! लम्बे-लम्बे समस्त पदों की भी अधिकता हो चली है-जैसे 'जेरे कदमे वालदा फिरदोस बरीं है, परन्तु तो भी उर्दू का अधिकांश प्रचलित रूप हिन्दी ही है।'

इस प्रकार के प्रयोगों से हिन्दी में कुछ फारसी शब्द अधिक मिल गये हैं, और उर्दू नामकरण ने विभेद मात्रा अधिक बढ़ा दी है, तथापि आज तक उर्दू हिन्दी ही है, कतिपय प्रयोगों का रूपान्तर हो सकता है भाषा नहीं बदल सकती। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दी भाषा पर अरबी फारसी और तुर्की शब्दों का इतना अधिक प्रभाव पड़ रहा है कि एक विशेष रूप से वह अन्य भाषा-सी प्रतीत होती है।

सौ वर्ष के भीतर हिन्दी में बहुत से योरोपियन विशेषकर अंग्रेजी शब्द भी मिल गये हैं और दिन-दिन मिलते जा रहे हैं। रेल, तार, डाक, मोटर आदि कुछ ऐसे शब्द हैं, जो शुद्ध रूप में ही हिन्दी में व्यवहृत हो रहे हैं, और लालटेन, लैम्प आदि कितने ऐसे शब्द हैं, जिन्होंने हिन्दी रूप ग्रहण कर लिया है और आजकल इनका प्रचार इसी रूप में है। बहुत से सामान पाश्चात्य देशों से भारतवर्ष में ऐसे आ रहे हैं, जिनका हिन्दी नाम है ही नहीं। ऐसी अवस्था में उनका योरोपियन अथवा अमेरिकन नाम ही प्रचलित हो जाता है और इस प्रकार उन देशों की भाषा के अनेक शब्द इस समय हिन्दी भाषा में मिलते जा रहे हैं। यह स्वाभाविकता है, विजयी जाति के अनेक 'शब्द विजित जाति की भाषा में मिल जाते ही हैं, क्योंकि परिस्थिति ऐसा कराती रहती है। किन्तु इससे चिन्तित न होना चाहिए। इससे भाषा पुष्ट और व्यापक होगी और उसमें अनेक उपयोगी विचार संचित हो जाएँगे। यत्न इस बात का होना चाहिए, कि भाषा विजातीय शब्दों, वाक्यों और भावों को इस प्रकार ग्रहण करे कि उसकी विजातीयता हमारी जातीयता के रंग में निमग्न हो जावे।

आजकल कुछ शब्द अन्य प्रान्तों के भी हिन्दी भाषा में गृहित हो गये हैं। कुछ विचारवान पुरुष इसको अच्छा नहीं समझते, वे सोचते हैं, इससे अपनी भाषा का दारिद्रय सूचित होता है। मैं कहता हूँ, इस विचार में गम्भीरता नहीं है। प्रथम तो हिन्दी भाषा राष्ट्रीय पद पर आरूढ़ हो रही है, इसलिए राष्ट्र की सम्पत्ति उसी की है। दूसरी बात यह है कि राष्ट्रोपयोगी जो व्यापक शब्द हैं, अथवा जो कारण विशेष से ऐसे बन गये हैं, जो भावद्योतन में किसी शब्द से विशेष क्षमतावान हैं, तो वे क्यों न ग्रहण कर लिये जावें। यदि विदेशीय शब्दों का कुछ स्वत्व हिन्दी भाषा पर विशेष कारणों से है, तो ऐसे शब्दों का आदर क्यों नहीं किया जावे। मेरा विचार है कि उनका तो सादर अभिनन्दन करना चाहिए। इस प्रकार के शब्द मराठी के लागू, चालू आदि, गुजराती के हड़ताल आदि, बँगला के गल्प, प्राणपण आदि और तमिल भाषा के चुरुट आदि हैं। जब ये शब्द प्रचलित हो गये हैं, और सर्वसाधारण के बोधागम्य हैं, तो इनके स्थान पर न तो दूसरा शब्द गढ़ने का उद्योग करना चाहिए और न इनका बायकाट। इस प्रकार का सम्मिलन भाषा-विकास का साधक है, बाधक नहीं, यदि वह सीमित और मर्यादित हो।

डॉ. कामता प्रसाद गुरु–'भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों तक भलीभाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतया समझ सकता है।'

आचार्य किशोरीदास–'विभिन्न अर्थों में संकेतित शब्दसमूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।''

डॉ. श्यामसुन्दर दास–'मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।'

डॉ. बाबूराम सक्सेना–'जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।'

डॉ. भोलानाथ–'भाषा उच्चारणावयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह संचरनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज-विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।'

रवीन्द्रनाथ–'भाषा वागेन्द्रिय द्वारा निःस्तृत उन ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है, जो अपनी मूल प्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिनके द्वारा किसी भाषा-समुदाय के व्यक्ति अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं,

अपने विचारों को संप्रेषित करते हैं और अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धें को सूचित करते हैं।'

महर्षि पतंजलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी महाभाष्य में भाषा की परिभाषा करते हुए कहा है- "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।" जो वाणी से व्यक्त हो उसे भाषा की संज्ञा दी जाती है। **दुनीचंद** ने अपनी पुस्तक "हिन्दी व्याकरण" में भाषा की परिभाषा करते हुए लिखा है–"हम अपने मन के भाव प्रकट करने के लिए जिन सांकेतिक ध्वनियों का उच्चारण करते हैं, उन्हें भाषा कहते हैं।"

डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए लिखा है–"भाषा मुख से उच्चरित उस परम्परागत सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की व्यक्ति को कहते हैं, जिसकी सहायता से मानव आपस में विचार एवं भावों को आदान-प्रदान करते हैं तथा जिसको वे स्वेच्छानुसार अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं।"

डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल के अनुसार–"भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छन्द प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है जिससे मानव समाज में अपने भावों का परस्पर आदान-प्रदान करते हुए एक-दूसरे को सहयोग देता है।"

श्री नलिनि मोहन सन्याल का कथन है–"अपने स्वर को विविध प्रकार से संयुक्त तथा विन्यस्त करने से उसके जो-जो आकार होते हैं उनका संकेतों के सदृश व्यवहार कर अपनी चिन्ताओं को तथा मनोभावों को जिस साधन से हम प्रकाशित करते हैं, उस साधन को भाषा कहते हैं।"

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के मतानुसार–"भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।"

प्लेटो ने विचार तथा भाषा पर अपने भाव व्यक्त करते हुए लिखा है- 'विचार आत्मा की मूक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।'

मैक्समूलर के अनुसार-"भाषा और कुछ नहीं है केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा अविष्कृत ऐसा उपाय है, जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।"

क्रोचे द्वारा लिखित परिभाषा इस प्रकार है–"Language is articulate, limited organised sound, employed in expression". अर्थात् भाषा उस स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को कहते हैं, जो अभिव्यंजना के लिए नियुक्त की जाती है।

ब्लॉक और ट्रेगर के अनुसार–"। Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group co&operates". अर्थात् भाषा व्यक्त ध्वनि चिह्नों की उस पद्धति को कहते हैं जिसके माध्यम से समाज-समूह परस्पर व्यवहार करते हैं।

हेनरी स्वीट का कथन है–"Language may be defined as expression of thought by means of speechsound." अर्थात् जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है, उसे भाषा कहते हैं।

ए. एच. गार्डिनर के विचार से "The common definition of speech is the use of articulate sound sybols for the expression of thought." अर्थात् विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट ध्वनि-संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उन्हें भाषा कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि- ''मुख से उच्चरित ऐसे परम्परागत, सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की समष्टि ही भाषा है, जिनकी सहायता से हम आपस में अपने विचारों एवं भावों का आदान-प्रदान करते हैं।''

भाषा के भेद

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अतः समाज में रहते हुए सदा विचार-विमर्श की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप में भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों को भाषा की संज्ञा दी जाती है। भावाभिव्यक्ति संदर्भ में हम अनेक माध्यमों को सहारा लेते हैं, यथा–स्पर्श कर, चुटकी बजाकर, आँख घुमा या दबाकर, उँगली को आधार बनाकर, गहरी साँस छोड़कर, मुख के विभिन्न अंगों के सहयोग से ध्वनि उच्चारण कर आदि।

भाषा की स्पष्टता के ध्यान में रखकर उसके वर्ग बना सकते हैं –

मूक भाषा–भाषा की ध्वनि रहित स्थिति में ही ऐसी भावाभिव्यक्ति होती है। इसे भाषा का अव्यक्त रूप भी कहा जा सकता है। संकेत, चिह्न, स्पर्श आदि भावाभिव्यक्ति के माध्यम इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। पुष्प की भाषा भी मूक है।

अस्पष्ट भाषा—जब व्यक्त भाषा का पूर्ण या स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है, तो उसे अस्पष्ट कहते हैं, यथा—चिड़ियाँ प्रातः काल से अपना गीत शुरू कर देती है, किन्तु उनके गीत का स्पष्ट ज्ञान सामान्य व्यक्ति नहीं कर पाता है। इस प्रकार पक्षियों का गीत मानव के लिए अस्पष्ट भाषा है।

स्पष्ट भाषा—जब भावाभिव्यक्ति पूर्ण स्पष्ट हो, तो ऐसी व्यक्त भाषा को स्पष्ट कहते हैं। जब मनुष्य मुख अवयवों के माध्यम से अर्थमयी या यादृच्छिक ध्वनि-समष्टि का प्रयोग करता है, तो ऐसी भाषा का रूप सामने आता है। यह भाषा मानव-व्यवहार और उसकी उन्नति में सर्वाधिक सहयोगी है।

स्पर्श भाषा - इसमें विचारों की अभिव्यक्ति शरीर के एक अथवा अधिक अंगों के स्पर्श-माध्यम से होती है। इसमें भाषा के प्रयोगकर्ता और ग्रहणकर्ता में निकटता आवश्यक होती है।

इंगित भाषा - इसे आंगिक भाषा भी कहते हैं। इसमें विचारों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार के संकेतों के माध्यम से होती है, यथा—हरी झंडी या हरी बत्ती मार्ग साफ या आगे बढ़ाने का संकेत है या लाल बत्ती मार्ग अवरुद्ध होने या रुकने का संकेत है।

वाचिक भाषा - इसके लिए 'मौखिक' शब्द का भी प्रयोग होता है। ऐसी भाषा में ध्वनि-संकेत भावाभिव्यक्ति के मुख्य साधन होते हैं। इसमें विचार-विनिमय हेतु मुख के विभिन्न अवयवों का सहयोग लिया जाता है, अर्थात् इसमें भावाभिव्यक्ति बोलकर की जाती है। यह सर्वाधिक प्रयुक्त भाषा है। सामान्यतः इस भाषा का प्रयोग सामने बैठे हुए व्यक्ति के साथ होता है। यंत्र-आधारित दूरभाष (टेलीफोन), वायरलेस आदि की भाषा भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आती है। भाषा के सूक्ष्म विभाजन में इसे यांत्रिक या यंत्र-आधारित भाषा के भिन्न वर्ग में रख सकते हैं।

लिखित भाषा—भावाभिव्यक्ति का सर्वोत्तम् माध्यम लिखित भाषा है, इसमें अपने विचार का विनिमय लिखकर अर्थात् मुख्यतः लिपि का सहारा लेकर किया जाता है। इस भाषा में लिपि के आधार पर समय तथा स्थान की सीमा पर करने की शक्ति होती है। एक समय लिपिबद्ध किया गया विचार शताब्दियों बाद पढ़ कर समझा जा सकता है और कोई भी लिपिबद्ध विचार या संदेश देश-विदेश के किसी भी स्थान को भेजा जा सकता है। किसी भी समाज की उन्नति मुख्यतः वहाँ की भाषा-उन्नति पर निर्भर होती है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि उन्नत देश की भाषा भी उन्नत होती है। इसके साथ भाषा को मानवीय

सभ्यता का उत्कर्ष आधार माना गया है। काव्यदर्श में वाणी (भाषा) को जीवन का मुख्याधार बताते हुए कहा गया है–"वाचामेय प्रसादेन लोक यात्र प्रवर्तते।"

भाषा की प्रवृत्ति

भाषा के सहज गुण-धर्म को भाषा के अभिलक्षण या उस की प्रकृति कहते हैं। इसे ही भाषा की विशेषताएँ भी कहते हैं। भाषा-अभिलक्षण को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। भाषा का प्रथम अभिलक्षण वह है, जो सभी भाषाओं के लिए मान्य होता है, इसे भाषा का सर्वमान्य अभिलक्षण कह सकते हैं। द्वितीय अभिलक्षण वह है, जो भाषा विशेष में पाया जाता है। इससे एक भाषा से दूसरी भाषा की भिन्नता स्पष्टता होती है। हम इसे विशिष्ट भाषागत अभिलक्षण भी कह सकते हैं। यहाँ मुख्यत: ऐसे अभिलक्षणों के विषय में विचार किया जा रहा है, जो विश्व की समस्त भाषाओं में पाये जाते हैं:

भाषा सामाजिक सम्पत्ति है–सामाजिक व्यवहार भाषा का मुख्य उद्देश्य है। हम भाषा के सहारे अकेले में सोचते या चिन्तन करते हैं, किन्तु वह भाषा इस सामान्य यादृच्छिक ध्वनि-प्रतिकों पर आधारित भाषा से भिन्न होती है। भाषा अघोपांत समाज से संबंधित होती है। भाषा का विकास समाज में हुआ, उसका अर्जन समाज में होता है और उसका प्रयोग भी समाज में ही होता है। यह तथ्य दृष्टव्य है कि बच्चा जिस समाज में पैदा होता है तथा पलता है, वह उसी समाज की भाषा सीखता है।

भाषा पैत्रिक सम्पत्ति नहीं है–कुछ लोगों का कथन है कि पुत्र को पैत्रिक सम्पत्ति (घर, धन, बाग आदि) के समान भाषा भी प्राप्त होती है। अत: भाषा पैत्रिक सम्पत्ति है, किन्तु यह सत्य नहीं है। यदि किसी भारतीय बच्चे को एक-दो वर्ष अवस्था (शिशु-काल) में किन्हीं विदेशी भाषा-भाषी लोगों के साथ कर दिया जाये, तो वह उनकी ही भाषा बोलेगा। यदि भाषा पत्रिक सम्पत्ति होती, तो वह बालक बोलने के योग्य होने पर अपने माता-पिता की ही भाषा बोलता।

भाषा व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है–भाषा सामाजिक सम्पत्ति है। भाषा का निर्माण भी समाज के द्वारा होता है। महान साहित्यकार या भाषा-प्रेमी भाषा में कुछ एक शब्दों को जोड़ या उसमें से कुछ एक शब्दों को घटा सकता है इससे स्पष्ट होता है कि कोई साहित्यकार या भाषा-प्रेमी भाषा का निर्माता नहीं हो सकता है। भाषा में होने वाला परिवर्तन भी व्यक्तिकृत न होकर समाजकृत होता है।

भाषा अर्जित सम्पत्ति है–भाषा परम्परा से प्राप्त सम्पत्ति है, किन्तु यह पत्रिक सम्पत्ति की भांति नहीं प्राप्त होती है। मनुष्य को भाषा सीखने के लिए प्रयास करना पड़ता है। सामाजिक व्यवहार भाषा सीखने में मार्ग-दर्शन के रूप में कार्य करता है, किन्तु मनुष्य को प्रयास के साथ उसका अनुकरण करना होता है। मनुष्य अपनी मातृभाषा के समान प्रयोगार्थ अन्य भाषाओं को भी प्रयत्न कर सीख सकता है। इसे स्पष्ट होता है, भाषा अर्जित सम्पत्ति है।

भाषा व्यवहार अनुकरण द्वारा अर्जित की जाती है–शिशु बौद्धिक विकास के साथ अपने आसपास के लोगों की ध्वनियों को अनुकरण के आधार पर उन्ही के समान प्रयोग करने का प्रयत्न करता है। प्रारम्भ में वह या, मा, बा आदि ध्वनियों का अनुकरण करता है फिर सामान्य शब्दों को अपना लेता है। यह अनुकरण तभी सम्भव होता है जब उसे सीखने योग्य व्यवहारिक वातावरण प्राप्त हो। वैसे व्याकरण, कोश आदि से भी भाषा सीखी जा सकती है, किन्तु यह सब व्यवहारिक आधार पर सीखी गई भाषा के बाद ही सम्भव है। यदि किसी शिशु को निर्जन स्थान पर छोड़ दिए जाए तो वह बोल भी नहीं पाएगा, क्योंकि व्यवहार के अभाव में उसे भाषा का ज्ञान नहीं हो पाएगा।

भाषा सामाजिक स्तर पर आधारित होती है–भाषा का सामाजिक स्तर पर भेद हो जाता है। विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त किसी भी भाषा की आपसी भिन्नता देख सकते हैं। सामान्य रूप में सभी हिन्दी भाषा-भाषी हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं, किन्तु विभिन्न क्षेत्रों की हिन्दी में भिन्नता होती है। यह भिन्नता उनके शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक आदि स्तरों के कारण होती है। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र की अपनी शब्दावली होती है, जिसके कारण भिन्नता दिखाई पड़ती है। शिक्षित व्यक्ति जितना सतर्क रहकर भाषा का प्रयोग करता है सामान्य अथवा अशिक्षित व्यक्ति उतनी सतर्कता से भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता है। यह स्तरीय तथ्य किसी भी भाषा के विभिन्न कालों के भाषा-प्रयोग से भी अनुभव कर सकते हैं।

भाषा सर्वव्यापक है–यह सर्वमान्य तथ्य है कि विश्व के समस्त कार्यों का सम्पादन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाषा के ही माध्यम से होता है। समस्त ज्ञान भाषा पर आधारित है। व्यक्ति-व्यक्ति का संबंध या व्यक्ति-समाज का संबंध भाषा के अभाव में असम्भव है। **भर्तृहरि** ने वाक्यपदीय में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है–"न सोस्ति प्रत्ययों लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सवं शब्देन भासते।" वाक्यपदीय 123.24 मनुष्य के मनन-चिन्तन तथा

भावाव्यक्ति का मूल माध्यम भाषा है, यह भी भाषा की सर्वव्यापकता का प्रबल-प्रमाण है।

भाषा सतत प्रवाहमयी है—मनुष्य के साथ भाषा सतत गतिशील अवस्था में विद्यमान रहती है। भाषा की उपमा प्रवाहमान जलस्रोत-नदी से दी जा सकती है, जो पर्व से निकल कर समुद्र तक लगातार बढ़ती रहती है, अपने मार्ग में वह कहीं सूखती नहीं है। समाज के साथ भाषा का आरम्भ हुआ और आज तक गतिशील है। मानव समाज जब तक रहेगा तब तक भाषा का स्थायित्व पूर्ण निश्चित है, किसी व्यक्ति या समाज के द्वारा उसमें परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु उसे समाप्त करने की किसी में शक्ति नहीं होती है।

भाषा सम्प्रेषण मूलतः वाचिक है—भाव सम्प्रेषण सांकेतिक, आंगिक, लिखित और यात्रिक आदि अनेक रूपों में होता है, किन्तु इनकी कुछ सीमाएँ हैं अर्थात् इन माध्यमों के द्वारा पूर्ण भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं। स्पर्श तथा संकेत भाषा तो स्पष्ट रूप में अपूर्ण है, साथ ही लिखित भाषा से भी पूर्ण भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं। वाचिक भाषा में आरोह-अवरोह तथा विभिन्न भाव-भंगिमाओं के कारण पूर्ण सशक्त भावाभिव्यक्ति सम्भव होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण पूर्ण सशक्त भावाभिव्यक्ति सम्भव होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण वाचिक भाषा को सजीव तथा लिखित तथा अन्य भाषाओं को निर्जीव भाषा कह सकते हैं। वाचिक भाषा का प्रयोग भी सर्वाधिक रूप में होता है। अनेक अनपढ़ व्यक्ति भी ऐसी भाषा का सहज, स्वाभाविक तथा आकर्षक प्रयोग करते हैं।

भाषा चिरपरिवर्तनशील है—संसार की सभी वस्तुओं के समान भाषा भी परिवर्तनशील है। किसी भी देश के एक काल की भाषा परवर्ती काल में पूव नहीं रह सकती, उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाता है। यह परिवर्तन अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण होता है। संस्कृत में 'साहस' का अर्थ अनुचित या अनैतिक कार्य के लिए उत्साह दिखाना था, तो हिन्दी में यह शब्द अच्छे कार्य के लिए उत्साह दिखाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भाषा अनुकरण के माध्यम में सीखी जाती है। मूल-भाषा (वाचक-भाषा) का पूर्ण अनुकरण सम्भव नहीं है। इसके कारण हैं- अनुकरण की अपूर्णता, शारीरिक तथा मानसिक रचना की भिन्नता एवं भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की भिन्नता। इस प्रकार भाषा प्रतिफल परिवर्तित होती रहती है।

भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित होता है—भाषा के दो रूप मुख्य हैं—मौखिक तथा लिखित। इनमें भाषा का प्रारम्भिक रूप मौखिक ही होता है।

लिपि का विकास तो भाषा जन्म के पर्याप्त समय बाद में होता है। लिखित भाषा में ध्वनियों का ही अंकन किया जाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि ध्वन्यात्मक भाषा के अभाव में लिपि की कल्पना भी असम्भव है। उच्चरित भाषा के लिए लिपि आवश्यक माध्यम नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज भी ऐसे अनगिनत व्यक्ति मिल जाएँगे जो उच्चरित भाषा का सुन्दर प्रयोग करते हैं, किन्तु उन्हें लिपि का ज्ञान होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित या मौखिक है और उसका परवर्ती विकसित रूप लिखित है।

भाषा का आरम्भ वाक्य से हुआ है–सामान्यत: भाव या विचार पूर्णता के द्योतक होते हैं। पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति सार्थक, स्वतंत्र और पूर्ण अर्थवान इकाई-वाक्य से ही सम्भव है। कभी-कभी तो एक शब्द से भी पूर्ण अर्थ का बोध होता है, यथा- 'जाओ' आदि। वास्तव में ये शब्द न होकर वाक्य के एक विशेष रूप में प्रयुक्त हैं। ऐसे वाक्यों में वाक्यांश छिपा होता है। यहाँ पर वाक्य का उद्देश्य-अंश 'तुम' छिपा हुआ है। श्रोता ऐसे वाक्यों को सुनकर व्याकरणिक ढंग से उसकी पूर्ति कर लेता है। इस प्रकार ये वाक्य बन जाते हैं–'तुम जाओ।' 'तुम आओ' बच्चा एक ध्वनि या वर्ण के माध्यम से भाव प्रकट करता है। बच्चे की ध्वनि भावात्मक दृष्टि से संबंधित होने के कारण एक सीमा में पूर्णवाक्य के प्रतीक में होती है, यथा–'प' से भाव निकलता है-मुझे प्यास लगी है या मुझे दूध दे दो या मुझे पानी दे दो। यहाँ 'खग जाने खग ही की भाषा' का सिद्धान्त अवश्य लागू होता है, जिसके हृदय में ममता और वात्सल्य का भाव होगा या जग सकेगा, वह ही ऐसे वाक्यों की अर्थ-अभिव्यक्ति को ग्रहण कर सकेगा।

भाषा मानकीकरण पर आधारित होती है–भाषा परिवर्तनशील है, यही कारण है कि एक ही भाषा एक युग के पश्चात् दूसरे युग में पहुँचकर पर्याप्त भिन्न हो जाती है। इस प्रकार परिवर्तन के कारण भाषा में विविधता आ जाती है। यदि भाषा-परिवर्तन पर बिल्कुल ही नियंत्रण न रखा जाए तो तीव्रगति के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुछ ही दिनों में भाषा का रूप अबोध्य बन जाएगा। भाषा परिवर्तन पूर्णरूप से रोका तो नहीं जा सकता, किन्तु भाषा में बोधगम्यता बनाए रखने के लिए उसके परिवर्तन-क्रम का स्थिरीकरण आवश्यक होता है। इस प्रकार की स्थिरता से भाषा का मानकीकरण हो जाता है।

भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है–विभिन्न भाषाओं के प्राचीन, मध्ययुगीन तथा वर्तमान रूपों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट

है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप संयोगावस्था में होता है। इसे संश्लेषावस्था भी कहते हैं। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आता है और वियोगावस्था या विश्लेषणावस्था आ जाती है। भाषा की संयोगावस्था में वाक्य के विभिन्न अवयव आपस में मिले हुए लिखे-बोले जाते हैं। परवर्ती अवस्था में यह संयोगवस्था धीरे-धीरे शिथिल होती जाती है, यथा–"रमेशस्य पुत्रः गृहं गच्छति' रमेश का पुत्र घर जाता है। 'रमेशस्य' तथा 'गच्छति' संयोगवस्था में प्रयुक्त हैं।

भाषा का अन्तिम रूप नहीं है–वस्तु बनते-बनते एक अवस्था में पूर्ण हो जाती है, तो उसका अन्तिम रूप निश्चित हो जाता है। भाषा के विषय में यह बात सत्य नहीं है। भाषा चिरपरिवर्तशील है। इसलिए किसी भी भाषा का अन्तिम रूप ढूँढ़ना निरर्थक है और उसका अन्तिम रूप प्राप्त कर पाना असम्भव है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि यह प्रकृति जीवित भाषा के संदर्भ में ही मिलती है।

भाषा का प्रवाह कठिनता से सरलता की ओर होता है–विभिन्न भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भाषा का प्रवाह कठिनता से सरलता की ओर होता है। मनुष्य स्वभावतः अल्प परिश्रम से अधिक कार्य करना चाहता है। इसी आधार पर किया गया प्रयत्न भाषा में सरलता का गुण भर देता है। इस प्रकृति का उदाहरण द्रष्टव्य है–डॉक्टर साहब ' डाक्टर साहब ' डाटर साहब ' डाक साहब ' डाक् साब ' डाक्साब।

भाषा नैसिर्गिक क्रिया है–मातृभाषा सहज रूप में अनुकरण के माध्यम से सीखी जाती है। अन्य भाषाएँ भी बौद्धिक प्रयत्न से सीखी जाती है। दोनों प्रकार की भाषाओं के सीखने में अन्तर यह है कि मातृभाषा तब सीखी जाती है, जब बुद्धि अविकसित होती है, अर्थात् बुद्धि विकास के साथ मातृभाषा सीखी जाती है। इससे ही इस संदर्भ में होने वाले परिश्रम का ज्ञान नहीं होता है। जब हम अन्य भाषा सीखते हैं, तो बुद्धि-विकसित होने के कारण ज्ञान-अनुभव होता है। कोई भी भाषा सीख लेने के बाद उसका प्रयोग बिना किसी कठिनाई के किया जा सकता है। जिस प्रकार शारीरिक चेष्टाएँ स्वाभाविक रूप से होती हैं ठीक उसी प्रकार भाषा-ज्ञान के पश्चात् उसकी भी प्रयोग सहज-स्वाभाविक रूप में होता है।

प्रत्येक भाषा की निश्चित सीमाएँ होती है–प्रत्येक भाषा की अपनी भौगोलिक सीमा होती है अर्थात् एक निश्चित दूरी तक एक भाषा का प्रयोग होता है। भाषा-प्रयोग के विषय में यह कहावत प्रचलित है-"चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी।" एक भाषा से अन्य भाषा की भिन्नता कम या

अधिक हो सकती है, किन्तु भिन्नता होती अवश्य है। एक निश्चित सीमा के पश्चात् दूसरी भाषा की भौगालिक सीमा प्रारम्भ हो जाती है, यथा–असमी भाषा असम सीमा तक प्रयुक्त होती है, उसके बाद बंगला की सीमा शुरू हो जाती है। प्रत्येक भाषा की अपनी ऐतिहासिक सीमा होती है। एक निश्चित समय तक एक भाषा प्रयुक्त होती है, उससे पूर्ववर्ती तथा परवर्ती भाषा उससे भिन्न होती है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी निश्चित-प्रयोग समय से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है।

भाषा का माध्यम

अभिव्यक्ति का माध्यम

अपने भावों को अभिव्यक्त करके दूसरे तक पहुँचाने हेतु भाषा का उद्भव हुआ। भाषा के माध्यम से हम न केवल अपने, भावों, विचारों, इच्छाओं और आकांक्षाओं को दूसरे पर प्रकट करते हैं, अपितु दूसरों द्वारा व्यक्त भावों, विचारों और इच्छाओं को ग्रहण भी करते हैं। इस प्रकार वक्ता और श्रोता के बीच अभिव्यक्ति के माध्यम से मानवीय व्यापार चलते रहते हैं। इसलिए सुनना और सुनाना अथवा जानना और जताना भाषा के मूलभूत कौशल हैं, जो सम्प्रेषण के मूलभूत साधन हैं। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भाषा के अन्यतम कौशल है पढ़ना और लिखना, जो विधिवत् शिक्षा के माध्यम से विकसित होते हैं।

चिन्तन का माध्यम

विद्यार्थी बहुत कुछ सुने, बोले या लिखें-पढ़े, इतना पर्याप्त नहीं है, अपितु यह बहुत आवश्यक है कि वे जो कुछ पढें और सुनें, उसके आधार पर स्वयं चिन्तन-मनन करें। भाषा विचारों का मूल-स्रोत है। भाषा के बिना विचारों का कोई अस्तित्त्व नहीं है और विचारों के बिना भाषा का कोई महत्त्व नहीं। पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि ''बुद्धि के साथ आत्मा वस्तुओं को देखकर बोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करती है। मन शारीरिक शक्ति पर दबाव डालता है, जिससे वायु में प्रेरणा उत्पन्न होती है। वायु फेफड़ों में चलती हुई कोमल ध्वनि को उत्पन्न करती है, फिर बाहर की और जाकर और मुख के ऊपरी भाग से अवरुद्ध होकर वायु मुख में पहुँचती है और विभिन्न ध्वनियों को उत्पन्न करती है। ''अतः वाणी के उत्पन्न के लिए चेतना, बुद्धि, मन और शारीरिक अवयव,

ये चारों अंग आवश्यक हैं। अगर इन चारों में से किसी के पास एक या एकाधिक का अभाव हो तो वह भाषाहीन हो जाता है।

संस्कृति का माध्यम

भाषा और संस्कृति दोनों परम्परा से प्राप्त होती हैं। अतः दोनों के बीच गहरा सम्बन्ध रहा है। जहाँ समाज के क्रिया-कलापों से संस्कृति का निर्माण होता है, वहाँ सास्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए भाषा का ही आधार लिया जाता है। पौराणिक एवं साहसिक कहानियाँ, पर्व-त्यौहार, मेला-महोत्सव, लोक-कथाएँ, ग्रामीण एवं शहरी जीवन-शैली, प्रकृति-पर्यावरण, कवि-कलाकारों की रचनाएँ, महान विभूतियों की कार्यावली, राष्ट्रप्रेम, समन्वय-भावना आदि सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रभाव भी भाषा पर पड़ता है। दरअसल, किसी भी क्षेत्र विशेष के मानव समुदाय को परखने के लिए उसकी भाषा को समझना आवश्यक है। किसी निर्दिष्ट गोष्ठी के ऐतिहासिक उद्‌भव तथा जीवन-शैली की जानकारी प्रात्प करने हेतु उसकी भाषा का अध्ययन जरूरी है। संपृक्त जन-समुदाय के चाल-ढाल, रहन-सहन, वेशभूषा ही नहीं, अपितु उसकी सच्चाई, स्वच्छता, शिष्टाचार, सेवा-भाव, साहस, उदारता, निष्ठा, श्रमशीलता, सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता, कर्त्तव्यपरायणता आदि उसकी भाषा के अध्ययन से स्पष्ट हो जाते हैं।

साहित्य का माध्यम

भाषा साहित्य का आधार है। भाषा के माध्यम से ही साहित्य अभिव्यक्ति पाता है। किसी भी भाषा के बोलनेवालों जन-समुदाय के रहन-सहन, आचार-विचार आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाला उस भाषा का साहित्य होता है। साहित्य के जरिए हमें उस निर्दिष्ट समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का परिचय मिलता है। केवल समकालीन जीवन का ही नहीं, बल्कि साहित्य हमें अपने अतीत से उसे जोड़कर एक विकसनशील मानव-सभ्यता का पूर्ण परिचय देता है। साथ ही साहित्य के अध्ययन से एक उन्नत एवं उदात्त विचार को पनपने का अवसर मिलता है तो उससे हम अपने मानवीय जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। अतः भाषा का साहित्यिक रूप हमारे बौद्धिक एवं भावात्मक विकास में सहायक होता है और साहित्य की यह अनमोल सम्पत्ति भाषा के माध्यम से ही हम तक पहुँच पाती है। उत्तम साहित्य समृद्ध तथा उन्नत भाषा की पहचान है।

भाषा की उत्पत्ति, प्रकार्य एवं विशेषताएँ

भाषा की उत्पत्ति

भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए दो मुख्य आधार है–

प्रत्यक्ष मार्ग

भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का उल्लेख किया है। जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं–

दिव्य उत्पत्ति का सिद्धान्त

भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को मानने वाले भाषा को ईष्वर की देन मानते है। इस प्रकार न तो वे भाषा को परम्परागत मानते है और न मनुष्यों द्वारा अर्जित। इन विद्वानों के अनुसार भाषा की शक्ति मनुष्य अपने जन्म के साथ लाया है और इसे सीखने का उसे प्रयत्न करना नहीं पड़ा है।इस सिद्धान्त को मानने वाले विभिन्न धर्म ग्रन्थों का उदाहरण अपने सिद्धान्त के समर्थन में देते है। हिन्दू धर्म मानने वाले वेदों को, इस्लाम धर्मावलम्बी कुरान शरीफ को, ईसाई बाइबिल को। वे भाषा को मनुष्यों की गति न मानकर ईष्वर निर्मित मानते है और इन ग्रन्थों में प्रयुक्त भाषाओं को संसार की विभिन्न भाषाओं की आदि भाषायें मानते है। इसी प्रकार बौद्व अपने धर्मग्रन्थों की भाषा पाली को मूल भाषा मानते है।

धातु सिद्धान्त

भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी दूसरा प्रमुख सिद्धान्त धातु सिद्धान्त है। सर्वप्रथम प्लेटो ने इस ओर संकेत किया था। परन्तु इसकी स्पष्ट विवेचना करने का श्रेय जर्मन विद्वान प्रो0 हेस को है।इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न वस्तुओं की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति प्रारम्भ में धातुओं से होती थी। इनकी संख्या आरम्भ में बहुत बडी थी परन्तु धीरे धीरे लुप्त होकर कुछ सौ ही धातुऐं रही। प्रो. हेस का कथन है कि इन्ही से भाषा की उत्पत्ति हुई है।

संकेत सिद्धान्त

यह सिद्धान्त अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ क्योकि इसका आधार काल्पनिक है और यह कल्पना भी आधार रहित है। इस सिद्धान्त के अनुसार सर्वप्रथम मनुष्य

बन्दर आदि जानवरों की भाँति अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति भावबोधक ध्वनियों के अनुकरण पर शब्द बनाये होगें। तत्पश्चात् उसने अपने संकेतों के अंगो के द्वारा उन ध्वनियों का अनुकरण किया होगा। इस स्थिति में स्थूल पदार्थों की अभिव्यक्ति के लिए शब्द बने होंगे। संकेत सिद्धान्त भाषा के विकास के लिए इस स्थिति को महत्वपूर्ण मानता है। उदाहरण के लिए पत्ते के गिरने से जो ध्वनि होती है। उसी आधार पर 'पत्ता' शब्द बन गया।

अनुकरण सिद्धान्त

भाषा उत्पत्ति के इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा की उत्पत्ति अनुकरण के आधार पर हुई है। इस सिद्धान्त के मानने वाले विद्वानों का तर्क है कि मनुष्य ने पहले अपने आसपास के जीवों और पदार्थों की ध्वनियों का अनुकरण किया होगा और फिर उसी आधार पर शब्दों का निर्माण किया होगा। उदाहरण के लिए काऊँ-काऊँ ध्वनि निकालने वाले पक्षी का नाम इसी ध्वनि के आधार पर संस्कृत में काक, हिन्दी में कौआ तथा अंगेजी में crow पड़ा। इसी प्रकार बिल्ली की "म्याऊँ" ध्वनि के आधार पर चीनी भाषा में बिल्ली को "मियाऊ" कहा जाने लगा। इस प्रकार यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि भाषा की उत्पत्ति अनुकरण सिद्धान्त पर हुई है।

अनुसरण सिद्धान्त

यह सिद्धान्त भी अनुकरण सिद्धान्त से मिलता है। इस सिद्धान्त के मानने वालों का भी यही तर्क है कि मनुष्यों ने अपने आस-पास की वस्तुओं की ध्वनियों के आधार पर शब्दों का निर्माण किया है। इन दोनों सिद्धान्तों में अन्तर इतना है कि जहाँ अनुकरण सिद्धान्त में चेतन जीवों की अनुकरण की बात थी, वहीं इस सिद्धान्त में निर्जीव वस्तुओं के अनुकरण की बात है। उदाहरण के लिए नदी की कल-कल ध्वनि के आधार पर उसका नाम कल्लोलिनी पड़ गया। इस प्रकार हवा से हिलते दरवाजे की ध्वनि के आधार पर लड़खड़ाना, बड़बड़ाना जैसे शब्द बने। अंग्रेजी के Murmur,Thunder जैसे शब्द भी इसी अनुसरण सिद्धान्त के आधार पर बनें।

श्रम परिहरण सिद्धान्त

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और परिश्रम करना उसकी स्वाभाविक विशेषता है। श्रम करते समय जब थकने लगता है तब उस थकान को दूर करने

के लिए कुछ ध्वनियों का उच्चारण करता है। **न्वायर** (Noire) नामक विद्वान ने इन्ही ध्वनियों को भाषा उत्पत्ति का आधार मान लिया है। उसके अनुसार कार्य करते समय जब मनुष्य थकता है, तब उसकी सांसे तेज हो जाती है। साँसों की इस तीव्र गति के आने जाने के परिणामस्वरूप मनुष्य के वाग्यंत्र की स्वर -तन्त्रियॉ कम्पित होने लगती है और अनेक अनुकूल ध्वनियों निकलने लगती है, फलस्वरूप मनुष्य के श्रम से उत्पन्न थकान बहुत कुछ दूर हो जाती है। इसी प्रकार ठेला खींचने वाले मजदूर हइया ध्वनि का उच्चारण करते है। इस सिद्धान्त के मानने वाले इन्हीं ध्वनियों के आधार पर भाषा की उत्पत्ति मानते हैं।

मनोभावसूचक सिद्धान्त

भाषा उत्पत्ति का यह सिद्धान्त मनुष्य की विभिन्न भावनाओं की सूचक ध्वनियों पर आधारित है। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक मैक्समूलर ने इसे पूह-पूह सिद्धान्त कहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य विचारशील होने के साथ साथ भावनाप्रधान प्राणी भी है। उसके मन में दु:ख, हर्ष, आश्चर्य आदि अनेक भाव उठते है। वह भावों को विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण के द्वारा प्रकट करता है, जैसे प्रसन्न होने पर अहा। दुखी: होने पर आह। आश्चर्य में पडने पर अरे, जैसी ध्वनियों का उच्चारण करता है। इन्ही ध्वनियों के आधार पर यह सिद्धान्त भाषा की उत्पत्ति मानता है।

विकासवाद का समन्वित रूप

भाषा उत्पत्ति की खोज के प्रत्यक्ष मार्ग का यह सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक **स्वीट** ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया था। उन्होंने भाषा की उत्पत्ति के उपर्युक्त सिद्धान्तों के कुछ सिद्धान्तों को लेकर इनके समन्वित रूप से भाषा की उत्पत्ति की है। यह सिद्धान्त तीन है-

अनुकरणात्मक, मनोभावसूचक और प्रतीकात्मक। स्वीट के अनुसार भाषा अपने प्रारम्भिक रूप में इन तीन अवस्थाओं में थी। इस प्रकार भाषा का आरम्भिक शब्द समूह तीन प्रकार का था।

पहले प्रकार के शब्द अनुकरणात्मक थे अर्थात् दूसरे जीव जन्तुओं की ध्वनियों का अनुकरण करके मनुष्य ने वे शब्द बनाये थे, जैसे चीनी मियाऊँ, बिल्ली की मियाऊ ध्वनि के आधार पर बना और बिल्ली नामक जानवर का

नाम ही पड़ गया। इसी प्रकार कौए के बोलने से उत्पन्न ध्वनि के आधार पर हिन्दी में कौआ और संस्कृत में उसे काक कहा जाने लगा।

स्वीट के अनुसार भाषा की प्रारम्भिक अवस्था के दूसरे प्रकार के शब्द मनोभावसूचक थे। मनुष्य अपने अन्तर्मन की भावनाओं को प्रकट करने के लिए इस प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण करता होगा और कालान्तर में उन्ही ध्वनियों ने भावों को सूचित करने वाले शब्दों का रूप ले लिया। आह, अहा, आदि शब्द ऐसे ही विभिन्न भावसूचक है।

तीसरे प्रकार के शब्दों के अन्तर्गत स्वीट ने प्रतीकात्मक शब्दों को रखा। उनके अनुसार भाषा की प्रारम्भिक अवस्था में इस प्रकार के शब्दों की संख्या बहुत अधिक रही होगी। प्रतीकात्मक शब्दों का तात्पर्य ऐसे शब्दों से है, जो मनुष्य के विभिन्न सम्बन्धें से जैसे खाना-पीना, हंसना-बोलना आदि और विभिन्न सर्वनामों, जैसे यह, वह, मैं, तुम आदि के प्रतीक बन गये है। स्वीट का मत था कि इन शब्दों की संख्या प्रारम्भ में बहुत व्यापक रही होगी और इसीलिए उन्होंने प्रथम तथा द्वितीय वर्ग से बचे उन सभी शब्दों को भी इस तीसरे वर्ग में रखा है, जिनका भाषा में प्रयोग होता है।

इस प्रकार स्वीट के अनुसार अनुकरणात्मक, भावबोधक तथा प्रतीकात्मक शब्दों के समन्वय से भाषा की उत्पत्ति हुई है और फिर कालान्तर में प्रयोग प्रवाह में आकर भाषा में बहुत से शब्दों का अर्थ विकसित हो गया और नये शब्द बनते चले गये।

परोक्ष मार्ग

भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए प्रत्यक्ष मार्ग के अतिरिक्त परोक्ष मार्ग भी है। इस मार्ग के अंतर्गत भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने की दिशा उल्टी हो जाती है अर्थात् हम भाषा के वर्तमान रूप का अध्ययन करते हुये अतीत की ओर चलते हैं। इस मार्ग के अंतर्गत अध्ययन की तीन विधियां हैं–

शिशुओं की भाषा

कुछ भाषा वैज्ञानिकों का विचार है कि शिशुओं के द्वारा प्रयुक्त शब्दों के आधार पर हम भाषा की आरंभिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ? शिशुओं की भाषा बाह्य प्रवाहों से उतना प्रभावित नहीं रहती, जितनी की मनुष्यों की भाषा। इसलिए बच्चों की भाषा के अध्ययन से यह पता लगाया जा सकता

है कि भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई होगी, क्योंकि जिस प्रकार बच्चा अनुकरण से भाषा सीखता है उसी प्रकार मनुष्यों ने भाषा सीखी होगी।

असभ्यों की भाषा

कुछ भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा उत्पत्ति की खोज संसार की असभ्य जातियों के द्वारा प्रयुक्त भाषाओं के अध्ययन के द्वारा की जा सकती है। असभ्य जातियां चूंकि संसार के सभ्य क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव से बची रहती हैं, अत: उनकी भाषा भी परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होती। अत: उनकी भाषाओं के अध्ययन और विश्लेषण से भाषा की प्रारंभिक अवस्था का पता चल सकता है।

आधुनिक भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन-

भाषा की उत्पत्ति की खोज का एक आधार भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन भी है। इस सिद्धांत के अनुसार हम एक वर्तमान भाषा को लेकर प्राप्त सामग्री के आधार पर भाषा के इतिहास की खोज करते हैं। इस खोज में हमें अतीत की ओर लौटना पड़ता है। अतीत की यह यात्र तब तक चलती रहती है जब तक हमें उस भाषा विशेष के प्राचीनतम आधार न मिल जायें।

भाषा उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए परोक्ष मार्ग का यह सिद्धांत अधिक उपयुक्त है। उपयुक्तता का यह कारण इस खोज की विश्वसनीयता है, क्योंकि इस खोज के अंतर्गत हम भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। यह अध्ययन कई आधारों पर होता है जैसे–रूप, ध्वनि, अर्थ आदि। अध्ययन के ये आधार वैज्ञानिक हैं, फलस्वरूप किसी भाषा विशेष की ऐतिहासिक खोज अधिक विश्वसनीय हो जाती है। यही कारण है कि भाषा की उत्पत्ति का यह सिद्धांत अधिक उपयुक्त एवं मान्य है।

भाषा के प्रकार्य

भाषा का प्रकार्यात्मक अध्ययन प्राग स्कूल की देन है। अत: प्राग संप्रदाय को प्रकार्यवादी संप्रदाय भी कहा जाता है। प्राग संप्रदाय में इस दिशा में कार्य करने वाले भाषा वैज्ञानिक **रोमन याकोव्यसन** और **मार्तिने कर** हैं। अत: उन्हें प्रकार्यवादी (Functionalist) भी कहा जाता है।

भाषिक प्रकार्य–में भाषा का विश्लेषण सामान्य संरचना के आधार पर नहीं किया जाता। प्रकार्यवादी भाषा के विभिन्न प्रकार्यों के आधार पर भाषा का विश्लेषण करते हैं।

सामान्यत: भाषा के अंतर्गत आने वाली इकाइयों के अपने प्रकार्य (Function) होते हैं, जिनका अध्ययन भाषा विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। किंतु प्राग संप्रदाय ने भाषा के अपने प्रकार्यों को अध्ययन का विषय बनाया। **रोमन याकोव्यसन** के अनुसार भाषा को तीन दृष्टियों से देखना चाहिये।

वक्ता,
श्रोता, और
संदर्भ।

वक्ता की दृष्टि से भाषा अभिव्यक्ति प्रकार्य करती है, श्रोता की दृष्टि से प्रभाविक प्रकार्य करती है, और संदर्भ की दृष्टि से सांप्रेषणिक प्रकार्य करती है। इसके अतिरिक्त संपर्क, कूट, और संदेश ये तीन संदर्भ भी भाषा बनाती है।अत: याकोव्यसन ने छ: प्रकार्य माने हैं:

अभिव्यक्ति प्रकार्य
इच्छापरक ,
अभिधापरक,
संपर्क द्योतक,
आधिभाषिकए और
काव्यात्मक।

प्रकार्यवादियों के अनुसार भाषा की संरचना प्रकार्य के अनुसार बदल जाती है। इस प्रकार एक ही भाषा प्रकार्यानुसार भिन्न -भिन्न रूपों में प्रस्तुत होती है। भाषा के इन समस्त रूपों को चार भागों में सम्मिलित किया जाता है। याकोव्यसन ने वक्ता, श्रोता, और संदर्भ तीन तत्त्वों के आधार पर प्रमुख तीन प्रकार बताये हैं। उपर्युक्त छ: रूप भाषा के अभिव्यक्तिक संदर्भ से जुड़े हैं। अत: हम इसे निम्न रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं–

सांप्रषणिक प्रकार्य–जब वक्ता द्वारा श्रोता को कोई सूचना संप्रषित की जाती है और सीधे विचार विनिमय होता है तो भाषा संरचना का स्तर अलग होता है, जिसे हम सांप्रेषणिक प्रकार्य कहते हैं। सामान्य वार्तालाप में इसी प्रकार्य का प्रयोग होता है।

अभिव्यक्ति प्रकार्य-भाषा के द्वारा वक्ता अपने आपको अभिव्यक्त करता है, अत: हर व्यक्ति की भाषा कुछ न कुछ बदल जाती है, जिसे हम उसकी शैली कह सकते हैं, भाषा के सभी स्तरों पर यह परिवर्तन दिखाई पड़ता है, यहां तक कि साहित्य-सृजन में भी कथा भाषा और काव्य-भाषा का अंतर साम्य देखा जा सकता है, इस प्रकार भाषा की संरचना एक स्तर पर नहीं होती। अभिव्यक्तिक प्रकार्यानुसार भाषा संरचना में परिवर्तन आता है।

प्रभाविक प्रकार्य–भाषा का प्रयोग जब इस रूप में होता है, जिसमें संप्रेषण और आत्माभिव्यक्ति की अपेक्षा श्रोता को प्रभावित करना ही मुख्य उद्देश्य हो तो उसे भाषा का प्रभाविक प्रकार्य कहा जाता है, भाषणों की भाषा मुख्यत: प्रभाविक होती है, जिसका उद्देश्य श्रोता को प्रभावित करना है, अत: भाषणों की संरचना और उसका अनुमान अलग होता है। इसकी संरचना शब्दावली भी भिन्न होती है।

समष्टिक प्रकार्य- भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा के उपर्युक्त तीन प्रकार अलग अलग अवसरों पर प्रयुक्त होते हैं, इस प्रकार्यों से समन्वित भाषा का अस्तित्त्व अलग होता है, जिससें सामाजिक प्रकार्य कहा जा सकता है।समन्वित भाषा संरचना का अपना प्रकार्य होता है, यह उसी प्रकार है जैसे अलग-अलग वस्तुएं अपना स्वतंत्र महत्व रखती हैं, लेकिन उन्हे एक साथ प्रस्तुत किया जाये तो किसी अन्य वस्तु का बोध कराती हैं, उदाहरण के लिए इडली, डोसा स्वयं में अलग खाद्य हैं पर समष्टि रूप में दक्षिण भारतीय व्यंजनों के रूप में माने जायेगें।

इसी प्रकार अलग-अलग प्रकार्य के रूप में प्रस्तुत होने पर भी भाषा की अपनी निजता होती है। सामान्य क्रम में रेडियो या आकाशवाणी कुछ कहे लेकिन समष्टिक रूप में हिंदी का प्रतिनिधित्व करने वाला शब्द आकाशवाणी है। इस तरह भाषा का जो निजी अस्तित्त्व है और अभिव्यक्ति से पृथक है, उसे समष्टिक प्रकार्य कहा जा सकता है।

इसी प्रकार्यात्मक अध्ययन के आधार पर प्राग स्कूल में भाषा के मानक रूप का अध्ययन हुआ। रोमन याकोव्यसन ने भाषा के प्रकार्यों का निर्धारण करके भाषा के अभिलक्षणों और ध्वनियों का अध्ययन किया है, जो उनकी महत्वपूर्ण देन है।

भाषा की विशेषताएं

जब हम भाषा का संदर्भ मानवीय भाषा से लेते हैं, तो यह जानना आवश्यक हो जाता है कि मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषताएं या अभिलक्षण कौन-कौन से हैं। ये अभिलक्षण ही मानवीय भाषा को अन्य भाषिक संदर्भों से पृथक करते हैं। **हॉकिट** ने भाषा के सात अभिलक्षणों का वर्णन किया है। अन्य विद्वानों ने भी अभिलक्षणों का उल्लेख करते हुए आठ या नौ तक संख्या मानी है। मूल रूप से 9 अभिलक्षणों की चर्चा की जाती है–

यादृच्छिकता- 'यादृच्छिकता' का अर्थ है -माना हुआ। यहां मानने का अर्थ व्यक्ति द्वारा नहीं वरन् एक विशेष समूह द्वारा मानना है। एक विशेष समुदाय किसी भाव या वस्तु के लिए जो शब्द बना लेता है, उसका उस भाव से कोई संबंध नहीं होता। यह समाज की इच्छानुसार माना हुआ संबंध है, इसलिए उसी वस्तु के लिए भाषा में दूसरा शब्द प्रयुक्त होता है, भाषा में यह यादृच्छिकता शब्द और व्याकरण दोनों रूपों में मिलती है। अत: यादृच्छिकता भाषा का महत्वपूर्ण अभिलक्षण है।

सृजनात्मकता- मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषता उसकी सृजनात्मकता है। अन्य जीवों में बोलने की प्रक्रिया में परिवर्तन नहीं होता पर मनुष्य शब्दों और वाक्य-विन्यास की सीमित प्रक्रिया से नित्य नए नए प्रयोग करता रहता है। सीमित शब्दों को ही भिन्न-भिन्न ढंग से प्रयुक्त कर वह अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। यह भाषा की सृजनात्मकता के कारण ही संभव हो सका है। सृजनात्मकता को ही उत्पादकता भी कहा जाता है।

अनुकरणग्राहता- मानवेतर प्राणियों की भाषा जन्मजात होती है, तथा वे उसमें अभिवृद्धि या परिवर्तन नहीं कर सकतें किंतु मानवीय -भाषा जन्मजात नहीं होती। मनुष्य भाषा को समाज में अनुकरण से धीरे-धीरे सीखता है। अनुकरण ग्राह्य होने के कारण ही मनुष्य एक से अधिक भाषाओं को भी सीख लेता है। यदि भाषा अनुकरण ग्राह्य न होती तो मनुष्य जन्मजात भाषा तक ही सीमित रहता।

परिवर्तनशीलता- मानव भाषा परिवर्तनशील होती है। वही शब्द दूसरे युग तक आते-आते नया रूप ले लेता है, पुरानी भाषा में इतने परिवर्तन हो जाते हैं। कि नई भाषा का उदय हो जाता है, संस्कृत से हिन्दी तक की विकास यात्रा भाषा की परिवर्तनशीलता का उदाहरण है।

विविक्तता- मानव भाषा विच्छेद है। उसकी संरचना कई घटकों से होती है। ध्वनि से शब्द और शब्द से वाक्य विच्छेद घटक होते है। इस प्रकार

अनेक इकाइयों का योग होने के कारण मानव भाषा को विविक्त कहा जाता है।

द्वैतता– भाषा में किसी वाक्य में दो स्तर होते हैं। प्रथम स्तर पर सार्थक इकाई होती है। और दूसरे स्तर पर निरर्थक। कोई भी वाक्य इन दो स्तरों के योग से बनता है, अतः इसे द्वैतता कहा जाता है। भाषा में प्रयुक्त सार्थक इकाइयों को रूपिम और निरर्थक इकाइयों को स्वनिम कहा जाता है। स्वनिम निरर्थक इकाइयां होने पर भी सार्थक इकाइयों का निर्माण करती हैं। इसके साथ ही ये निरर्थक इकाइयां अर्थ भेदक भी होती हैं, जैसे क़अ़रअ में चार स्वनिम है, जो निरर्थक इकाइयां हैं पर कर रूपिम सार्थक इकाई हैं। इसे ही ख़अ़रअ कर दे तो खर रूपिम बनेगा किंतु 'कर' और 'खर' में अर्थ भेदक इकाई रूपिम नहीं स्वनिम क और ख है। इस प्रकार रूपिम अगर अर्थद्योतक इकाई है तो स्वनिम अर्थ भेदक। इन दो स्तरों से भाषा की रचना होने के कारण भाषा को द्वैत कहा गया है।

भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन– भाषा में दो पक्ष होते हैं–वक्ता और श्रोता। वार्ता के समय दोनों पक्ष अपनी भूमिका को परिवर्तित करते रहते हैं। वक्ता श्रोता और श्रोता वक्ता होते रहते हैं। इसे ही भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन कहते है।

अंतरणता– मानव भाषा भविष्य एवं अतीत की सूचना भी दे सकती है। तथा दूरस्थ देश की भी। इस प्रकार अंतरण की विशेषता केवल मानव भाषा में है।

असहजवृत्तिकता– मानवेतर भाषा प्राणी की सहजवृत्ति आहार निद्रा भय, मैथुन से ही संबंद्ध होती है और इसके लिए वे कुछ ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। किंतु मानव भाषा सहजवृत्ति नहीं होती है। वह सहजात वृत्तियों से संबंधित नहीं होती। भाषा के ये अभिलक्षण मानवीय भाषा को अन्य ध्वनियों या मानवेत्तर प्राणियों से अलग करने में समर्थ हैं।

भाषा के विविध रूप

भाषा के स्वरूप पर विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भाषा के अनेक प्रकार होते है। मुख्यतः इतिहास, क्षेत्र, प्रयोग, निर्माण, मानकता और मिश्रण के आधारों पर भाषा के बहुत से रूप होते हैं। उदाहरण के लिए इतिहास के आधार पर अनेक भाषाओं की जन्मदात्री मूलभाषा जैसे संस्कृत, ग्रीक आदि

को प्राचीन भाषा पाली, प्राकृत को मध्यकालीन भाषा तथा हिंदी, मराठी, बंगला को आधुनिक भाषा से इंगित किया जाता है। क्षेत्र के आधार पर भाषा का सबसे छोटा रूप बोली होती है। इनमें से प्रमुख भाषा रूप निम्नलिखित हैं–

मूलभाषा

'मूलभाषा' भाषा का वह प्राथमिक स्वरूप है, जो स्वयं किसी से प्रसूत नहीं होता अपितु वह दूसरों को ही प्रसूत करता है। भाषा की उत्पत्ति अत्यंत प्राचीन काल में उन स्थानों पर हुई होगी, जहां अनेक लोग एक साथ रहते रहे होंगे। ऐसे स्थानो में से किसी एक स्थान की भाषा की निर्मिति की पहली प्रक्रिया मूलभाषा कहलाती है, जिसने कालांतर में ऐतिहासिक एवं भौगोलिक कारणों से अनेक भाषाओं, बोलियों तथा उपबोलियों को जन्म दिया होगा।

क्षेत्रीय बोलिया

जब हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं तो हमें भाषा का परिवर्तन समझ में आने लगता है। यह परिवर्तन जैसे-जैसे दूरियां बढ़ती हैं, स्पष्ट समझ में आने लगता है। भाषा के ऐसे सीमित एवं क्षेत्र विशेष के रूप को बोली कहा जाता है, जो ध्वनि, रूप, वाक्य अर्थ, शब्द तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से भिन्न हो सकती है, इस प्रकार जब एक भाषा के अंतर्गत कई अलग-अलग रूप विकसित हो जाते हैं तो उन्हें बोली कहते हैं। ये बोलियां बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, मालवी आदि हैं। उदाहरण के लिए -खड़ी बोली एवं बुंदेली बोली के कुछ शब्दों को देखते हैं।

ध्वनि के स्तर पर भिन्नता

खड़ी बोली–बुंदेली बोली
लड़का–लरका
मछली–मछरिया
लेना–लेव

शब्दो के स्तर पर भिन्नता

खड़ी बोली–बुंदेली बोली
पेड़–रूख

मांस–गोश
सिर–मूड
पैर–गोड़ो

व्यक्ति बोली

भौगोलिक दृष्टि तथा सामाजिक इकाई के आधार पर भाषा व्यवहार का लघुतम रूप व्यक्ति बोली है। किसी भाषा समाज में आने वाला व्यक्ति अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण भाषिक विभेद को प्रदर्शित करता है। यद्यपि यह विभेद ऐसा नहीं होता कि अपने समाज के अन्य व्यक्तियों के द्वारा समझा न जा सके। मनुष्य में भाषा सीखने की प्राकृतिक क्षमता है, किंतु सीखने का कार्य, किसी भाषा समाज में ही हो सकता है। जिस समाज में वह जन्म लेता है, जहां पलता है, वहां की भाषा वह सीख लेता है। वह केवल छोटे से समूह में प्रचलित बोली की ही नहीं, बल्कि व्यापक धरातल पर प्रयुक्त मानक भाषा तथा आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओं का प्रयोग करता है।

अपभाषा या विकृत भाषा

अंग्रेजी के स्लैग का हिंदी रूपांतरण है। किसी भाषा समाज में एक निश्चित शिष्टाचार से च्युत भाषा संरचना को शिष्ट भाषा कहते हैं। इसका प्रचलन विशेष श्रेणी या सम वर्गों में होता है। अपभाषा में अशुद्धता तथा अश्लीलता का समावेश हो जाता है। इसके प्रयोक्ता प्रायः शब्द निर्माण या वाक्य निर्माण में व्याकरण के नियमों को ओझल कर देते हैं। अपभाषा में सामान्य संकेतिक अर्थ का अपकर्ष दिखाई देता है। वैसे अपभाषा के कुछ प्रयोग अपनी सशक्त व्यंजना के कारण शिष्ट भाषा में स्वीकृत हो जाते हैं। मक्खन लगाना, चमचागिरी, आदि इसी तरह के प्रयोग हैं। गाली–गलौच को भी अपभाषा का उदाहरण माना जा सकता है। 1960–70 के बीच कविता के कुछ ऐसे आंदोलन चले, जिनमें अपभाषा का खुलकर व्यवहार किया गया। हिंदी के कुछ उपन्यासों तथा कहानियों में भी अपभाषा का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

व्यावसायिक भाषा

व्यावसायिक वर्गों के आधार पर भाषा की अनेक श्रेणियां बन जाती है। किसान, बढ़ई, डॉक्टर, वकील, पंडित, मौलवी, दुकानदार आदि की भाषा में

व्यावसायिक शब्दावलियों के समावेश के कारण अंतर हो जाता है। इस व्यावसायिक शव्दावली की स्थिति बहुत कुछ पारिभाषिक होती है। कुछ व्यवसायों में बहुप्रचलित शब्दावली के स्थान पर विशिष्ट अर्थसूचक नयी शब्दावली गढ़ ली जाती है। इसकी स्थिति बहुत कुछ सांकेतिक भाषा जैसी होती है। कभी-कभी यह अपभाषा की कोटि में पहुंच जाती है। कहारों की भाषा (वधू की डोली ढोते समय) इसी तरह की होती है। बैल के व्यावसायी आपस में एक भाषा बोलते हैं, जिसे ग्राहक बिल्कुल नहीं समझ पाता है। मौलवी साहव जब हिंदी बोलते हैं तो उनका झुकाव प्रायः अरबी-फारसी, निष्ठ भाषा की ओर रहता है और पंडित जी की हिंदी-संस्कृत की ओर झुकी रहती है।

कूट भाषा

इसे अंग्रेजी में कोड लेंग्वेज कहते हैं। कूट भाषा का प्रयोग पांडित्य प्रदर्शन, मनोरंजन, तथा गोपन के लिए होता है, सेना में कूट भाषा का प्रयोग गोपन के लिए होता है, इसमें शब्दों को सर्वप्रचलित अर्थ के स्थान पर नये अर्थो से जोड़कर प्रयुक्त किया जाता है इनका अर्थ वही व्यक्ति समझ पाता है जिसे पहले से बता दिया होता है, सूर ने साहित्यिक चमत्कार दिखाने के लिए कूट के पदों की रचना की है, जिनका अर्थ साहित्य-शास्त्रियों द्वारा ही प्रस्फुटित किया जा सकता है।

कृत्रिम भाषा

यह निर्मित भाषा है संसार में अनेक भाषाएं हैं। एक भाषा-भाषी दूसरे भाषा-भाषी को बिना पूर्व शिक्षा के समझ नहीं पाता। भाषा भेद के कारण जीवन के विविध क्षेत्र जैसे—व्यवसाय, राजनीति, भ्रमण, शिक्षा आदि में बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है। इस समस्या के निवारण के लिए 'ऐसपेरन्तो' नामक कृत्रिम भाषा बनाई गई। यूरोप में कुछ लोग इस भाषा को सीखते भी हैं। इस भाषा के निर्माण में जो उद्देश्य था वह निश्चित ही महत्वपूर्ण था। किंतु जनाधार के अभाव में यह भाषा उस उद्देश्य को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकी। कृत्रिम भाषा में सामान्य बातचीत ही हो सकती, गंभीर चिंतन या साहित्य लेखन नहीं हो सकता। भाषा एक तरह से मानव के संस्कार का अभिन्न हिस्सा है, इसलिए उसकी सृजनशीलता भी मातृभाषा में ही घटित होती है। अपनी मातृभाषा के उच्चारणात्मक

संस्कार के साथ यदि ऐसपेरन्तो का उच्चारण करेगा तो उसमें भी परिवर्तन ला देगा। इस तरह पुनः भाषा की एकता खंडित हो जायेगी।

मिश्रित भाषा

दो भाषाओं के मिश्रण से इसका निर्माण होता है। इससे सामान्य कार्य –व्यवसाय आदि किये जाते हैं। चीन में अंग्रेजी शब्दों को चीनी उच्चारण तथा व्याकरण के अनुसार ढालकर पीजिन का निर्माण किया गया है। दक्षिण अफ्रीका में डच, अंग्रेज़ी बांटू से मिश्रित भाषा का निर्माण हुआ है। कभी–कभी दो भाषाओं का मिश्रण इतना सबल तथा आवश्यक हो जाता है कि एक समुदाय अपनी मातृभाषा को छोड़ देता है। जमेका, त्रिनीनाद, मारीशस, विभिन्न समुदायों के मिलन से संकर भाषाऐं बन गयी हैं। इन भाषाओं को अंग्रेजी में क्रियोल (संकर) कहा जाता है। इंडोनेशिया की शिशूल विश्व की सर्वाधिक संकर भाषा मानी गयी। उर्दू को भी संकर भाषा कहा जा सकता है।

मानक भाषा

भाषा का आदर्श रूप उसे माना जाता है, जिसमें एक बड़े समुदाय के लोग विचार विनिमय करते हैं। अर्थात् इस भाषा का प्रयोग शिक्षा, शासन और साहित्य रचना के लिए होता है। अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी और हिन्दी इसी प्रकार की भाशाएं है। यह व्याकरणबद्ध होती है।

2

मानक भाषा

किसी भी राष्ट्र अथवा देश में एक ऐसी भाषा की आवश्यकता रहती है, जो विभिन्न व्यवहार क्षेत्रों में संप्रेषण साधन की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सके। इसके लिए यह भी जरूरी है कि वह भाषा क्षेत्रीय तथा सामाजिक विविधिताओं से ऊपर उठकर सर्वग्राह्य और सर्वमान्य हो। वैसे तो किसी भी समाज की संप्रेषण व्यवस्था सर्वमान्य और सर्वग्राह्य भाषा को अपनी सामाजिक प्रक्रिया के भीतर ढूंढ लेती है किंतु उसके सम्यक विकास और प्रसार के लिये उसके नियोजन की भी आवश्यकता पड़ती है भाषा नियोजन का यह कार्य दो दिशाओं में प्रवृत्त होता है-एक, मानकीकरण और दूसरा, आधुनिकीकरण। इन दोनों के लक्ष्य और साध्य तो एक होते है किंतु इनके उपकरण व साधन अलग-अलग होते हैं मानकीकरण रूपात्मक एकीकरण की प्रक्रिया है, जिसमें व्याकरणिक रूपों को अनेकता में एकता के आधार पर मानक बनाया जाता है और आधुनिकीकरण प्रकार्यात्मक विविधता की प्रक्रिया है जिसमें भाषिक रूपों को विभिन्न संदर्भो में लाने का प्रयास रहता है। इससे भाषा को आदर्श रूप प्राप्त होता है और वह संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होत है। भाषा के इसी आदर्श रूप को मानक भाषा कहा जाता है।

मानक भाषा पर विचार करने से पहले मानक भाषा और मानकीकृत भाषा के अंतर विचार करना समीचीन होगा, क्योंकि आजकल विद्वान् इनमें भेद करते पाए जाते हैं। वास्तव में मानक भाषा अपने प्रयोक्ताओं की उस प्रतीकात्मक

भावना को व्यक्त करती है, जिसका संबंध एकीकरण, विशिष्टीकरण और प्रतिष्ठा के साथ होता है। यह भाषा अपने भाषा समुदाय को एकीकृत करती है, उसके प्रयोक्ताओं को अभिव्यक्ति प्रदान करती है और उन्हें पद प्रतिष्ठा से युक्त करती है। हिन्दी और ब्रज का उदाहरण लें तो हमें हिन्दी में उपर्युक्त तीनों बातें मिल जाएंगी। जहां तक मानकीकृत भाषा का संबंध है, वह भाषा रूपों के विकल्पों के भीतर से किसी एक के चयन तथा उसको मानक रूप में प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया है। इसमें भाषा का एक प्रकार से नियमन (कोडीकरण) होता है, और इसके व्याकरणिक रूप परिष्कृत एवं परिनिष्ठित होते हैं। चूंकि भाषा में प्रयोग के कई विकल्प होते हैं, जिसमे से मानकीकृत भाषा किन्हीं एक दो मानक रूप में स्वीकार कर लेती है और शेष रूपों को अमानक या मानकच्युत मानकर पीछे छोड़ देती है, इसीलिए यह भाषा रूप अपने प्रयोग क्षेत्र में (विशेषकर शिक्षा के संदर्भ में) शुद्ध माना जाता है और शेष रूप प्रायः अशुद्ध घोषित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसका मापदंड मानकीकरण के अनुपात और लेखन में उसके उपयोग के आधार पर किया जाता है, इसलिए मानकीकृत भाषा मानक भाषा का एक रूप ही है, जिसमें संरचनात्मक एकरूपता के साथ-साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिलती है। वास्तव में भाषा की मानकता मुख्य रूप से सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ी है न कि संरचनात्क एकरूपता से, क्योंकि इस मानक प्रयोग का आधार शिक्षित व्यक्तियों का शिष्ट भाषा प्रयोग होता है।

मानक भाषा का स्वरूप और प्रकृति

मानक भाषा संरचनात्मक दृष्टि से अपनी भाषा के विभिन्न रूपों में से किसी एक रूप या एक बोली पर आधारित होती है। इसके मानक बनते ही इसकी बोलीगत विशेषताएं लुप्त होने लगती हैं और वह क्षेत्रीय से अक्षेत्रीय हो जाती है। इसका कोई निर्धारित सीमा क्षेत्र नहीं होता और न ही यह किसी भाषाभाषी समुदाय की मातृभाषा कहलाती है। हमारे सामने हिन्दी का मानक रूप है। यह मानक रूप हिन्दी की खड़ी बोली से विकसित हुआ है। इस रूप में खड़ी बोली की बोलीगत विशेषताएं लुप्त हो गई हैं और यह रूप खड़ी बोली से उतना ही अलग जान पड़ता है, जितना भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि अन्य बोलियों से। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली, भोजपुरी ब्रज, अवधी आदि के अपने भाषाभाषी समुदाय हैं इनका अपना सीमा क्षेत्र है और इनके बोलने वाले इन्हें अपनी मातृ भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं किंतु हिन्दी के मानक रूप के संबंध में इस

प्रकार की संकल्पनाएं कुछ अलग सी हैं। हिन्दी क्षेत्र में विभिन्न बोलियों के बोलने वाले उसे उसी प्रकार की मातृभाषा अवश्य मानते हैं। अर्थात् वे उसे 'सहमातृभाषा या प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार करते है।

संरचना की दृष्टि से मानक भाषा में आंतरिक संशक्ति होती है और वह प्रयोग की दृष्टि से काफी व्यापक होती है। इन दोनों अभिलक्षणाों से मानक भाषा का स्वरूप स्पष्ट होने लगता है। वास्तव में मानक भाषा का प्रयोग क्षेत्र जितना विस्तृत होता जाएगा, उसकी संरचना में अधिकतम समरूपता बनी रहेगी। इसीलिए व्यापक क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसकी आंतरिक संशक्ति की अपेक्षा रहती है। शब्दोच्चारण, शब्दरूपों और वाक्य विन्यास को स्थिरता देने का प्रयास रहता है। इसमें एक शब्द का एक ही उच्चारण और एक ही वर्तनी की अपेक्षा रहती है। इसका एक ही व्याकरणिक ढांचा होता है। इस आंतरिक संशक्ति या भाषिक एकरूपता से संप्रेषणीयता में व्याघात उत्पन्न नहीं होता और इसीलिए वह सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करती है। किंतु यह एकरूपता तभी संभव होती है, जब भाषा के रूप में स्थिरिता पाई जाए और उसमें भाषायी परिवर्तन कम से कम हों। यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो जीवंत भाषा का अपरिवर्तनशील रहना संभव नहीं है। वास्तव में संरचनात्मक एकरूपता और प्रयोगात्मक बहुरूपता एक दूसरे की विपरीत स्थितियां हैं और वे दोनों एक दूसरे के लिए बाधा उत्पन्न करती हैं। संरचनात्मक एकरूपता या स्थिरता भाषा के व्यवहार क्षेत्र को सीमित करने का प्रयास करती है और विस्तृत व्यवहार क्षेत्र संरचना की एकरूपता को खंडित करने में अग्रसर रहता है। हमारे सामने उदाहरण है संस्कृत का। संस्कृत की संरचनात्मक एकरूपता को लाने से उसकी जीवंतता समाप्त हो गई और उसका व्यवहार क्षेत्र सीमित हो गया। इधर हिन्दी का व्यवहार क्षेत्र व्यापक हो जाने से इसके कई रूप उभरने लगे हैं। कहीं बंबईया हिन्दी के दर्शन होते हैं, तो कही कलकतिया हिन्दी के। कहीं पंजाबी से प्रभावित हिन्दी दिखाई देती है तो कहीं भोजपुरी से। इसी दृष्टि में ये दोनों स्थितियां भाषा को मानक रूप देने में बाधा उत्पन्न करती हैं अतः मानकीकरण की प्रक्रिया में संरचनात्मक एकरूपता और प्रयोगात्मक बहुरूपता में संतुलन बानए रखना महत्वपूर्ण है। यह तभी संभव है यदि मानक भाषा सत् लचीलेपन और तार्किकता के गुण से युक्त है। इससे वह सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के अनुरूप ढलती चलती है। इस लचीलेपन का आधार बोलचाल की भाषा है बोलचाल की भाषा पर आधारित मानक भाषा क्षेत्रीय बोली से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाती। इसके

अतिरिक्त वह औद्योगिक, बहुधर्मी, बहुभाषिक समाज के भीतर विषय एवं शैली की दृष्टि से आदान प्रदान करती है, जिससे उसकी स्थिरता का टिक पाना संभव नहीं है। इसलिए इसकी स्थापना में लचीलेपन की अपेक्षा रहती है ताकि वह 'परस्पर अनुवादकता' की स्थिति में आ जाए।

उपर्युक्त चर्चा से हम देखते हैं कि भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया में चार बातें मुख्य रूप से रहती हैं -

1. चयन
2. संसक्ति
3. प्रयोग और
4. स्वीकृति।

विभिन्न भाषारूपों और बोलियों में किसी एक का चयन किया जाता है। इस चयन के कई कारण होते हैं - शासन का बल, धर्म का आश्रय, साहित्य की श्रेष्ठता आदि। इस चयन में किसी बात का आग्रह या आधार नहीं होता कि किस-किस भाषारूप का चयन किया जाए। फिनलैंड में मानक भाषा का आधार वहां की बोलचाल की बोली को अपनाया गया तो इजरायल में क्लासिकल भाषा हिब्रू को। हिन्दी क्षेत्र में मध्यकाल में ब्रज, अवधी धर्म और साहित्य की भाषा थी किंतु आधुनिक काल में खड़ी बोली का चयन किया गया। इसी खड़ी बोली में साहित्य रचना होने से उसके रूप स्थिर होने लगे और वह मानक भाषा के रूप में प्रस्फुटित होकर अपने क्षेत्र से आगे बढ़कर अक्षेत्रीय होने लगी। बाद में इसे शासन का बल मिला और आज की मानक भाषा जनसाधारण की भाषा बन गई, इस चयन में अन्य बोलियों को अपना बलिदान करना पड़ता है और वे बेचारी अपने क्षेत्र तक सीमित रह जाती हैं। किंतु मानक भाषा को उनका सहयोग लेकर चलना पड़ता है, ताकि उसका शब्द भंडार समृद्ध हो जाए और वह अक्षेत्रीय होकर राष्ट्रभाषा के पद तक पहुंच पाने की स्थिति में आ जाए।

संरचनात्मक संसक्ति में लेखन का महत्वपूर्ण कार्य होता है। यह न केवल भाषा में स्थायित्व लाता है वरन् व्याकरणिक रूपों में एकरूपता बनाए रखने में सहायता भी करता है। विभिन्न प्रदेशों एवं क्षेत्रों में बोलियों के प्रभाव से भाषा का उच्चरित रूप समान नहीं हो पाता, अतः लिखित रूप उस विविधिता को मिटाने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त लिखित रूप व्याकरण से अनुशासित होने के कारण भाषा की संरचना में एकरूपता बनाए रखता है। इंग्लैंड, अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, भारत आदि देशों में अंग्रेजी के उच्चारण और व्याकरणिक रूपों में

भिन्नता मिल सकती है किंतु उसके लिखित रूप में एकरूपता काफी हद तक दिखाई देती है।

जब भाषा का मानक रूप विकास की स्थिति में आ जाता है तो उसके प्रयोग का व्यवहार क्षेत्र में विस्तार होने लगता है। वह विज्ञान, साहित्य, शिक्षा, शासन आदि विभिन्न प्रयोजनों में प्रयुक्त होने लगता है। वह लोक साहित्य के ऊपर उठकर वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य का भी उसमें सृजन होने लगता है और यहां तक कि मौलिक साहित्य का भी उसमें सृजन होने लगता है। अन्य भाषाओं के साहित्य का अनुवाद होना भी शुरू हो जाता है। हिन्दी का मानक रूप इस समय इसी स्थिति में आ गया है।

मानक भाषा के विभिन्न प्रयोजनों एवं व्यवहार क्षेत्रों में प्रयुक्त होने से समाज उस रूप को स्वीकार कर लेता है। इस भाषा की विभिन्न बोलियां बोलने वाले अन्य भाषाभाषियों के साथ इसी रूप का प्रयोग करते हैं और आपस में इस रूप का प्रयोग करते हुए प्रतिष्ठा का अनुभव करते हैं। साहित्य, कार्यालय, विधि, विज्ञान, चिकित्सा, पत्रकारिता, वाणिज्य आदि विभिन्न प्रयोजनों में समाज उसका प्रयोग करने लगता है, इससे इसकी अभिव्यंजना शक्ति में भी वृद्धि होती है। इसके स्वीकार हो जाने से इसे शिक्षा के माध्यम रूप में अपना लिया जाता है।

मानक भाषा में मानकीकरण की प्रक्रिया केवल कार्य नहीं करती वरन् उसमें ऐतिहासिकता, जीवंतता और स्वायत्ता के लक्षण भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ऐतिहासिकता से अभिप्राय है कि यह भाषा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपरा से अर्जित संस्कार के रूप में आती है। इसके निर्माण और विकास में कोई व्यक्ति विशेष नहीं होता वरन् पीढ़ी दर पीढ़ी यह सहज और स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होती आती है। इसमें इसकी अपनी लिखित परंपरा, अपना जातीय इतिहास और अर्जित संस्कर होता है। भाषा तभी जीवंत होती है जब उसके प्रयोग करने वाले हों और अपनी भाषा के रूप में ग्रहण करते हों। जिस भाषा का अपना समाज नहीं होता और समाज उसे अपनी भाषा स्वीकार नहीं करता तो वह भाषा जीवित नहीं रह पाती। उसका समाज ही उसे जीवित रख सकता है और उसके जीवित रहने में उसका विकास सहज रूप से होता है। इसलिए मानक भाषा में जीवंतता का होना आवश्यक है। यदि भाषा में मानकता, ऐतिहासिकता और जीवंतता होती है तो वह अपने आप विशिष्ट और स्वतंत्र हो जाती है। वह किसी अन्य भाषा व्यवस्था पर आधारित नहीं रहती वरन् अपनी स्वायत्त सत्ता बनाये रखती है। हम देखते हैं कि हिन्दी का मानक रूप

मूलत: खड़ी बोली पर आधारित है किंतु वह अपनी भाषिक व्यवस्था और प्रकार्य के संदर्भ में अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व बनाए हुए है। वास्तव में बोली में ऐतिहासिकता और जीवंतता तो होती है किंतु मानकता और स्वायत्ता नहीं होती और क्लासिकल भाषा में मानकता, ऐतिहासिकता और स्वायत्ता होती है किंतु जीवंतता नहीं होती है। बोलचाल की भाषा में ऐतिहासिकता, जीवंतता और स्वायत्ता होती है और जब उसका मानकीकरण हो जाता है तो वह मानक भाषा के पद पर अभिषिक्त हो जाती है।

मानक हिन्दी

भारत की सांस्कृतिक परंपरा और सभ्यता का केंद्र मध्य देश रहा है। इससे सम्पूर्ण भारतीय जनजीवन और राजनीति प्रभावित हुई है। यही स्थिति भाषा के संबंध में भी लागू होती है। इस प्रदेश की भाषाएं सामाजिक, सांस्कृति, धार्मिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक अभिव्यक्ति की माध्यम बनी रहीं। लोकभाषा के रूप में सर्वप्रथम संस्कृत का आविर्भाव हुआ। इसके बाद 'पालि' अन्य भाषाओं के सहयोग से संपर्क भाषा के रूप में विकसित हुई। इसी पालि से शौरसेनी प्राकृत भाषा उद्‌भूत हुई, जिसने समय के प्रवाह में आगे चलकर पश्चिमी अपभ्रंश (शौरसेनी अपभ्रंश) का रूप ले लिया। इसी की उत्तराधिकारिणी ब्रजभाषा साहित्य पूजन की भाषा और सांस्कृतिक प्रचार की भाषा के रूप में पूरे मध्य देश में छा गई। मुस्लिम शासकों के भारत आगमन और तदुपरांत मुगल राज्य की स्थापना के बाद दैनिक व्यवहार की भाषा के रूप में एक ऐसी भाषा ने जन्म लिया जो 'जबाने हिन्दी' या 'हिन्दवी' के नाम से जानी जाने लगी। इस भाषा को यद्यपि सरकारी प्रश्रय नहीं मिला किंतु ब्रज से प्रभावित लोकभाषा के रूप में पूरे देश में अपना स्थान बनाने लगी। इधर 19वीं शती में इसका व्याकरण लिखा गया, जिससे इसके प्रयोग में एकरूपता आने लगी। इस प्रकार इसके मानकीकरण का प्रयास सहज रूप में प्रारंभ हुआ। इसके उच्चारण, वर्तनी और व्याकरण संबंधी अनेकरूपता पर विवाद शुरू हो गया, जिसने मानकीकरण में काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

हिन्दी के मानकीकरण की प्रक्रिया को मुख्यत: उच्चारण वर्तनी, शब्द संपदा और व्याकरण के धरातल पर देखा जा सकता है।

उच्चारण और वर्तनी

मानक भाषा में एक शब्द के लिए एक ही उच्चारण माना जाता है। इसमें किसी भी स्तर पर विकल्प की गुंजाइश नहीं रहती। यदि विकल्प हो भी तो उसमें किसी एक का चयन कर उसे मानक मान लिया जाता है। इस समय हिन्दी में अभी ऐसे कई शब्द हैं, जिनके उच्चारण के दो-दो विकल्प मिलते हैं। यथा,

प्रयुक्त रूप	**प्रस्तावित मानक रूप**
दुकान, दूकान	दुकान
पड़ोस, पड़ौस	पड़ोस
धोबिन, धोबन	धोबिन
बहिन, बहन	बहन
औरत, अउरत	औरत
पइसा, पैसा	पैसा
केहना, कहना	केहना
वह, वोह	वोह

हिन्दी वर्तनी के मानकीकरण का प्रश्न काफी समय से प्रारंभ हो गया था। इस संबंध में 1998 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी वर्तनी तथा उसकी एकरूपता पर विचार करने के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति के निर्णय काफी समय तक मान्य रहे। परसर्गों को संज्ञा से अलग तथा सर्वनाम से मिलाकर लिखना आज भी प्रचलित है, जैसे राम को, उसको। इसी प्रकार हुवा, हुयी, हुये, गयी, गये आदि रूपों के स्थान पर हुआ, हुई, हुए, गई, गए आदि लिखना मानक माना गया। इस संबंध में विचार विमर्श के बाद हिन्दी वर्तनी को काफी हद तक मानक बनाया जा चुका है। कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं, जिनके कई रूप प्रयोग में हैं और उनमें से कुछ ऐसे हैं, जिनको मानक रूप देने का प्रस्ताव है।

प्रयुक्त रूप	**प्रस्तावित मानक रूप**
हुवा, हुआ	हुआ
जावे, जाय, जाए, जाये	जाए
लिये, लिए	लिए
कर्ता, करता	कर्ता
महत्त्व, महत्व	महत्व
दुख, दु:ख	दुख

इसके अतिरिक्त कुछ लिपि चिन्हों को मानक रूप देने का प्रस्ताव है किंतु इस समय दोनों रूपों का प्रयोग मिलता है।

शब्द-संपदा

विभिन्न बोलियों के प्रभाव से अनेक शब्दों का विकल्प बना रहा है, किंतु एकरूपता लाने के लिए किसी एक को मानक रूप में स्वीकार किया जाता है। हिन्दी के अंतर्गत 17 बोलियां आती हैं और हरेक में एक वस्तु या संकल्पना के लिए प्राय: अलग-अलग शब्द मिलते हैं। अत: इनमें किसी एक को मानक रूप में स्वीकार किया गया है।

उदाहरण के लिए,

प्रयुक्त रूप	प्रस्तावित मानक रूप
मोजा, जुराब	मोजा
नाती, धेवता	नाती
मायका, नैहर, पीहर	मायका
घुइयाँ, अरबी	अरबी
तोरी, तरोई, निनुआ, घेवड़ा	तोरी
गूथना, सानना, मांड़ना (आटा)	गूथना

सामान्य शब्दावली के अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दावली के मानकीकरण की ओर भी ध्यान दिया गया। हिन्दी के सीमा क्षेत्र के बहुत बढ़ जाने से इसकी पारिभाषिक शब्दावली में अनेकरूपता आना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और पश्चिम के संपर्क में आने के कारण हिन्दी समाज का आधुनिकीकरण प्रारंभ हो गया, जिससे पारिभाषिक शब्दावली की दृष्टि से इसकी भाषा का भी आधुनिकीकरण होने लगता है। इसी में मानकीकरण की प्रक्रिया भी अपना योगदान कर रही है। यथा,

प्रयुक्त रूप	प्रस्तावित मानक रूप
प्रारूप, मसौदा	मसौदा
चुनाव, निर्वाचन (इलेक्शन)	निर्वाचन
कार्यकाल, पदावधि (टेन्योर)	कार्यकाल
वरिष्ठता, ज्येष्ठता (सिनियरिटी)	वरिष्ठता

व्याकरण

व्याकरण के क्षेत्र में तो हिन्दी मानकता की ओर काफी बढ़ी है। 20 शताब्दी में विभिन्न विद्वानों ने अशुद्ध प्रयोगों की चर्चा करते हुए मानक प्रयोगों की ओर ध्यान दिलाया। हिन्दी की सरंचनात्मक एकरूपता काफी हद तक हो चुकी है किंतु इसके व्यापक क्षेत्र के होने के कारण अमानक रूपों का प्रयोग हो रहा है, जो भाषा की जीवंतता की ओर संकेत करता है। हिन्दी में प्रयुक्त अनेक विकल्पों में से कुछ सीमा तक ऐसे रूपों का चयन हुआ है, जिन्हें मानक रूपों में स्वीकार कर लिया गया है। उदाहरण के लिए

विकल्प रूप	मानक रूप
मुझे, मुझको, मेरे को	मुझे, मुझको
हमें, हमको, हमारे को	हमें, हमको
तुझे, तुझको, तुम्हारे को	तुम्हें तुमको
तुझसे, तेरे से	तुझसे
मुझसे, मेरे से	मुझसे
तुमसे तुम्हारे से	तुमसे
क्रिया, किया, करा	किया
करो, करियो	करो
कीजिए, करिए	कीजिए
है, हैगा, हैं, हैंगा	है, हैं
होऊंगा, हूंगा	होऊंगा

इसी प्रकार वाक्य रचना में भी प्रयुक्त विभिन्न विकल्पों में से हिन्दी में एक या दो को मानक रूप में स्वीकार किया गया है। जैसे,

1. मैंने घर जाना है,
2. मेरे को घर जाना है,
3. मुझे घर जाना है और,
4. मुझको घर जाना है।

हिन्दी के इन चारों वाक्यों में (3) और (4) मानक रूप में स्वीकृत हैं और व्याकरण की पुष्टि से इन्हें शुद्ध माना जाता है। शेष अमानक माने गये हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे कई वाक्य अब मिलते हैं, जिनके दो-दो विकल्प मानक रूप में देखे जा सकते हैं। जैसे,

1. मुझे किताबें खरीदनी हैं,
2. मुझे किताबें खरीदना है या,
   (1) आप जाएं और,
   (2) आप जाइये।

   अभी इनमें भी चयन की आवश्यकता है।

यहां इस बात की ओर ध्यान दिलाना असमीचीन न होगा कि भारत एक बहुभाषी देश है और इसकी प्रत्येक भाषा की कई बोलियां है। इसके अतिरिक्त भारतीय समाज की प्रकृति बहुस्तरीय है, जो भाषा पर अपना प्रभाव डालती है। अत: मानकीकरण की प्रक्रिया में फ्रांसीसी, पुर्तगाली, लैटिन आदि भाषाओं की भांति भारतीय भाषाएं एकोन्मुखी न होकर बहुमुखी और बहुआयामी हैं (श्रीवास्तव 1980)। वास्तव में बहुभाषी देशों की यह नियति है कि उनकी मानक भाषा अपनी प्राकृति में बहुआयामी और बहुस्तरीय होती है यह स्थिति न केवल भाषा और बोली के संबंधों पर आधारित है वरन् साहित्यिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक धाराओं के प्रभाव से विभिन्न शैलियों कें संदर्भ में देखी जा सकती है। यही स्थिति हिन्दी पर भी लागू होती है। हिन्दी की सत्रह बोलियां हैं, अत: इनका मानक प्रभाव तो मानक रूप पर पड़ना स्वाभाविक है। किंतु शैली के स्तर पर भी हिन्दी के तीन मानक रूप स्पष्टत: दिखाई देते हैं। एक है संस्कृतनिष्ठ हिन्दी तथा दूसरी है अरबी-फारसी मिश्रित हिन्दी और तीसरी है सामान्य हिन्दी, जिसे कुछ लोग हिन्दुस्तानी कहते हैं। ये सभी रूप अपने अपने को मानक रूप में सामने लाने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रयास में हिन्दी का मानक रूप बहुमुखी और बहुआयामी हो गया है। इस दृष्टि से पुस्तकें और किताब, पत्र और चिठ्ठी, अनशन और भूख हड़ताल, खेती और कृषि, संपत्ति और जायदाद, स्वीकृति और मंजूरी आदि अनेक शब्द मिल जाते हैं, जिनके बारे में यह प्रश्न उठता है, किसे मानक माना जाए और किसे अमानक या किसे शिष्ट कहा जाए और किसे शिष्टेतर। इस प्रकार हिन्दी एक ऐसी स्थिति से गुजर रही है, जिसके एक ओर से अधिक मानक रूप हैं और उन सभी का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है। इससे न तो इसकी संप्रेषणीयता और न बोधगम्यता में कोई बाधा पड़ रही है और न ही इसकी सार्वदेशिकता एवं सार्वजनीनता पर आंच आ रही है। यही हिन्दी की अपनी विशेषता है।

मानक भाषा को कई नामों से पुकारते हैं। इसे कुछ लोग 'परिनिष्ठित भाषा'कहते हैं और कई लोग 'साधु भाषा'। इसे 'नागर भाषा' भी कहा जाता

है। अंग्रेजी में इसे Standard Language' कहते हैं। मानक का अर्थ होता है एक निश्चित पैमाने के अनुसार गठित। मानक भाषा का अर्थ होगा, ऐसी भाषा जो एक निश्चित पैमाने के अनुसार लिखी या बोली जाती है। मानक भाषाव्याकरण के अनुसार ही लिखी और बोली जाती है। अर्थात् मानक भाषा का पैमाना उसका व्याकरण है। हम जब किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलते हैं तो उससे मानक भाषा में ही बातचीत करते हैं, जब हम कक्षा में किसी प्रश्न का उत्तर देते हैं तो हम मानक भाषा का ही प्रयोग करते हैं। हम पत्र-व्यवहार में मानक भाषा ही लिखते हैं। समाचार पत्रों में जो भाषा लिखी जाती है, वह भी मानक ही होती है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के समाचार मानक भाषा में ही प्रसारित किए जाते हैं। हमारे प्रशासन के सारे कामकाज मानक भाषा में ही सम्पन्न होते हैं। कहने का आशय यह है कि मानक भाषा हमारे बृहत्तर समाजको सांस्कृतिक स्तर पर आपस में जोड़ती है और हम उसी के माध्यम से एक-दूसरे तक पहुँचते हैं। मानक भाषा हमारी बात दूसरों तक ठीक उसी रूप में पहुँचाती है, जो हमारा आशय होता है। अत: मानक भाषा सर्वमान्य भाषा होती है, वह व्याकरण सम्मत होती है और उसमें निश्चत अर्थ सम्प्रेषित करने की क्षमता होती है। गठन और सम्प्रेषण की एकरूपता उसका सबसे बड़ा लक्षण है। यह भाषा सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक बन जाती है। धीरे-धीरे इस मानक भाषा की शब्दावली, उसका व्याकरण, उसके उच्चारण का स्वरूपनिश्चित और स्थिर हो जाता है और इसका प्रसार और विस्तार पूरे भाषा क्षेत्र में हो जाता है। इस प्रकार मानक भाषा की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में दी जा सकती है–

''मानक भाषा किसी भाषा के उस रूप को कहते हैं, जो उस भाषा के पूरे क्षेत्र में शुद्ध माना जाता है तथा जिसे उस प्रदेश का शिक्षित और शिष्ट समाज अपनी भाषा का आदर्श रूप मानता है और प्राय: सभी औपचारिक स्थितियों में, लेखन में, प्रशासन और शिक्षा के माध्यम के रूप में यथासाध्य उसी का प्रयोग करता है।''

इसी के आधार पर मानक भाषा के लक्षण निश्चित होते हैं–

1. वह व्याकरणसम्मत होती है,
2. वह सर्वमान्य होती है,
3. उससे क्षेत्रीय अथवा स्थानीय प्रयोगों से बचने की प्रवृत्ति होती है, अर्थात् वह एकरूप होती है,

4. वह हमारे सांस्कृतिक, शैक्षिक, प्रशासनिक, संवैधानिक क्षेत्रों का कार्य सम्पादित करने में सक्षम होती है,
5. वह सुस्पष्ट, सुनिर्धारित एवं सुनिश्चित होती है। उसके सम्प्रेषण से काई भ्रान्ति नहीं होती,
6. वह नवीन आवश्यकताओं के अनुरूप निरन्तर विकसित होती रहती है,
7. नये शब्दों के ग्रहण और निर्माण में वह समर्थ होती है,
8. वैयक्तिक प्रयोगों की विशिष्टता, क्षेत्रीय विशेषता अथवा शैलीगत विभिन्नता के बावजूद उसका ढाँचा सुदृढ़ एवं स्थिर होता है,
9. उसमें किसी प्रकार की त्रुटि दोष मानी जाती है,
10. वह परिनिष्ठित, साधु एवं संभ्रान्त होती है।
11. इस दृष्टि से आज हिन्दी भी एक मानक भाषा है। अर्थात् जहाँ-जहाँ, हिन्दी लिखी या पढ़ी जाती है या पढ़े-लिखे लोग उसका व्यवहार करना चाहते हैं तो इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वह व्याकरण सम्मत हो और उसका व्याकरण वही हो जो सर्वमान्य है।

मानक हिन्दी का अर्थ एवं विशिष्टताएँ

मानक हिन्दी के अर्थ

मानक हिन्दी भाषा का अर्थ हिन्दी भाषा के उस स्थिर रूप से है, जो अपने पूरे क्षेत्र में शब्दावली तथा व्याकरण की दृष्टि से समरूप है। इसलिए वह सभी लोगों द्वारा मान्य है, सभी लोगों द्वारा सरलता से समझी जा सकती है। अन्य भाषा रूपों के मुकाबले वह अधिक प्रतिष्ठित है। मानक हिन्दी भाषा ही देश की अधिकृत हिन्दी भाषा है। वह राजकाज की भाषा है। ज्ञान, विज्ञान की भाषा है, साहित्य-संस्कृति की भाषा है। अधिकांश विद्वान, साहित्यकार, राजनेता औपचारिक अवसरों पर इसी भाषा का प्रयोग करते हैं। आकाशवाणी व दूरदर्शन पर जिस हिन्दी में समाचार प्रसारित होते हैं, प्रतिष्ठित समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में जिस हिन्दी का प्रयोग होता है, जिस हिन्दी में सामान्यतः मूललेखन व अधिकृत अनुवाद होता है, वह मानक हिन्दी भाषा ही है। मानक हिन्दी भाषा, हिन्दी के विभिन्न रूपों में सर्वमान्य रूप है। वह रूप पूरी तरह सुनिश्चित व सुनिर्धारित है तथापि इसमें गतिशीलता भी है।

मानक हिन्दी की विशिष्टताएँ

मानक भाषा के जितने लक्षण ऊपर बतलाए गए हैं वे सभी लक्षण मानक हिन्दीभाषा में विद्यमान हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार मानक भाषा में चार तत्त्वों का होना आवश्यक है–

1. ऐतिहासिकता,
2. मानकीकरण,
3. जीवन्तता और
4. स्वायत्तता।
5. ये चारों तत्त्व मानक हिन्दी भाषा में विद्यमान हैं।

हिन्दी भाषा की ऐतिहासिकता तो सर्वविदित है। इसका एक गौरवशाली इतिहास है, विपुल साहित्यिक परम्परा है। शताब्दियों से लोग हिन्दी भाषा का प्रयोग करते आ रहे हैं। हिन्दी का मानक रूप भी गत शताब्दी में आकार लेने लगा था। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान हिन्दी का मानक स्वरूप विकसित होने लगा और स्वतंत्रता के पश्चात तो हिन्दी का मानक स्वरूप सुनिश्चित व सुनिर्धारित हो गया। मानक हिन्दी में जीवन्तता भी है। जीवन्तता इसी से सिद्ध होती है कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक **डॉ. जयन्त नारलीकर** 'ब्रह्माण्ड के स्वरूप' पर अपना व्याख्यान मानक हिन्दी भाषा में देते हैं। कविता और कहानी से लेकर विज्ञान और दर्शन तक सभी क्षेत्रों में आज मानक हिन्दी भाषा का प्रयोग होता है। यह भाषा नए युग के साथ चलने में पूरी तरह सक्षम है। मानक हिन्दी में स्वायत्तता भी है। वह किसी अन्य भाषा पर टिकी हुई नहीं है। उसकी स्वतंत्रशब्दावली और अपना व्याकरण है। इन चारों तत्त्वों के प्रकाश में यही कहा जासकता है कि मानक हिन्दी भाषा एक सशक्त गतिशील और सर्वमान्य भाषा है।

मानक हिन्दी के स्वरूप एवं प्रकार

मानक हिन्दी के स्वरूप

हिन्दी की आधुनिक मानक शैली का विकास हिन्दी भाषा की एक बोली, जिसका नाम खड़ीबोली है, के आधार पर हुआ है। हिन्दी मानक भाषा है,

जबकि खड़ीबोली उसकी आधारभूत भाषा का वह क्षेत्रीय रूप है, जो दिल्ली, रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, सहारनपुर आदि में बोला जाता है।

खड़ीबोली क्षेत्र में रहने वाले प्रायः प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति द्वारा जो कुछ बोला जाता है वह खड़ी बोली है, किन्तु जैसे ब्रज, बुन्देली, निमाड़ी अथवा मारवाड़ी क्षेत्रो में हिन्दी की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति परस्पर सम्भाषण अथवा औपचारिक अवसरों पर मानक हिन्दी बोलते हैं वैसे ही खड़ी बोली क्षेत्र के व्यक्ति भी औपचारिक अवसरों पर मानक हिन्दी का प्रयोग करते हैं। हम इसको इस तरह समझें- मैथिलीशरण गुप्त चिरगाँव के थे। वे घर में बुन्देलखण्डी बोलते थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी बलिया के थे, वे घर में भोजपुरी बोलते थे किन्तु ये सभी व्यक्ति जब साहित्य लिखते हैं तो मानक हिन्दी का व्यवहार करते हैं। संक्षेप में मानक भाषा अपनी भाषा का एक विशिष्ट प्रकार्यात्मक स्तर है। अब हम हिन्दी के निम्नलिखित चार वाक्य लेंगे और देखेंगे कि मानक भाषा की कसौटी पर कौन-सा वाक्य सही उतरता है–

मैंने भोजन कर लिया है।
मैंने खाना खा लिया है।
मैंने खाना खा लिया हूँ।
हम खाना खा लिये हैं।

विभिन्न क्षेत्रीय एवं सामाजिक भिन्नताओं के आधार पर तीसरे एवं चौथे प्रकार्यात्मक स्तरों के अनेक भेद हो सकते हैं। किन्तु पहले या दूसरे वाक्य का व्यवहार औपचारिक स्तर पर मानक भाषा में सर्वत्र होगा। हिन्दी का सही रूप जो सर्वत्र एक-सा है, सर्वमान्य है, व्याकरणसम्मत है और सम्भ्रांत है, मानक हिन्दी का वाक्य है।

मानक हिन्दी के प्रकार

हिन्दी के अनेक रूप हैं और अनेक अर्थ हैं। हिन्दी के सारे रूपों को हम सुविधा के लिए दो वर्गों में बाँट सकते हैं-

सामान्य हिन्दी

क्षेत्रीय बोलियाँ

हिन्दी की क्षेत्रीय बोलियाँ छोटे-छोटे क्षेत्रों या छोटे-छोटे समुदायों के बीच ही प्रचलित हैं। सामान्य हिन्दी इन सब रूपों का महत्तम-समापवर्तक रूप है। यदि बोलीगत सारे रूप हिन्दी की परिधि पर हैं तो उनका एक रूप ऐसा भी है, जो

केन्द्रवर्ती रूप है। वह केन्द्रवर्ती रूप ही मानक हिन्दी का रूप है। विभिन्न बोलियों के क्षेत्रीय अथवा सामुदायिक रूपों का मानक भाषा के रूप में पर्यवसान कई कारणों से होता है। इन कारणों को हम संक्षेप में निम्नानुसार उल्लिखित कर सकते हैं–

एक–सी शिक्षा का प्रसार,
यातायत की सुविधाओं का विस्तार,
जनसंचार माध्यमों की लोकप्रियता,
महानगरों का विकास,
साहित्य की वृद्धि और मुद्रित अक्षर की व्यापकता,
सिनेमा का प्रभाव,
सरकारी नौकरी में स्थानान्तरण,
सैनिकों की भर्ती,
राष्ट्रीय एकता की चेतना।

उपर्युक्त कारणों से धीरे–धीरे ऐसी हिन्दी का निर्माण और प्रचलन हुआ जो हिन्दी के विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों में समान रूप से समझी जा सकती है और उसका व्यवहार किया जा सकता है।

हमारे देश में औद्योगिकीकरण जिस गति से हो रहा है उससे भी क्षेत्रीय और सामुदायिक बोलियों के स्थान पर एक सामान्य भाषा फैल रही है। हिन्दी की शिक्षा का प्रसार भी इन दिनों बहुत हुआ है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के प्रभाव के कारण मानक हिन्दी सामान्य जन तक पहुँच रही है।

हिन्दी भाषा के मानक और अमानक की पहचान

मानक भाषा लिखने के काम आती है और बोलने के भी। लिखित और उच्चरित मानक हिन्दी के जो प्रयोग व्याकरणसम्मत, सर्वमान्य, एकरूप और परिनिष्ठित है उनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

बहुत से लोग बड़ी 'ई' की मात्रा का गलत प्रयोग करते हैं, जैसे शक्ती, तिथी, कान्ती, शान्ती। वास्तव में इनके मानक रूप है– शक्ति, तिथि, कान्ति, शान्ति आदि।

बहुत से लोग 'ऋ' को रि बोलते हैं जैसे रिण, रीता। यह अमानक प्रयोग है, किन्तु 'ऋ' अब शुद्ध स्वर नहीं रह गया है। उच्चारण में 'रि'को 'ऋ' का उच्चारण स्वीकार कर लिया गया है, किन्तु लिखने में संस्कृत शब्दों में 'ऋ' ही मानक प्रयोग है जैसे– ऋण, ऋता आदि।

हिन्दी में अंग्रेजी के कुछ ऐसे शब्द प्रचलित हो गए हैं जिनमें 'ॉ' कीध्वनि होती है। जैसे- डॉक्टर, कॉलेज, ऑफिस। हिन्दी में डाक्टर, कालेज, आफिस बोलना या लिखना अमानक प्रयोग माना जाता है।

कुछ शब्द 'इ' और 'ई' देनों मात्रओं से लिखे जाते हैं जैसे- हरिहरी, स्वातिस्वाती। किन्तु व्यक्ति के नाम का मानक रूप वही माना जाता है, जो नियम द्वारा मान्य है या वह स्वयं लिखता है जैसे-डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सही है, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय नहीं, क्योंकि डॉ. हरीसिंह, अपना नाम हरीसिंह लिखते थे।

कुछ लोग कुछ शब्दों में बड़ी 'ई' के स्थान पर छोटी 'इ' की मात्रा लगाते हैं। जैसे श्रीमति, मैथिलिशरण। ये अमानक प्रयोग है। इनके मानक रूप है- श्रीमती, मैथिलीशरण।

ऐसे ही निम्नलिखित शब्दों के अन्त में ह्रस्व 'उ' का प्रयोग मानक है, दीर्घ 'ऊ' का नहीं

मानक अमानक

इन्दु इन्दू

प्रभु प्रभू

शम्भु, शम्भू

हिन्दी में 'र' के साथ जब 'उ' अथवा 'ऊ' की मात्रा लगायी जाती है, तब उसका रूप होता है 'रुपया' अथवा 'रूप' जिन शब्दों में हिन्दी में 'औ' की मात्रा होती है, उनका उच्चारण 'अ' 'उ' की तरह करना चाहिए, ओ की तरह नहीं। जैसे 'औरत' का मानकउच्चारण 'अउरत' की तरह होगा, 'ओरत' की तरह नहीं। इसी प्रकार 'ए' का उच्चारण भी सावधानी से करना चाहिए। 'मैं' का उच्चाारण 'मँय' की तरह होगा 'में' की तरह नहीं। 'सेनिक', 'गोरव' उच्चारण अमानक है, 'सैनिक', 'गौरव' आदि मानक।

संस्कृत के शब्दों में दो स्वरों को एक साथ लिखना अमानक है, जैसे 'स्थाई' अमानक है, मानक 'स्थायी' है।

हिन्दी में आजकल अनुनासिक चिह्न चन्द्रबिन्दु (¡) के स्थान पर अनुस्वार लिखा जाने लगा है, जैसे 'हँस' के स्थान पर 'हंस'। ऐसे लोग लापरवाही के कारण करते हैं। मुद्रण की सुविधा के लिए भी अब हिन्दी में अनुनासिक चिह्न एवं चन्द्रबिन्दु के स्थान पर अनुस्वार लिखा जाने लगा है, जैसे कुंवर, मां, बांस आदि, परन्तु इनके मानक रूप हैं :कुँवर, माँ, बाँस।

जिन शब्दों के अन्त में 'ई' या 'ई' की मात्रा (h) होती है उनका जब बहुवचन बनाया जाता है तो वह ह्रस्व 'इ' की मात्रा में परिवर्तित होजाती है, जैसे मिठाई-मिठाइयाँ, दवाई-दवाइयाँ, लड़की-लड़कियाँ आदि। इसी प्रकार यदि शब्द के अन्त में 'ऊ' की मात्रा हो तो उनके बहुवचन में ह्रस्व 'उ' की मात्रा हो जाती है, जैसे आँसू-आँसुओं, लड्डू-लड्डुओं आदि।

मानक हिन्दी में अब 'क' के 'क' का प्रयोग भी होने लगा है। 'क'विदेशी (फारसी, अंग्रेजी) शब्दों में आता है जैसे 'कलम'। इसी प्रकार ख, ग, ज, फ ध्वनियाँ भी हिन्दी में स्वीकार कर ली गयी हैं। खत, गैरत, जनाब, सफा, बोलना पढ़े-लिखे होने की निशानी मानी जाती है।

'व' और 'ब' में भेद होता है। 'व' के स्थान पर 'ब' बोलना उचित नहीं है। इस प्रकार 'ज्ञ' और 'क्ष' केवल संस्कृत शब्दों में ही प्रयुक्त होता है।

हिन्दी में 'श', 'ष', 'स' तीन अलग-अलग ध्वनियाँ हैं- सड़क, शेष, विष, "षटकोण आदि मानक शब्द रूप हैं

'ष्ट' और 'ष्ठ' का उच्चारण प्रायः भ्रम उत्पन्न करता है। इनके बोलने और लिखने में शुद्धता का ध्यान रखना चाहिए, जैसे 'इष्ट', 'नष्ट', 'भ्रष्ट', 'स्वादिष्ट', 'कनिष्ठ', 'ज्येष्ठ', 'घनिष्ठ,' 'प्रतिष्ठा' आदि।

रेफ लगाने में प्रायः भूल होती है। रेफ वास्तव में 'र' का हलन्त रूप है। यह जहाँ बोला जाता है, सदैव उसके आगे के अक्षर पर लगता है। जैसे कर्म, धर्म, आशीर्वाद आदि। आर्शीवाद लिखना गलत है।

संस्कृत में रेफ से संयुक्त व्यंजन का द्वित्व होता भी है और नहीं भी होता। कर्त्तव्य कर्त्तव्य, अर्द्ध, अर्ध, आर्य्य, आर्य, भार्य्या, भार्या आदि दोनों रूप मानक हैं। हिन्दी में भी ये दोनों रूप शुद्ध स्वीकारे गये हैं, परन्तु निम्नलिखित शब्दों का द्वित्व अलग नहीं किया जा सकता–महत्त्व, तत्त्व, उज्ज्वल, निस्संदेह, निश्शंक ही शुद्ध रूप हैं, महत्व, तत्त्व, उज्वल, निसंदेह, निशंक नहीं।

हिन्दी में नया, गया, लाया तो ठीक माने जाते हैं। पर उनके स्त्रीवाचीरूप कभी नयी, गयी, लायी लिखे जाते हैं, तो कभी नई, गई, लाई। वास्तव में आई और आयी, लाई और लायी, भाई और भायी में फर्क होता है। देखिए–

आई मा (मराठी में)
आयी आया क्रिया का स्त्रीलिंग रूप
लाई धान का खिला हुआ रूप
लायी लाया का स्त्रीलिंग रूप

भाई बन्धु

भायी भाया क्रिया का स्त्रीलिंग रूप

इस प्रकार 'बनिए' ओर 'बनिये' में भी अन्तर करना चाहिए।'बनिए' बनना क्रिया का रूप है जबकि 'बनिये' बनिया का बहुवचन है। जिन शब्दों के एकवचन में य हो, उनके बहुवचन और स्त्रीलिंग रूपों में भी य ही होना चाहिए।

सम्बोधन में बहुत से लोग देशवासियों, भाइयों जैसे प्रयोग करते हैं। यह अमानक हैं। सम्बोधन बहुवचन में 'ओ' का प्रयोग होना चाहिए, 'ओं' का नहीं।

हिन्दी में जन, गण, वृन्द जैसे शब्द बहुवचनवाची है अत: गुरुजन, विधायक गण, पक्षी वृन्द ही सही हैं। गुरुजनों, विधायक गणों पक्षी वृन्दों जैसे रूप आमानक हैं।

हिन्दी के कारक चिह्नों में सबसे अधिक कठिनाई 'ने' को लेकर होती है। मानक हिन्दी में 'ने' का प्रयोग कर्ता-कारक में सकर्मक धातुओं से बने भूतकालिक क्रिया रूपों के साथ होता है। जैसे–

मैंने कहा।

राम ने रावण को मारा ।

मैंने गाना गाया।

किन्तु निम्न वाक्यों में 'ने' का प्रयोग अमानक है-

मैं ने हँसा।

राम ने बहुत रोया।

मानक हिन्दी में विशेषण का लिंग, संज्ञा के लिंग के अनुरूप बदलने की परिपाटी नहीं है। संस्कृत में सुन्दर बालक किन्तु सुन्दरी बालिका जैसे प्रयोग प्रचलित है। हिन्दी में हम सुन्दर लड़की और सुन्दर लड़का कहते हैं। वास्तव में हिन्दी में संज्ञा के लिंग के अनुरूप विशेषण का लिंग नहीं बदला जाना चाहिए।

निश्चयवाचक अव्यय के रूप में हिन्दी में 'न', 'नहीं' और 'मत' मानक हैं, 'ना' नहीं। इस तरह के वाक्य ठीक नहीं हैं- 'ना वह बैठा और नाही उसने बात की।'

वास्तव में भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया एक लम्बी प्रक्रिया है। अत: जिन शब्दों, अभिव्यक्तियों और वाक्य रूपों का मानकीकरण हो चुका है, उनका पालन करना चाहिए।

मानक भाषा के स्वरूप और लक्षण

मानक भाषा – भाषा के माध्यम से अपनी बात, भावों और भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। भाषा भावों को प्रस्तुत करने का साधन हैं, भाषा शब्द की उत्पत्ति संस्कृति की भाष धातु से हुई हैं, जिनका अर्थ वाणी प्रकट करना है भाषा कई प्रकार की होती है, जिससे हम अपनी वाणी को प्रकट हैं।

मानक रूप का ज्ञान जांच करने के काम आता है। मानक शब्द-रूपों और वाक्य-रचना का निर्धारण करके स्थिरता आती है। आदर्श स्थिति में एक शब्द का एक उच्चारण एक ही व्याकरणिक ढांचा होता है। वाक्य को दूसरे तक पहुंचाने में सरलता होती हैं। लोगों को समझने में आसान होती हैं।

इस प्रकार **श्यामसुंदर दास** ने कहा - 'मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने में ध्वनि संकेतों का जो माध्यम होता है, जिसे भाषा कहते हैं। ''

इस प्रकार 'भाषा ध्वनि संकेतों में प्रयोग से विचारों को आदान प्रदान का माध्यम हैं,

हिंदी भाषा का विकास– हिंदी भाषा की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई हैं। 500 ई. पू. के मध्य साहित्यिकों ने संस्कृत के कठोर व्याकरणिक नियमों को त्याग कर उस समय की लोकभाषा प्राकृत को अपनाया। प्राकृत भाषा से अपभ्रंश नामक लोकभाषा का विकास हुआ। हिंदी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला आदि भाषाओ का विकास इसी अपभ्रंश भाषा से हुआ। धीरे-धीरे अपभ्रंश का ह्रास होने लगा तथा हिंदी भाषा का विकास हुआ, हिंदी भाषा का प्रचार हुआ। हिंदी को भाषा का स्वरूप मानते है, जिसे संविधान में राजभाषा के रूप में माना हैं। हिंदी भारत की मातृभाषा हैं।

स्वरूप तथा लक्षण - हिंदी भाषा को मानक भाषा कहते हैं। किसी भाषा को मानक रूप में प्रयोग तभी करते हैं, जब उसकी प्रकृति से परिचित हों। भाषा की प्रकृति से हमारा तात्पर्य उसके शब्द -भंडार, शब्द -निर्माण, वाक्य विन्यांश, भाव-व्यंजन, शैली मुहावरे आदि से है। इससे आशय है कि सर्वप्रथम उस भाषा की वर्णमाला का ज्ञान होना चाहिए अर्थात् हम उसकी वर्णमाला के प्रत्येक अक्षरों की ठीक ध्वनि से परिचित हों और हमें यह भी ज्ञान होना चाहिए, जो ध्वनियाँ भाषा की वर्णमाला में नहीं हैं, उन्हें उस भाषा में किस प्रकार प्रकट किया जाता है। हिंदी में ए, ऐ, ड़, ण, व, ब, ष, स आदि अक्षरों का समूह हैं, जिसकी ध्वनियों का ज्ञान होने पर ही इनका प्रयोग किया जाता हैं। शब्द निर्माण में हमें

बहुत सावधानी बरतनी चाहिए और इच्छानुसार नए शब्दो का निर्माण न करें, विभिन्न भाषाओं के शब्दो से सही शब्दों के निर्माण की, प्रकृति ने हिंदी के स्वरूप को प्रसिद्ध कर दिया हैं। आज युग में हिंदी भाषा बहुत प्रचलित हैं।

भाषा के मानक लक्षण हैं–

1. पद –विन्यास सही हो तथा वाक्य में शब्दो का क्रम व्याकरण के नियम अनुसार हो,
2. भाषा के सही शब्दों का ही प्रयोग किया जाए,
3. निरर्थक अथवा व्यर्थ शब्दो का प्रयोग न करें और
4. शब्दो को बोझिल न बनाया जाए।

भाषा का प्रयोग– भाषा का प्रयोग हम हर जगह करते हैं। भाषा का प्रयोग हम दो प्रकार से है, बोल कर और लिख कर। दैनिक व्यवहार में बोल कर करते हैं। पत्र –लेखन, समाचार –लेखन, पुस्तक –लेखन, तथा कार्यालयों में इसका प्रयोग लिखित होता हैं। भाषा के प्रयोग के बिना कार्य पूरा नहीं होता हैं।

3

सम्पर्क भाषा

उस भाषा को सम्पर्क भाषा (lingua franc) कहते हैं, जो किसी क्षेत्र में सामान्य रूप से किसी भी दो ऐसे व्यक्तियों के बीच प्रयोग हो, जिनकी मातृभाषाएँ अलग हैं। इसे कई भाषाओं में 'लिंगुआ फ्रैंक' (lingua franca) कहते हैं। इसे सेतु-भाषा, व्यापार भाषा, सामान्य भाषा या वाहन-भाषा भी कहते हैं। मानव इतिहास में सम्पर्क भाषाएँ उभरती रही हैं।

आधुनिक काल में विश्व की सम्पर्क भाषा अंग्रेजी है। उदाहरण के लिए यदि कोई जापानी भाषा और स्वाहिली भाषा के मातृभाषी आपस में बातचीत करें तो वे आमतौर पर अंग्रेजी का ही प्रयोग करेंगे, हालांकि अंग्रेजी उनमें से किसी की भी मातृभाषा नहीं है। अलग-अलग स्थानों पर ऐसी अनेक सम्पर्क भाषाएँ मिलती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप और उसके आसपास के क्षेत्रों में हिन्दी भारत के अलावा नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, पाकिस्तान, तिब्बत, अफगानिस्तान, श्रीलंका, इत्यादि में बहुत लोगों द्वारा समझी जाती है। भूतपूर्व सोवियत संघ के बिखरने के बाद उसमें सम्मिलित क्षेत्रों में आपस में अभी भी रूसी भाषा का प्रयोग होता है, मसलन यदि मध्य एशिया के उजबेकिस्तान और यूरोप के यूक्रेन के व्यक्ति आपस में बात करें तो वे साधारण रूप से रूसी भाषा का प्रयोग करेंगे, हालांकि रूसी उन दोनों ही की मातृभाषा नहीं है।

भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में सम्पर्क भाषा की महत्ता असंदिग्ध है। इसी के मद्देनजर 'सम्पर्क भाषा (जनभाषा) के रूप में हिन्दी' शीर्षक इस

अध्याय में सम्पर्क भाषा का सामान्य परिचय देने के साथ-साथ सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी के स्वरूप एवं राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा के अंत:सम्बन्ध पर भी विचार किया गया है।

सम्पर्क भाषा–परिभाषा एवं सामान्य परिचय

भाषा की सामान्य परिभाषा में यह कहा जा चुका है कि 'भाषा मनुष्य क विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है।' सम्पर्क भाषा का आशय जनभाषा है। किसी क्षेत्र का सामान्य व्यक्ति प्रचलित शैली में जो भाषा बोलता है, वह जनभाषा है। दूसरे शब्दों में, क्षेत्र विशेष की संपर्क भाषा ही जन भाषा है। इसलिए जरूरी नहीं कि जनभाषा शुद्ध साहित्यिक रूप वाली ही हो या वह व्याकरण के नियम से बंधी हो।

सम्पर्क भाषा या जनभाषा वह भाषा होती है, जो किसी क्षेत्र, प्रदेश या देश के ऐसे लोगों के बीच पारस्परिक विचार-विनिमय के माध्यम का काम करे जो एक दूसरे की भाषा नहीं जानते। दूसरे शब्दों में विभिन्न भाषा-भाषी वर्गों के बीच सम्प्रेषण के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, वह सम्पर्क भाषा कहलाती है। इस प्रकार 'सम्पर्क भाषा' की सामान्य परिभाषा होगी–'एक भाषा-भाषी जिस भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा के बोलने वालों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सके, उसे सम्पर्क भाषा या जनभाषा (Link Language) कहते हैं।'

बकौल **डॉ. पूरनचंद टंडन** 'सम्पर्क भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है, जो समाज के विभिन्न वर्गों या निवासियों के बीच सम्पर्क के काम आती है। इस दृष्टि से भिन्न-भिन्न बोली बोलने वाले अनेक वर्गों के बीच हिन्दी एक सम्पर्क भाषा है और अन्य कई भारतीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलने वालों के बीच भी सम्पर्क भाषा है।' **डॉ. महेन्द्र सिंहराणा** ने सम्पर्क भाषा को इन शब्दों में परिभाषित किया है–'परस्पर अबोधगम्य भाषा या भाषाओं की उपस्थिति के कारण जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा के माध्यम से दो व्यक्ति, दो राज्य, कोई राज्य और केन्द्र तथा दो देश सम्पर्क स्थापित कर पाते हैं, उस भाषा विशेष को सम्पर्क भाषा या सम्पर्क साधक भाषा (Contact Language or Interlink Language) कहा जा सकता है।' (-प्रयोजनमूलक हिन्दी के आधुनिक आयाम, पृ. 79) इस क्रम में **डॉ. झाल्टेद्वारा** प्रतिपादित परिभाषा उल्लेखनीय है- 'अनेक भाषाओं की उपस्थिति के कारण जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा

के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य, राज्य-केन्द्र तथा देश-विदेश के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है, उसे सम्पर्क भाषा की संज्ञा दी जा सकती है।' (-प्रयोजनमूलक हिन्दी-सिद्धान्त और प्रयोग, पृ. 53) उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सम्पर्क भाषा मात्र दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के बीच सम्पर्क का माध्यम नहीं बनती, जो एक-दूसरे की भाषा से परिचित नहीं है, अपितु दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी राज्यों के बीच तथा केन्द्र और राज्यों के बीच भी सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम बन सकती है।

सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी

भारत एक बहुभाषी देश है और बहुभाषा-भाषी देश में सम्पर्क भाषा का विशेष महत्त्व है। अनेकता में एकता हमारी अनुपम परम्परा रही है। वास्तव में सांस्कृतिक दृष्टि से सारा भारत सदैव एक ही रहा है। हमारे इस विशाल देश में जहाँ अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं और जहाँ लोगों के रीति-रीवाजों, खान-पान, पहनावे और रहन-सहन तक में भिन्नता हो वहाँ सम्पर्क भाषा ही एक ऐसी कड़ी है, जो एक छोर से दूसरे छोर के लोगों को जोड़ने और उन्हें एक दूसरे के समीप लाने का काम करती है। **डॉ. भोलानाथ** ने सम्पर्क भाषा के प्रयोग क्षेत्र को तीन स्तरों पर विभाजित किया है-एक तो वह भाषा जो एक राज्य (जैसे महाराष्ट्र या असम)से दूसरे राज्य (जैसे बंगाल या असम) के राजकीय पत्र-व्यवहार में काम आए। दूसरे वह भाषा जो केन्द्र और राज्यों के बीच पत्र-व्यवहारों का माध्यम हो। और तीसरे वह भाषा जिसका प्रयोग एक क्षेत्र प्रदेश का व्यक्ति दूसरे क्षेत्र प्रदेश के व्यक्ति से अपने निजी कामों में करें।

आजादी की लड़ाई लड़ते समय हमारी यह कामना थी कि स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी एक राष्ट्रभाषा होगी, जिससे देश एकता के सूत्र में सदा के लिए जुड़ा रहेगा। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि सभी महापुरुषों ने एक मत से इसका समर्थन किया, क्योंकि हिन्दी हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आन्दोलनों की ही नहीं अपितु राष्ट्रीय चेतना एवं स्वाधीनता आन्दोलन की अभिव्यक्ति की भाषा भी रही है।

भारत में 'हिन्दी' बहुत पहले सम्पर्क भाषा के रूप में रही है और इसीलिए यह बहुत पहले से 'राष्ट्रभाषा' कहलाती है क्योंकि हिन्दी की सार्वदेशिकता सम्पूर्ण भारत के सामाजिक स्वरूप का प्रतिफल है। भारत की विशालता के

अनुरूप ही राष्ट्रभाषा विकसित हुई है, जिससे उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम कहीं भी होने वाले मेलों- चाहे वह प्रयाग में कुंभ हो अथवा अजमेर शरीफ की दरगाह हो या विभिन्न प्रदेशों की हमारी सांस्कृतिक एकता के आधार स्तंभ तीर्थस्थल हों- सभी स्थानों पर आदान-प्रदान की भाषा के रूप में हिन्दी का ही अधिकतर प्रयोग होता है। इस प्रकार इन सांस्कृतिक परम्पराओं से हिन्दी ही सार्वदेशिक भाषा के रूप में लोकप्रिय है विशेषकर दक्षिण और उत्तर के सांस्कृतिक सम्बन्धें की दृढ़ शृंखला के रूप में हिन्दी ही सशक्त भाषा बनीं। हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत है।

सम्पर्क भाषा हिन्दी का आयाम, जनभाषा हिन्दी, सबसे व्यापक और लोकप्रिय है, जिसका प्रसार क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर से बढ़कर भारतीय उपमहाद्वीप तक है। शिक्षित, अर्धशिक्षित, अशिक्षित, तीनों वर्गों के लोग परस्पर बातचीत आदि के लिए और इस प्रकार मौखिक माध्यम में जनभाषा हिन्दी का व्यवहार करते हैं। भारत की लिंग्वे फ्रांका, लैंग्विज आव वाइडर कम्युनिकेशन, पैन इंडियन लैंग्विज, अन्तर प्रादेशिक भाषा, लोकभाषा, भारत-व्यापी भाषा, अखिल भारतीय भाषा- ये नाम 'जनभाषा' हिन्दी के लिए प्रयुक्त होते हैं। हमारे देश की बहुभाषिकता के ढाँचे में हिन्दी की विभिन्न भौगोलिक और सामाजिक क्षेत्रों के अतिरिक्त भाषा-व्यवहार के क्षेत्रों में भी सम्पर्क सिद्धि का ऐसा प्रकार्य निष्पादित कर रही है, जिसका, न केवल कोई विकल्प नहीं, अपितु जो हिन्दी की विविध भूमिकाओं को समग्रता के साथ निरूपित करने में भी समर्थ है।

हिन्दी ने पिछले हजार वर्षों में विचार-विनिमय का जो उत्तरदायित्व निभाया है वह एक अनूठा उदाहरण है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि हिन्दी पहले 'राष्ट्रभाषा' कहलाती थी, बाद में इसे 'सम्पर्क भाषा' कहा जाने लगा और अब इसे 'राजभाषा' बना देने से इसका क्षेत्र सीमित हो गया है। वस्तुतः यह उनका भ्रम है। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि हिन्दी सदियों से सम्पर्क भाषा और राष्ट्रभाषा एक साथ रही है और आज भी है। भारत की संविधान सभा द्वारा 14 सितम्बर, 1949 को इसे राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लेने से इसके प्रयोग का क्षेत्र और विस्तृत हुआ है। जैसे बंगला, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि को क्रमशः बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल आदि की राजभाषा बनाया गया है। ऐसा होने से क्या उन भाषाओं का महत्त्व कम हो गया है ? निश्चय ही नहीं। बल्कि इससे उन सभी भाषाओं का उत्तरदायित्व और प्रयोग क्षेत्र पहले से अधिक बढ़ गया है। जहाँ पहले केवल परस्पर बोलचाल

में काम आती थी या उसमें साहित्य की रचना होती थी, वहीं अब प्रशासनिक कार्य भी हो रहे हैं। यही स्थिति हिन्दी की भी है। इस प्रकार हिन्दी सम्पर्क और राष्ट्रभाषा तो है ही, राजभाषा बनाकर इसे अतिरिक्त सम्मान प्रदान किया गया है। इस प्रसंग में **डॉ. सुरेश कुमार** का कथन बहुत ही प्रासंगिक है–'हिन्दी को केवल सम्पर्क भाषा के रूप में देखना भूल होगी। हिन्दी, आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्‌भव काल से मध्यदेश के निवासियों के सामाजिक सम्प्रेषण तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की भाषा रही है और अब भी है। भाषा-सम्पर्क की बदली हुई परिस्थितियों में (जो पहले फारसी-तुर्की -अरबी तथा बाद में मुख्य रूप से अंग्रेजी के साथ सम्पर्क के फलस्वरूप विकसित हुई) तथा स्वतंत्र भारतीय गणराज्य में सभी भारतीय भाषाओं को अपने-अपने भौगोलिक क्षेत्र में व्यावसायिक और सांस्कृतिक व्यवहार की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग में लाने के निर्णय के बाद, हिन्दी का सम्पर्क भाषा प्रकार्य, गुण और परिमाण की दृष्टि से इतना विकसित हो गया है कि उसके सम्बन्ध में चिन्तन तथा अनुवर्ती कार्य, एक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आवश्यकता बन गए हैं।'

वास्तव में भाषा सम्पर्क की स्थिति ही किसी सम्पर्क भाषा के उद्‌भव और विकास को प्रेरित करती है या एक सुप्रतिष्ठित भाषा के सम्पर्क प्रकार्य को संपुष्ट करती है। हिन्दी के साथ दोनों स्थितियों का सम्बन्ध है। आन्तरिक स्तर पर हिन्दी अपनी बोलियों के व्यवहारकर्ताओं के बीच सम्पर्क की स्थापना करती रही है और अब भी कर रही है, तथा बाह्य स्तर पर वह अन्य भारतीय भाषा भाषी समुदायों के मध्य एकमात्र सम्पर्क भाषा के रूप में उभर आई है, जिसके अब विविध आयाम विकसित हो चुके हैं। कुल मिलाकर हिन्दी का वर्तमान गौरवपूर्ण है। उसकी भूमिका आज भी सामान्य-जन को जोड़ने में सभी भाषाओं की अपेक्षा सबसे अधिक कारगर है।

4

राजभाषा

राजभाषा, किसी राज्य या देश की घोषित भाषा होती है, जो कि सभी राजकीय प्रयोजनों में प्रयोग होती है। उदाहरणत: भारत की राजभाषा हिन्दी है। केंद्रीय स्तर पर दूसरी आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है।

बोली, विभाषा, भाषा और राजभाषा

यों बोली, विभाषा और भाषा का मौलिक अन्तर बता पाना कठिन है, क्योंकि इसमें मुख्यतया अन्तर व्यवहार-क्षेत्र के विस्तार पर निर्भर है। वैयक्तिक विविधता के चलते एक समाज में चलने वाली एक ही भाषा के कई रूप दिखाई देते हैं। मुख्य रूप से भाषा के इन रूपों को हम इस प्रकार देखते हैं।

1. बोली,
2. विभाषा और
3. भाषा (अर्थात् परिनिष्ठित या आदर्श भाषा)।

बोली भाषा की छोटी इकाई है। इसका सम्बन्ध ग्राम या मण्डल से रहता है। इसमें प्रधानता व्यक्तिगत बोली की रहती है और देशज शब्दों तथा घरेलू शब्दावली का बाहुल्य होता है। यह मुख्य रूप से बोलचाल की ही भाषा है। अत: इसमें साहित्यिक रचनाओं का प्राय: अभाव रहता है। व्याकरणिक दृष्टि से भी इसमें असाधुता होती है। विभाषा का क्षेत्र बोली की अपेक्षा विस्तृत होता है यह एक प्रान्त या उपप्रान्त में प्रचलित होती है। एक विभाषा में स्थानीय भेदों के आधार पर कई बोलियां प्रचलित रहती हैं। विभाषा में साहित्यिक रचनाएं मिल सकती हैं।

भाषा, अथवा कहें परिनिष्ठित भाषा या आदर्श भाषा, विभाषा की विकसित स्थिति है। इसे राष्ट्र-भाषा या टकसाली-भाषा भी कहा जाता है।

प्राय: देखा जाता है कि विभिन्न विभाषाओं में से कोई एक विभाषा अपने गुण-गौरव, साहित्यिक अभिवृद्धि, जन-सामान्य में अधिक प्रचलन आदि के आधार पर राजकार्य के लिए चुन ली जाती है और उसे राजभाषा के रूप में या राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया जाता है।

राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा

किसी प्रदेश की राज्य सरकार के द्वारा उस राज्य के अंतर्गत प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे राज्यभाषा कहते हैं। यह भाषा सम्पूर्ण प्रदेश के अधिकांश जन-समुदाय द्वारा बोली और समझी जाती है। प्रशासनिक दृष्टि से सम्पूर्ण राज्य में सर्वत्र इस भाषा को महत्त्व प्राप्त रहता है।

भारतीय संविधान में राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए हिन्दी के अतिरिक्त 21 अन्य भाषाएं राजभाषा स्वीकार की गई हैं। संविधान की अष्टम अनुसुची में कुल 22 भारतीय भाषाओं स्थान प्राप्त हुआ है। राज्यों की विधानसभाएं बहुमत के आधार पर किसी एक भाषा को अथवा चाहें तो एक से अधिक भाषाओं को अपने राज्य की राज्यभाषा घोषित कर सकती हैं।

राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। प्राय: वह अधिकाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा होती है। प्राय: राष्ट्रभाषा ही किसी देश की राजभाषा होती है। भारत में 22 भारतीय भाषाएं राष्ट्रभाषाएं मानी जाती है।

भारत की मुख्य विशेषता यह है कि यहाँ विभिन्नता में एकता है। भारत में विभिन्नता का स्वरूप न केवल भौगोलिक है, बल्कि भाषायी तथा सांस्कृतिक भी है। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 1652 मातृभाषायें प्रचलन में हैं, जबकि संविधान द्वारा 22 भाषाओं को राजभाषा की मान्यता प्रदान की गयी है। संविधान के अनुच्छेद 344 के अंतर्गत पहले केवल 15 भाषाओं को राजभाषा की मान्यता दी गयी थी, लेकिन 21वें संविधान संशोधन के द्वारा सिन्धी को तथा 71वाँ संविधान संशोधन द्वारा नेपाली, कोंकणी तथा मणिपुरी को भी राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया। बाद में 92वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा संविधान की आठवीं अनुसूची में चार नई भाषाओं बोडो, डोगरी, मैथिली तथा

संथाली को राजभाषा में शामिल कर लिया गया। इस प्रकार अब संविधान में 22 भाषाओं को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया है। भारत में इन 22 भाषाओं को बोलने वाले लोगों की कुल संख्या लगभग 90% है। इन 22 भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी भी सहायक राजभाषा है और यह मिजोरम, नागालैण्ड तथा मेघालय की राजभाषा भी है। कुल मिलाकर भारत में 58 भाषाओं में स्कूलों में पढ़ायी की जाती है। संविधान की आठवीं अनुसूची में उन भाषाओं का उल्लेख किया गया है, जिन्हें राजभाषा की संज्ञा दी गई है।

संघ की भाषा

संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी लेकिन संविधान के बाद 15 वर्षों तक अर्थात् 1965 तक संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाना था और संसद को यह अधिकार दिया गया कि वह चाहे तो संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग की अवधि को बढ़ा सकती थी। इसलिए संसद ने 1963 में राजभाषा अधिनियम, 1963 पारित करके यह व्यवस्था कर दी कि संघ भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग 1971 तक करता रहेगा, लेकिन इस नियम में संशोधन करके यह व्यवस्था कर दी गयी कि संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग अनिश्चित काल तक रहेगा।

भाषाएँ

अनुच्छेद 344 (1), 351, आठवीं अनुसूची के अनुसार 22 भाषाएं है जिनके नाम इस प्रकार है––

असमिया,
बांग्ला,
गुजराती,
हिन्दी,
कन्नड,
कश्मीरी,
कोंकणी,
मलयालम,
मणिपुरी,

मराठी,
नेपाली,
उड़िया,
पंजाबी,
संस्कृत,
सिंधी,
तमिल,
उर्दू,
तेलुगु,
बोडो,
डोगरी,
मैथिली, और
संथाली।

राजभाषा आयोग

संविधान के अनुच्छेद 344 में राष्ट्रपति को राजभाषा आयोग को गठित करने का अधिकार दिया गया है। राष्ट्रपति अपने इस अधिकार का प्रयोग प्रत्येक दस वर्ष की अवधि के पश्चात् करेंगे। राजभाषा आयोग में उन भाषाओं के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाएगा, जो संविधान की आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं। इस प्रकार राजभाषा में 18 सदस्य होते हैं।

राजभाषा आयोग का कार्य

राजभाषा आयोग का कर्त्तव्य निम्नलिखित विषयों पर राष्ट्रपति को सिफारिश देना होता है–

संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा के अधिकारिक प्रयोग के विषय में,

संघ के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग के निर्बन्धन के विषय में,

उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में और संघ की तथा राज्य के अधिनियमों तथा उनके अधीन बनाये गये नियमों में प्रयोग की जाने वाली भाषा के विषय में,

संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के लिए प्रयोग किये जाने वाले अंकों के विषय में,

संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच अथवा एक राज्य तथा दूसरे राज्यों के बीच पत्रचार की भाषा तथा उनके प्रयोग के विषय में, और

संघ की राजभाषा के बारे में या किसी अन्य विषय में, जो राष्ट्रपति आयोग को सौंपे।

राष्ट्रपति ने अपने इस अधिकार का प्रयोग करके 1955 में राजभाषा आयोग का गठन किया था। **बी. जी. खेर** को उस समय राजभाषा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। इस आयोग ने 1956 में अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपी थी।

राजभाषा पर संयुक्त संसदीय समिति

राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया जाता है। इस समिति में लोकसभा के 20 तथा राज्यसभा के 10 सदस्यों को शामिल किया जाता है। संसदीय समिति राजभाषा आयोग द्वारा की गयी सिफारिशों का पुनरीक्षण करती है।

स्थायी राजभाषा आयोग

स्थायी राजभाषा आयोग के गठन के सिफारिश संयुक्त समिति ने की थीं इस सिफारिश के अनुसरण में 1961 में दो स्थायी राजभाषा आयोग का गठन किया गया है, लेकिन 1976 में स्थायी राजभाषा आयोग को समाप्त कर दिया गया। जबकि वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग अब भी मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन कार्य कर रहा है।

राज्य की भाषा

संविधान के अनुच्छेद 345 के अधीन प्रत्येक राज्य के विधानमण्डल को यह अधिकार दिया गया है कि वह संविधान की आठवीं अनुसूची में अन्तर्विष्ट भाषाओं में से किसी एक या अधिक को सरकारी कार्यों के लिए राज्य भाषा के रूप में अंगीकार कर सकता है। किन्तु राज्य के परस्पर सम्बन्धें में तथा संघ और राज्यों के परस्पर सम्बन्धें में संघ की राजभाषा को ही प्राधिकृत भाषा माना जाएगा।

न्यायालयों तथा विधानमण्डलों की भाषा

संविधान में प्रावधान किया गया है कि जब तक संसद द्वारा कानून बनाकर अन्यथा प्रावधान न किया जाए, तब तक उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की भाषा अंग्रेजी होगी और संसद तथा राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित कानून अंग्रेजी में होंगे। किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की अनुमति से उच्च न्यायालय की कार्रवाई को राजभाषा में होने की अनुमति दे सकता है।

संस्कृत भाषा में श्लोक

संघ की भाषा

अध्याय 2- संघ की भाषा के अनुसार

अनुच्छेद 343- संघ की राजभाषा-

संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

इस संविधान के प्रारम्भ से 15 वर्ष की अवधि तक (अर्थात् 1965 तक) उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, जिनके लिए पहले प्रयोग किया जाता रहा था।

परन्तु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

संसद उक्त 15 वर्ष की अवधि के पश्चात्, विधि के द्वारा

अंग्रेजी भाषा कार्य या

अंकों के देवनागरी रूप का,

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी, जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएँ। अनुच्छेद 344- राजभाषा के सम्बन्ध में आयोग (5 वर्ष के उपरान्त राष्ट्रपति के द्वारा) और संसद की समिति (10 वर्ष के उपरान्त)

प्रादेशिक भाषाएँ

अनुच्छेद 345- राज्य की राजभाषा या राजभाषाएँ (प्रादेशिक भाषा-भाषाएँ या हिन्दीय ऐसी व्यवस्था होने तक अंग्रेजी का प्रयोग जारी)।

अनुच्छेद 346- एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा (संघ द्वारा तत्समय प्राधिकृत भाषा, आपसी करार होने पर दो राज्यों के बीच हिन्दी)।

अनुच्छेद 347- किसी राज्य की जनसंख्या के किसी अनुभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के सम्बन्ध में विशेष उपबंध।

सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय आदि की भाषा

अनुच्छेद 348- सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय में और संसद व राज्य विधान मंडल में विधेयकों, अधिनियमों आदि के लिए प्रयोग की जानेवाली भाषा (उपबंध होने तक अंग्रेजी जारी)। अनुच्छेद 349- भाषा से सम्बन्धित कुछ विधियाँ अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया (राजभाषा सम्बन्धी कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना पेश नहीं किया जा सकता और राष्ट्रपति भी आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद ही मंजूरी दे सकेगा)।

विशेष निदेश

अनुच्छेद 350- व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जानेवाली भाषा (किसी भी भाषा में)

(क)भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएँ। (ख)भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति (राष्ट्रपति के द्वारा) अनुच्छेद 351-हिन्दी के विकास के लिए निदेश संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके, और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी में और 8वीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।

संवैधानिक स्थिति व समीक्षा

स्वतंत्रता के पूर्व जो छोटे-बड़े राष्ट्रनेता राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाने के मुद्दे पर सहमत थे, उनमें से अधिकांश गैर-हिन्दी भाषी नेता स्वतंत्रता मिलने के वक्त हिन्दी के नाम पर बिदकने लगे।

यही वजह थी कि संविधान सभा में केवल हिन्दी पर विचार नहीं हुआ, राजभाषा के नाम पर जो बहस वहाँ 11 सितंबर, 1949 ई. से 14 सितंबर, 1949 ई. तक हुई, उसमें हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत एवं हिन्दुस्तानी के दावे पर विचार किया गया।

किन्तु संघर्ष की स्थिति सिर्फ हिन्दी एवं अंग्रेजी के समर्थकों के बीच ही देखने को मिली। हिन्दी समर्थक वर्ग में दो गुट थे। एक गुट देवनागरी लिपि वाली हिन्दी का समर्थक था, दूसरा गुट (महात्मा गाँधी, जे. एल. नेहरू, अबुल कलाम आजाद आदि) दो लिपियों वाली हिन्दुस्तानी के पक्ष में था।

आजाद भारत में एक विदेशी भाषा, जिसे देश का बहुत थोड़ा सा अंश (अधिक-से-अधिक 1 या 2% ही) पढ़-लिख और समझ सकता था, देश की राजभाषा नहीं बन सकती थी। लेकिन यकायक अंग्रेजी को छोड़ने में भी दिक्कतें थीं। प्रायः 150 वर्षों से अंग्रेजी प्रशासन और उच्च शिक्षा की भाषा रही थी। हिन्दी देश की 46% जनता की भाषा थी। राजभाषा बनने के लिए हिन्दी का दावा न्यायमुक्त था। साथ ही, प्रादेशिक भाषाओं की भी सर्वथा उपेक्षा नहीं की जा सकती थी।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने राजभाषा की समस्या को हल करने की कोशिश की। संविधान सभा के भीतर और बाहर हिन्दी के विपुल समर्थन को देखकर संविधान सभा ने हिन्दी के पक्ष में अपना फैसला दिया। यह फैसला हिन्दी विरोधी एवं हिन्दी समर्थकों के बीच 'मुंशी-आयंगार फॉर्मूले' के द्वारा समझौते के परिणामस्वरूप सामने आया, जिसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार थीं:

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बल्कि राजभाषा है,

संविधान के लागू होने के दिन से 15 वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी बनी रहेगी,

एक अस्पष्ट निर्देश के आधार पर हिन्दी एवं हिन्दुस्तानी के विवाद को दूर कर लिया गया।

संविधान के भाषा-विषयक उपबंध 8वीं अनुसूची में दिए गए हैं। संविधान के ये भाषा-विषयक उपबंध हिन्दी, अंग्रेजी एवं प्रादेशिक भाषाओं के परस्पर विरोधी दावों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

भारत के संविधान में राजभाषा से संबंधित भाग-17

अनुच्छेद 120. संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा

भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा परंतु, यथास्थिति, राज्य सभा का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिंदी में या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृ-भाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा। जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेजी में" शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो।

अनुच्छेद 210: **विधान-मंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा**

भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा परंतु, यथास्थिति, विधान सभा का अध्यक्ष या विधान परिषद् का सभापति अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो पूर्वोक्त भाषाओं में से किसी भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेजी में " शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो परंतु हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा राज्यों के विधान-मंडलों के संबंध में, यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानो इसमें आने वाले "पंद्रह वर्ष"शब्दों के स्थान पर "पच्चीस वर्ष" शब्द रख दिए गए हों: परंतु यह और कि अरूणाचल प्रदेश, गोवा और मिजोरम राज्यों के विधान-मंडलों के संबंध में यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानो इसमें आने वाले "पंद्रह वर्ष " शब्दों के स्थान पर "चालीस वर्ष" शब्द रख दिए गए हों।

अनुच्छेद 343. संघ की राजभाषा

संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी, संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, जिनके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद् उक्त पन्द्रह वर्ष की अवधि के पश्चात्, विधि द्वारा:

(क) अंग्रेजी भाषा का, या

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी, जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

अनुच्छेद 344. राजभाषा के संबंध में आयोग और संसद की समिति

राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात् ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा, एक आयोग गठित करेगा, जो एक अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा, जिनको राष्ट्रपति नियुक्त करे और आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को–

(क) संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग,

(ख) संघ के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निबंधनों,

(ग) अनुच्छेद 348 में उल्लिखित सभी या किन्हीं प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा,

(घ) संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप,

(ङ) संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और उनके प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्देशित किए गए किसी अन्य विषय, के बारे में सिफारिश करे।

खंड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में, आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का और लोक सेवाओं के संबंध में अहिंदी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों के न्यायसंगत दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा।

एक समिति गठित की जाएगी जो तीस सदस्यों से मिलकर बनेगी, जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे और दस राज्य सभा के सदस्य होंगे जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों और राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

समिति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करे और राष्ट्रपति को उन पर अपनी राय के बारे में प्रतिवेदन दे।

अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति खंड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् उस संपूर्ण प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश दे सकेगा।

प्रादेशिक भाषाएँ

अनुच्छेद 345. राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं

अनुच्छेद 346 और अनुच्छेद 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिंदी को उस राज्य के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार कर सकेगा:

परंतु जब तक राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, अन्यथा उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतर उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

अनुच्छेद 346. एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा-

संघ में शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने के लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य और संघ

के बीच पत्रादि की राजभाषा होगी। परंतु यदि दो या अधिक राज्य यह करार करते हैं कि उन राज्यों के बीच पत्रादि की राजभाषा हिंदी भाषा होगी तो ऐसे पत्रादि के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

अनुच्छेद 347. किसी राज्य की जनसंख्या के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध

यदि इस निमित्त मांग किए जाने पर राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए, जो वह विनिर्दिष्ट करे, शासकीय मान्यता दी जाए।

उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

अनुच्छेद 348. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा–

इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक

(क) उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होंगी,

(ख) (i) संसद् के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन में पुर:स्थापित किए जाने वाले सभी विधेयकों या प्रस्तावित किए जाने वाले उनके संशोधनों के,

(ii) संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित सभी अधिनियमों के और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित सभी अध्यादेशों के, और

(iii) इस संविधान के अधीन अथवा संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन निकाले गए या बनाए गए सभी आदेशों, नियमों, विनियमों और उपविधियों के, प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे।

खंड (1)के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में, जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, हिन्दी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा:

परंतु इस खंड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश को लागू नहीं होगी।

खंड (1) के उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी राज्य के विधान-मंडल ने, उस विधान-मंडल में पुर:स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखंड के पैरा में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां उस राज्य के राजपत्र में उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद इस अनुच्छेद के अधीन उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

अनुच्छेद 349. भाषा से संबंधित कुछ विधियां अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया

इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि के दौरान, अनुच्छेद 348 के खंड (1) में उल्लिखित किसी प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबंध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना पुर:स्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा और राष्ट्रपति किसी ऐसे विधेयक को पुर:स्थापित या किसी ऐसे संशोधन को प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर और उस अनुच्छेद के खंड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ही देगा, अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 350. व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा

प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।

अनुच्छेद 350 (क)प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं

प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निदेश दे सकेगा, जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

अनुच्छेद 350 (ख)भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए विशेष अधिकारी

भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा, जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

विशेष अधिकारी का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन विषयों के संबंध में ऐसे अंतरालों पर जो' राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और संबंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

अनुच्छेद 351. हिंदी भाषा के विकास के लिए निदेश

संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहां उसके शब्द-भंडार के लिए, मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।,

राष्ट्रपति के आदेश, 1960

(गृह मंत्रालय की दि। 27अप्रैल, 1960की अधिसूचना संख्या 2.8.60-रा. भा., की प्रतिलिपि)

अधिसूचना

राष्ट्रपति का निम्नलिखित आदेश आम जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाता है– नई दिल्ली, दिनांक 27अप्रैल, 1960

आदेश

लोकसभा के 20 सदस्यों और राज्य सभा के 10 सदस्यों की एक समिति प्रथम-राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार करने लिए और उनके विषय में अपनी राय राष्ट्रपति के समक्ष पेश करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 344 के खंड (4) के उपबंधों के अनुसार नियुक्त की गई थी। समिति ने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति के समक्ष 8 फरवरी, 1959 को पेश कर दी। नीचे रिपोर्ट की कुछ मुख्य बातें दी जा रही हैं जिनसे समिति के सामान्य दृष्टिकोण का परिचय मिल सकता है–

(क) राजभाषा के बारे में संविधान में बड़ी समन्वित योजना दी हुई है। इसमें योजना के दायरे से बाहर जाए बिना स्थिति के अनुसार परिवर्तन करने की गुंजाइश है।

(ख) विभिन्न प्रादेशिक भाषाएं राज्यों में शिक्षा और सरकारी काम-काज के माध्यम के रूप में तेजी से अंग्रेजी का स्थान ले रही हैं। यह स्वाभाविक ही है कि प्रादेशिक भाषाएं अपना उचित स्थान प्राप्त करें। अत: व्यावहारिक दृष्टि से यह बात आवश्यक हो गई है कि संघ के प्रयोजनों के लिए कोई एक भारतीय भाषा काम में लाई जाए। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह परिवर्तन किसी नियत तारीख को ही हो। यह परिवर्तन धीरे-धीरे इस प्रकार किया जाना चाहिए कि कोई गड़बड़ी न हो और कम से कम असुविधा हो।

(ग) 1965 तक अंग्रेजी मुख्य राजभाषा और हिन्दी सहायक राजभाषा रहनी चाहिए। 1965 के उपरान्त जब हिन्दी संघ की मुख्य राजभाषा हो जाएगी, अंग्रेजी सहायक राजभाषा के रूप में ही चलती रहनी चाहिए।

(घ) संघ के प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी के प्रयोग पर कोई रोक इस समय नहीं लगाई जानी चाहिए और अनुच्छेद 343 के खंड (3) के अनुसार इस बात की व्यवस्था की जानी चाहिए कि

1965 के उपरान्त भी अंग्रेजी का प्रयोग इन प्रयोजनों के लिए, जिन्हें संसद विधि द्वारा उल्लिखित करे तब तक होता रहे जब तक वैसा करना आवश्यक रहे।

(ड) अनुच्छेद 351 का यह उपबन्ध कि हिन्दी का विकास ऐसे किया जाए कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इस बात के लिए पूरा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए कि सरल और सुबोध शब्द काम में लाए जाएं।

रिपोर्ट की प्रतियां संसद के दोनों सदनों के पटल पर 1959 के अप्रैल मास में रख दी गई थीं और रिपोर्ट पर विचार-विमर्श लोक सभा में 2 सितम्बर से 4 सितम्बर, 1959 तक और राज्य सभा में 8 और 9 सितम्बर, 1959 को हुआ था। लोक सभा में इस पर विचार-विमर्श के समय प्रधानमंत्री ने 4 सितम्बर, 1959 को एक भाषण दिया था। राजभाषा के प्रश्न पर सरकार का जो दृष्टिकोण है उसे उन्होंने अपने इस भाषण में मोटे तौर पर व्यक्त कर दिया था।

2. अनुच्छेद 344 के खंड (6) द्वारा दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने समिति की रिपोर्ट पर विचार किया है और राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर समिति द्वारा अभिव्यक्त राय को ध्यान में रखकर, इसके बाद निम्नलिखित निदेश जारी किए हैं।

3. शब्दावली-

आयोग की जिन मुख्य सिफारिशों को समिति ने मान लिया वे ये हैं-

(क) शब्दावली तैयार करने में मुख्य लक्ष्य उसकी स्पष्टता, यथार्थता और सरलता होनी चाहिए,

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली अपनाई जाए, या जहां भी आवश्यक हो, अनुकूलन कर लिया जाए,

(ग) सब भारतीय भाषाओं के लिए शब्दावली का विकास करते समय लक्ष्य यह होना चाहिए कि उसमें जहां तक हो सके अधिकतम एकरूपता हो, और

(घ) हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली के विकास के लिए जो प्रयत्न केन्द्र और राज्यों में हो रहे हैं उनमें समन्वय स्थापित करने के लिए समुचित प्रबन्ध किए जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त समिति का यह मत है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सब

भारतीय भाषाओं में जहां तक हो सके एकरूपता होनी चाहिए और शब्दावली लगभग अंग्रेजी या अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली जैसी होनी चाहिए। इस दृष्टि से समिति ने यह सुझाव दिया है कि वे इस क्षेत्र में विभिन्न संस्थाओं द्वारा किए गए काम में समन्वय स्थापित करने और उसकी देखरेख के लिए और सब भारतीय भाषाओं को प्रयोग में लाने की दृष्टि से एक प्रामाणिक शब्दकोश निकालने के लिए ऐसा स्थाई आयोग कायम किया जाए जिसके सदस्य मुख्यतः वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीविद् हों।

शिक्षा मंत्रालय निम्नलिखित विषय में कार्रवाई करें-

(क) अब तक किए गए काम पर पुनर्विचार और समिति द्वारा स्वीकृत सामान्य सिद्धान्तों के अनुकूल शब्दावली का विकास विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वे शब्द, जिनका प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में होता है, कम से कम परिवर्तन के साथ अपना लिए जाएं, अर्थात् मूल शब्द वे होने चाहिए जो कि आजकल अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली में काम आते हैं। उनसे ब्युत्पन्न शब्दों का जहां भी आवश्यक हो भारतीयकरण किया जा सकता है:

(ख) शब्दावली तैयार करने के काम में समन्वय स्थापित करने के लिए प्रबन्ध करने के विषय में सुझाव देना, और

(ग) विज्ञान और तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए समिति के सुझाव के अनुसार स्थाई आयोग का निर्माण।

4. प्रशासनिक संहिताओं और अन्य कार्य-विधि साहित्य का अनुवाद-

इस आवश्यकता को दृष्टि में रखकर कि संहिताओं और अन्य कार्यविधि साहित्य के अनुवाद में प्रयुक्त भाषा में किसी हद तक एकरूपता होनी चाहिए, समिति ने आयोग की यह सिफारिश मान ली है कि सारा काम एक अभिकरण को सौंप दिया जाए।

शिक्षा मंत्रालय सांविधिक नियमों, विनियम और आदेशों के अलावा बाकी सब संहिताओं और अन्य कार्यविधि साहित्य का अनुवाद करे। सांविधिक नियमों, विनियमों और आदेशों का अनुवाद संविधियों के अनुवाद के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है, इसलिए यह काम विधि मंत्रलय करे। इस बात का पूरा प्रयत्न होना चाहिए कि सब भारतीय भाषाओं में इन अनुवादों को शब्दावली में जहां तक हो सके एकरूपता रखी जाए।

5. प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग को हिन्दी का प्रशिक्षण–

समिति द्वारा अभिव्यक्त मत के अनुसार 45वर्ष से कम आयु वाले सब केन्द्रीय कर्मचारियों के लिए सेवा कालीन हिन्दी प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। तृतीय श्रेणी के ग्रेड से नीचे के कर्मचारियों और औद्योगिक संस्थाएं और कार्य प्रभारित कर्मचारियों के संबंध में यह बात लागू न होगी। इस योजना के अन्तर्गत नियत तारीख तक विहित योग्यता प्राप्त कर सकने के लिए कर्मचारी को कोई दंड नहीं किया जाना चाहिए। हिन्दी भाषा की पढ़ाई के लिए सुविधाएं प्रशिक्षार्थियों को मुफ्त मिलती रहनी चाहिए।

गृह मंत्रालय उन टाइपकारों और आशुलिपिकों का हिन्दी टाइपराइटिंग और आशुलिपि प्रशिक्षण देने के लिए आवश्यक प्रबन्ध करे जो केन्द्रीय सरकार की नौकरी में हैं।

शिक्षा मंत्रालय हिन्दी टाइपराइटरों के मानक की–बोर्ड (कुंजीपटल) के विकास के लिए शीघ्र कदम उठाए।

6. हिन्दी प्रचार–

(क) आयोग की इस सिफारिश से कि यह काम करने की जिम्मेदारी अब सरकार उठाए, समिति सहमत हो गई है। जिन क्षेत्रों में प्रभावी रूप से काम करने वाली गैर सरकारी संस्थाएं पहले से ही विद्यमान हैं उनमें उन संस्थाओं को वित्तीय और अन्य प्रकार की सहायता दी जाए और जहां ऐसी संस्थाएं नहीं हैं वहां सरकार आवश्यक संगठन कायम करे।

शिक्षा मंत्रालय इस बात की समीक्षा करे कि हिन्दी प्रचार के लिए जो वर्तमान व्यवस्था है वह कैसी चल रही है। साथ ही वह समिति द्वारा सुझाई गई दिशाओं में आगे कार्रवाई करे।

(ख) शिक्षा मंत्रालय और वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रलय परस्पर मिलकर भारतीय भाषा, विज्ञान भाषा–शास्त्र और साहित्य सम्बन्धी अध्ययन और अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के लिए समिति द्वारा सुझाए गए तरीके से आवश्यक कार्रवाई करें और विभिन्न भारतीय भाषाओं को परस्पर निकट लाने के लिए अनुच्छेद 351में दिए गए निदेश के अनुसार हिन्दी का विकास करने के लिए आवश्यक योजना तैयार करें।

7. केन्द्रीय सरकारी विभाग के स्थानीय कार्यालयों के लिए भर्ती–

(क) समिति की राय है कि केन्द्रीय सरकारी विभागों के स्थानीय कार्यालय अपने आन्तरिक कामकाज के लिए हिन्दी का प्रयोग करें और जनता के साथ पत्र-व्यवहार में उन प्रदेशों की प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग करें। अपने स्थानीय कार्यालयों में अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी का उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग करने के वास्ते योजना तैयार करने में केन्द्रीय सरकारी विभाग इस आवश्यकता को ध्यान में रखें कि यथासंभव अधिक से अधिक मात्रा में प्रादेशिक भाषाओं में फार्म और विभागीय साहित्य उपलब्ध करा कर वहां की जनता को पूरी सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए।

(ख) समिति की राय है कि केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक अभिकरणों और विभागों में कर्मचारियों की वर्तमान व्यवस्था पर पुनर्विचार किया जाए, कर्मचारियों का प्रादेशिक आधार पर विकेन्द्रीकरण कर दिया जाए, इसके लिए भर्ती के तरीकों और अर्हताओं में उपयुक्त संशोधन करना होगा।

स्थानीय कार्यालयों में जिन कोटियों के पदों पर कार्य करने वालों की बदली मामूली तौर पर प्रदेश के बाहर नहीं होती उन कोटियों के सम्बन्ध में यह सुझाव, कोई अधिवास सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाए बिना, सिद्धान्ततः मान लिया जाना चाहिए।

(ग) समिति आयोग की इस सिफारिश से सहमत है कि केन्द्रीय सरकार के लिए यह विहित कर देना न्यायसम्मत होगा कि उसकी नौकरियों में लगने के लिए अर्हता यह भी होगी कि उम्मीदवार को हिन्दी भाषा का सम्यक ज्ञान हो। पर ऐसा तभी किया जाना चाहिए, जबकि इसके लिए काफी पहले से ही सूचना दे दी गई हो और भाषा-योग्यता का विहित स्तर मामूली हो और इस बारे में जो भी कमी हो उसे सेवाकालीन प्रशिक्षण द्वारा पूरा किया जा सकता है।

यह सिफारिश अभी हिन्दी भाषी क्षेत्रों के केन्द्रीय सरकारी विभागों में ही कार्यान्वित की जाए, हिन्दीतर भाषा-भाषी क्षेत्रों के स्थानीय कार्यालयों में नहीं।

(क), (ख) और (ग) में दिए गए निदेश भारतीय लेखा-परीक्षा और लेखा विभाग के अधीन कार्यालयों के सम्बन्ध में लागू न होंगे।

8. प्रशिक्षण संस्थान

(क) समिति ने यह सुझाव दिया है कि नेशनल डिफेंस एकेडमी जैसे प्रशिक्षण संस्थानों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही बना रहे किन्तु शिक्षा सम्बन्धी कुछ या सभी प्रयोजनों के लिए माध्यम के रूप में हिन्दी का प्रयोग शुरू करने के लिए उचित कदम उठाए जाएं। रक्षा मंत्रालय अनुदेश पुस्तिकाओं इत्यादि के हिन्दी प्रकाशन आदि के रूप में समुचित प्रारम्भिक कार्रवाई करें, ताकि जहां भी व्यवहार्य हो शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी का प्रयोग सम्भव हो जाए।

(ख) समिति ने सुझाव दिया कि प्रशिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए, अंग्रेजी और हिन्दी दोनों ही परीक्षा के माध्यम हों, किन्तु परिक्षार्थियों का यह विकल्प रहे कि वे सब या कुछ परीक्षा पत्रों के लिए उनमें से किसी एक भाषा को चुन लें और एक विशेष समिति यह जांच करने के लिए नियुक्त की जाए कि नियत कोटा प्रणाली अपनाए बिना प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग परीक्षा के माध्यम के रूप में कहां तक शुरू किया जा सकता है।

रक्षा मंत्रालय को चाहिए कि वह प्रवेश परीक्षाओं में वैकल्पिक माध्यम के रूप में हिन्दी का प्रयोग शुरू करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करे और कोई नियत कोटा प्रणाली अपनाए बिना परीक्षा के माध्यम के रूप में प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग आरम्भ करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त करे।

9. अखिल भारतीय सेवाओं और उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती

(क) परीक्षा का माध्यम-समिति कि राय है कि अ) परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना रहे और कुछ समय पश्चात् हिन्दी वैकल्पिक माध्यम के रूप में अपना ली जाए। उसके बाद जब तक आवश्यक हो अंग्रेजी और हिन्दी दोनों ही परीक्षार्थी के विकल्पानुसार परीक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने की छूट हो, और

(ब)किसी प्रकार की नियत कोटा प्रणाली अपनाए बिना परीक्षा के माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग शुरू करने की व्यवहार्यता की जांच करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की जाए।

कुछ समय के पश्चात् वैकल्पिक माध्यम के रूप में हिन्दी का प्रयोग शुरू करने के लिए संघ लोक सेवा आयोग के साथ परामर्श कर गृह मंत्रालय आवश्यक कार्रवाई करे। वैकल्पिक माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग करने से गम्भीर कठिनाइयां पैदा होने की संभावना है, इसलिए वैकल्पिक माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग शुरू करने की व्यवहार्यता की जांच करने के लिए विशेषज्ञ समिति नियुक्त करना आवश्यक नहीं है।

(ख) भाषा विषयक प्रश्न-पत्र–समिति की राय है कि सम्यक सूचना के बाद समान स्तर के दो अनिवार्य प्रश्न-पत्र होने चाहिए जिनमें से एक हिन्दी और दूसरा हिन्दी से भिन्न किसी भारतीय भाषा का होना चाहिए और परीक्षार्थी को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह इनमें से किसी एक को चुन ले।

अभी केवल एक ऐच्छिक हिन्दी परीक्षा पत्र शुरू किया जाए। प्रतियोगिता के फल पर चुने गए जो परीक्षार्थी इस परीक्षा पत्र में उत्तीर्ण हो गए हों, उन्हें भर्ती के बाद जो विभागीय हिन्दी परीक्षा देनी होती है, उसमें बैठने और उसमें उत्तीर्ण होने की शर्त से छूट दी जाए।

10. अंक

जैसा कि समिति का सुझाव है केन्द्रीय मंत्रालयों का हिन्दी प्रकाशनों में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों के अतिरिक्त देवनागरी अंकों के प्रयोग के सम्बन्ध में एक आधारभूत नीति अपनाई जाए, जिसका निर्धारण इस आधार पर किया जाए कि वे प्रकाशन किस प्रकार की जनता के लिए हैं और उसकी विषयवस्तु क्या है। वैज्ञानिक, औद्योगिक और सांख्यिकीय प्रकाशनों में, जिसमें केन्द्रीय सरकार का बजट सम्बन्धी साहित्य भी शामिल है, बराबर अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग किया जाए।

11. अधिनियमों, विधेयकों इत्यादि की भाषा-

(क) समिति ने राय दी है कि संसदीय विधियां अंग्रेजी में बनती रहें किन्तु उनका प्रमाणिक हिन्दी अनुवाद उपलब्ध कराया जाए। संसदीय विधियां अंग्रेजी में तो रहें पर उसके प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद की व्यवस्था करने के वास्ते विधि मंत्रलय आवश्यक विधेयक उचित समय पर पेश करे। संसदीय विधियों का प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद कराने का प्रबन्ध भी विधि मंत्रालय करे।

(ख) समिति ने राय जाहिर की है, जहां कहीं राज्य विधान मण्डल में पेश किए गए विधेयकों या पास किए गए अधिनियमों का मूल पाठ हिन्दी में से भिन्न किसी भाषा में है, वहां अनुच्छेद 348 के खण्ड (3) के अनुसार अंग्रेजी अनुवाद के अलावा उसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया जाए।

राज्य की राजभाषा में पाठ के साथ-साथ राज्य विधेयकों, अधिनियमों और अन्य सांविधिक लिखतों के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन के लिए आवश्यक विधेयक उचित समय पर पेश किया जाए।

12. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की भाषा-

राजभाषा आयोग ने सिफारिश की थी कि जहां तक उच्चतम न्यायालय की भाषा का सवाल है उसकी भाषा इस परिवर्तन का समय आने पर अन्ततः हिन्दी होनी चाहिए। समिति ने यह सिफारिश मान ली है।

आयोग ने उच्च न्यायालयों की भाषा के विषय में प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दी के पक्ष-विपक्ष में विचार किया और सिफारिश की कि जब भी इस परिवर्तन का समय आए, उच्च न्यायालयों के निर्णयों, आज्ञप्तियों (डिक्रियों) और आदेशों की भाषा जब प्रदेशों में हिन्दी होनी चाहिए किन्तु समिति की राय है कि राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से आवश्यक विधेयक पेश करके यह व्यवस्था करने की गुंजाइश रहे कि उच्च न्यायालयों के निर्णयों, आज्ञप्तियों (डिक्रियों) और आदेशों के लिए उच्च न्यायालय में हिन्दी और राज्यों की राजभाषाएं विकल्पतः प्रयोग में लाई जा सकेंगी।

समिति की राय है कि उच्चतम न्यायालय अन्ततः अपना सब काम हिन्दी में करे, यह सिद्धान्त रूप में स्वीकार्य है और इसके संबंध में समुचित कार्यवाही उसी समय अपेक्षित होगी जब कि इस परिवर्तन के लिए समय आ जाएगा।

जैसा कि आयोग की सिफारिश की तरमीम करते हुए समिति ने सुझाव दिया है, उच्च न्यायालयों की भाषा के विषय में यह व्यवस्था करने के लिए आवश्यक विधेयक विधि मंत्रालय उचित समय पर राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से पेश करे कि निर्णयों, डिक्रियों और आदेशों के प्रयोजनों के लिए हिन्दी और राज्यों की राजभाषाओं का प्रयोग विकल्पतः किया जा सकेगा।

13. विधि क्षेत्र में हिन्दी में काम करने के लिए आवश्यक आरम्भिक कदम-

मानक विधि शब्दकोश तैयार करने, केन्द्र तथा राज्य के विधान निर्माण से संबंधित सांविधिक ग्रन्थ का अधिनियम करने, विधि शब्दावली तैयार करने

की योजना बनाने और जिस संक्रमण काल में सांविधिक ग्रंथ और साथ ही निर्णयविधि अंशत: हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे, उस अवधि में प्रारम्भिक कदम उठाने के बारे में आयोग ने जो सिफारिश की थी, उन्हें समिति ने मान लिया है। साथ ही समिति ने यह सुझाव भी दिया है कि संविधियों के अनुवाद और विधि शब्दावली तथा कोशों से संबंधित सम्पूर्ण कार्यक्रम की समुचित योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने के लिए भारत की विभिन्न राष्ट्रभाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विशेषज्ञों का एक स्थाई आयोग या इस प्रकार कोई उच्च स्तरीय निकाय बनाया जाए। समिति ने यह राय भी जाहिर की है कि राज्य सरकारों को परामर्श दिया जाए कि वे भी केन्द्रीय सरकार से राय लेकर इस संबंध में आवश्यक कार्रवाई करें। समिति के सुझाव को दृष्टि में रखकर विधि मंत्रालय यथासंभव सब भारतीय भाषाओं में प्रयोग के लिए सर्वमान्य विधि शब्दावली की तैयारी और संविधियों के हिन्दी में अनुवाद संबंधी पूरे काम के लिए समुचित योजना बनाने और पूरा करने के लिए विधि विशेषज्ञों के एक स्थाई आयोग का निर्माण करे।

14. हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के लिए योजना का कार्यक्रम–

समिति ने यह सुझाव दिया है कि संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की योजना संघ सरकार बनाए और कार्यान्वित करे। संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी के प्रयोग पर इस समय कोई रोक न लगाई जाए।

तदनुसार गृह मंत्रलय एक योजना कार्यक्रम तैयार करे और उसे अमल में लाने के संबंध में आवश्यक कार्रवाई करे। इस योजना का उद्देश्य होगा संघीय प्रशासन में बिना कठिनाई के हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के लिए प्रारम्भिक कदम उठाना और संविधान के अनुच्छेद 343 खंड (2) में किए गए उपबन्ध के अनुसार संघ के विभिन्न कार्यों में अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देना, अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी का प्रयोग कहां तक किया जा सकता है यह बात इन प्रारम्भिक कार्रवाइयों की सफलता पर बहुत कुछ निर्भर करेगी। इस बीच प्राप्त अनुभव के आधार पर अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी के वास्तविक प्रयोग की योजना पर समय-समय पर पुनर्विचार और उसमें हेर-फेर करना होगा।

राजभाषा अधिनियम, 1963

यथासंशोधित, 1967

1963 का अधिनियम संख्यांक 1।9

उन भाषाओं का, जो संघ के राजकीय प्रयोजनों, संसद में कार्य के संव्यवहार, केन्द्रीय और राज्य अधिनियमों और उच्च न्यायालयों में कतिपय प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाई जा सकेंगी, उपबन्ध करने के लिए अधिनियम। भारत गणराज्य के चौदहवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो:-

1. संक्षिप्त नाम और प्रारम्भ-

यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 कहा जा सकेगा।

धारा 3, जनवरी, 1965 के 26 वें दिन को प्रवृत्त होगी और इस अधिनियम के शेष उपबन्ध उस तारीख को प्रवृत्त होंगे जिसे केन्द्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और इस अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों के लिए विभिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी।

2. परिभाषाएं--इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,

(क) 'नियत दिन' से, धारा 3 के सम्बन्ध में, जनवरी, 1965 का 26वां दिन अभिप्रेत है और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के सम्बन्ध में वह दिन अभिप्रेत है जिस दिन को वह उपबन्ध प्रवृत्त होता है,

(ख) 'हिन्दी' से वह हिन्दी अभिप्रेत है, जिसकी लिपि देवनागरी है।

3. संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए और संसद में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का रहना-

(1) संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा, नियत दिन से ही,

(क) संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए वह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लाई जाती थी, तथा

(ख) संसद में कार्य के संव्यवहार के लिए प्रयोग में लाई जाती रह सकेगी।

परंतु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लाई जाएगी: परन्तु यह और कि जहां किसी ऐसे राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है और किसी अन्य राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, बीच पत्रादि के प्रयोजनों के लिए

हिन्दी को प्रयोग में लाया जाता है, वहां हिन्दी में ऐसे पत्रादि के साथ-साथ उसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भेजा जाएगा।

परन्तु यह और भी कि इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है, या किसी अन्य राज्य के साथ, उसकी सहमति से, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बाध्यकर न होगा।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी या अंग्रेजी भाषा-

(i) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और दूसरे मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के बीच

(ii) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी या उसके किसी कार्यालय के बीच

(iii) केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसे निगम या कम्पनी या कार्यालय के बीच।

प्रयोग में लाई जाती है वहां उस तारीख तक, जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग, कार्यालय या विभाग या कम्पनी का कर्मचारी हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद, यथास्थिति, अंग्रेजी भाषा या हिन्दी में भी दिया जाएगा।

(3) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी हिन्दी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही।

(क) संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कम्पनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं,

(ख) संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागज-पत्रों के लिए,

(ग) केन्द्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कम्पनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञिप्तियों, अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं और निविदा-प्ररूपों के लिए, प्रयोग में लाई जाएगी।

(क) उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि केन्द्रीय सरकार धारा 8 के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उन भाषाओं का उपबन्ध कर सकेगी जिसे या जिन्हें संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए, जिसके अन्तर्गत किसी मंत्रालय, विभाग, अनुभाग या कार्यालय का कार्यकरण है, प्रयोग में लाया जाना है और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य के शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जन साधारण के हितों का सम्यक ध्यान रखा जाएगा और इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ के कार्यकलाप के सम्बन्ध में सेवा कर रहे हैं और जो या तो हिन्दी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं वे प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें और यह भी कि केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं है उनका कोई अहित नहीं होता है

(5) उपधारा (1) के खंड (क) के उपबन्ध और उपधारा (2), उपधारा (3) और उपधारा (4), के उपबन्ध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा, जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित नहीं कर दिए जाते और जब तक पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद के हर एक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता।

4. राजभाषा के सम्बन्ध में समिति

जिस तारीख को धारा 3 प्रवृत्त होती है, उससे दस वर्ष की समाप्ति के पश्चात्, राजभाषा के सम्बन्ध में एक समिति, इस विषय का संकल्प संसद के किसी भी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी से प्रस्तावित और दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने पर, गठित की जाएगी।

इस समिति में तीस सदस्य होंगे जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य सभा के सदस्य होंगे, जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों तथा राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

इस समिति का कर्त्तव्य होगा कि वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग में की गई प्रगति का पुनर्विलोकन करें और उस पर सिफारिशें करते हुए राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करें और राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन को संसद् के हर एक सदन के समक्ष रखवाएगा और सभी राज्य सरकारों को भिजवाएगा।

राष्ट्रपति उपधारा (3) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर और उस पर राज्य सरकारों ने यदि कोई मत अभिव्यक्त किए हों तो उन पर विचार करने के पश्चात्दरयउस समस्त प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश निकाल सकेगा।

परन्तु इस प्रकार निकाले गए निदेश धारा 3 के उपबन्धों से असंगत नहीं होंगे।

5. केन्द्रीय अधिनियमों आदि का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद-

(क) किसी केन्द्रीय अधिनियम का या राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश का, अथवा

(ख) संविधान के अधीन या किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन निकाले गए किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि का हिन्दी में अनुवाद उसका हिन्दी में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

नियत दिन को और उसके पश्चात् शासकीय राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित।

नियत दिन से ही उन सब विधेयकों के, जो संसद के किसी भी सदन में पुरःस्थापित किए जाने हों और उन सब संशोधनों के, जो उनके समबन्ध में संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जाने हों, अंग्रेजी भाषा के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनका हिन्दी में अनुवाद भी होगा जो ऐसी रीति से प्राधिकृत किया जाएगा, जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए।

6. कतिपय दशाओं में राज्य अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद-

जहां किसी राज्य के विधानमण्डल ने उस राज्य के विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में प्रयोग के लिए हिन्दी से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां, संविधान के

अनुच्छेद 348 के खण्ड (3) द्वारा अपेक्षित अंग्रेजी भाषा में उसके अनुवाद के अतिरिक्त, उसका हिन्दी में अनुवाद उस राज्य के शासकीय राजपत्र में, उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से, नियत दिन को या उसके पश्चात् प्रकाशित किया जा सकेगा और ऐसी दशा में ऐसे किसी अधिनियम या अध्यादेश का हिन्दी में अनुवाद हिन्दी भाषा में उसका प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।?

7 .उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग–

नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहां उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा।

8. नियम बनाने की शक्ति–

केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी।

इस धारा के अधीन बनाया गया हर नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद के हर एक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा। वह अवधि एक सत्र में, अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी। यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रममिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात वह ऐसे परिवर्तित रुप में ही प्रभावी होगा। यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात यह निस्प्रभाव हो जाएगा। किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निस्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

9. कतिपय उपबन्धों का जम्मू-कश्मीर को लागू न होना–

धारा 6 और धारा 7 के उपबन्ध जम्मू-कश्मीर राज्य को लागू न होंगे।

राजभाषा संकल्प, 1968

संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित निम्नलिखित सरकारी संकल्प आम जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाता है-

संकल्प

"जबकि संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी रहेगी और उसके अनुच्छेद 351 के अनुसार हिंदी भाषा का प्रसार, वृद्धि करना और उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, संघ का कर्त्तव्य है।

1. यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी के प्रसार एंव विकास की गति बढ़ाने के हेतु तथा संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए उत्तरोत्तर इसके प्रयोग हेतु भारत सरकार द्वारा एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा और किए जाने वाले उपायों एवं की जाने वाली प्रगति की विस्तृत वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद की दोनों सभाओं के पटल पर रखी जाएगी और सब राज्य सरकारों को भेजी जाएगी।
2. जबकि संविधान की आठवीं अनुसूची में हिंदी के अतिरिक्त भारत की 21 मुख्य भाषाओं का उल्लेख किया गया है, और देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि इन भाषाओं के पूर्ण विकास हेतु सामूहिक उपाए किए जाने चाहिए।

   यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी के साथ-साथ इन सब भाषाओं के समन्वित विकास हेतु भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से एक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा ताकि वे शीघ्र समृद्ध हो और आधुनिक ज्ञान के संचार का प्रभावी माध्यम बनें।
3. जबकि एकता की भावना के संवर्धन तथा देश के विभिन्न भागों में जनता में संचार की सुविधा हेतु यह आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से तैयार किए गए त्रि-भाषा सूत्र को सभी राज्यों में पूर्णत कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी किया जाना चाहिए। और जबकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संघ की लोक सेवाओं के विषय में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों का पूर्ण परित्रण किया जाए

यह सभा संकल्प करती है कि-

(क) कि उन विशेष सेवाओं अथवा पदों को छोड़कर जिनके लिए ऐसी किसी सेवा अथवा पद के कर्त्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन हेतु केवल अंग्रेजी अथवा केवल हिंदी अथवा दोनों जैसी कि स्थिति हो, का उच्च स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिंदी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्यत होगा, और

(ख) कि परीक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंधी पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात् अखिल भारतीय एवं उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी।"

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग)

नियम, 1976

(यथा संशोधित, 1987, 2007 तथा 2011)

सा.का.नि. 1052 --राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19)की धारा 3 की उपधारा (4)के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात्:-

1.संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ-

(क) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है।

(ख) इनका विस्तार, तमिलनाडु राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है।

(ग) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. परिभाषाएं- इन नियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो:-

(क) 'अधिनियम' से राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19)अभिप्रेत है,

(ख) 'केन्द्रीय सरकार के कार्यालय' के अन्तर्गत निम्नलिखित भी है, अर्थात्:-

(ग) 'कर्मचारी' से केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है,

(घ) 'अधिसूचित कार्यालय' से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय अभिप्रेत है,

(ड़) 'हिन्दी में प्रवीणता' से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत है ,

(च) 'क्षेत्र क' से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड़, उत्तराखंड राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है,

(छ) 'क्षेत्र ख' से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं,

(ज) 'क्षेत्र ग' से खंड (च) और (छ) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है,

(झ) 'हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान' से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत है।

3. राज्यों आदि और केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों के साथ पत्रादि-

(1) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क' में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि असाधारण दशाओं को छोड़कर हिन्दी में होंगे और यदि उनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

(2) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से-

(क) क्षेत्र 'ख' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) को पत्रादि सामान्यतया हिन्दी में होंगे और यदि इनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा: परन्तु यदि कोई ऐसा राज्य

या संघ राज्य क्षेत्र यह चाहता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि या उसके किसी कार्यालय के लिए आशयित पत्रादि संबद्ध राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि तक अंग्रेजी या हिन्दी में भेजे जाएं और उसके साथ दूसरी भाषा में उसका अनुवाद भी भेजा जाए तो ऐसे पत्रदि उसी रीति से भेजे जाएंगे,

(ख) क्षेत्र 'ख' के किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को पत्रदि हिन्दी या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं।

(3) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'ग' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रदि अंग्रेजी में होंगे।

(4) उप नियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, क्षेत्र 'ग' में केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क' या 'ख' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं। परन्तु हिन्दी में पत्रदि ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे।

4. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि-

(क) केन्द्रीय सरकार के किसी एक मंत्रालय या विभाग और किसी दूसरे मंत्रलय या विभाग के बीच पत्रदि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं,

(ख) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क्षेत्र 'क' में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार, ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रदि भेजने की सुविधाओं और उससे संबंधित आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अवधारित करे,

(ग) क्षेत्र 'क' में स्थित केन्द्रीय सरकार के ऐसे कार्यालयों के बीच, जो खण्ड (क) या खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट कार्यालयों से भिन्न हैं, पत्रादि हिन्दी में होंगे,

(घ) क्षेत्र 'क' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों और क्षेत्र 'ख' या 'ग 'में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं,

परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे,

(ङ) क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रदि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं, परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे, जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे

परन्तु जहां ऐसे पत्रादि

(अ) क्षेत्र 'क' या क्षेत्र 'ख' किसी कार्यालय को संबोधित हैं वहां यदि आवश्यक हो तो, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, पत्रादि प्राप्त करने के स्थान पर किया जाएगा,

(आ) क्षेत्र 'ग' में किसी कार्यालय को संबोधित है वहां, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, उनके साथ भेजा जाएगाय

परन्तु यह और कि यदि कोई पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को संबोधित है तो दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।

5. हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर-

नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के उत्तर केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से हिन्दी में दिए जाएंगे।

6. हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग-

अधिनियम की धारा 3की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसी दस्तावेजें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार की जाती हैं, निष्पादित की जाती हैं और जारी की जाती हैं।

7. आवेदन, अभ्यावेदन आदि-

कोई कर्मचारी आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकता है।

जब उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी में किया गया हो या उस पर हिन्दी में हस्ताक्षर किए गए हों, तब उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा।

यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा संबंधी विषयों (जिनके अन्तर्गत अनुशासनिक कार्यवाहियां भी हैं) से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिन्दी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे असम्यक विलम्ब के बिना उसी भाषा में दी जाएगी।

8. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणों का लिखा जाना -

कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत्त हिंदी या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करे।

केन्द्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिन्दी में किसी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की मांग तभी कर सकता है, जब वह दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है, अन्यथा नहीं।

यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विशिष्ट दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है या नहीं तो विभाग या कार्यालय का प्रधान उसका विनिश्चय करेगा।

उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसे अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा, जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाएगा।

9. हिन्दी में प्रवीणता-यदि किसी कर्मचारी ने-

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिन्दी के माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है, या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो, या

(ग) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है।

10. हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान–

(1) (क) यदि किसी कर्मचारी ने–

(अ) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दीविषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है, या

(आ) केन्द्रीय सरकार की हिन्दी परीकक्षा योजना के अन्तर्गत आयोजित प्राज्ञपरीक्षा या यदि उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के सम्बन्ध में उस योजना के अन्तर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, या

(इ) केन्द्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्णकर ली है, या

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है,

तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

(2) यदि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिन्दी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतया यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

(3) केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारित कर सकता है कि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय के कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं।

(4) केन्द्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे,

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार की राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों का प्रतिशत किसी तारीख में से उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत से कम हो गया

है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रह जाएगा।

11. मैनुअल, संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री आदि–

(1) केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में यथास्थिति, मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा।

(2) केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्ररूप और शीर्षक हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे।

(3) केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी नामपट्ट, सूचना पट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होंगीय

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों से छूट दे सकती है।

12. अनुपालन का उत्तरदायित्व–

(1) केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह–

(अ) यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों और उपनियम (2) के अधीन जारी किए गए निदेशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है, और

(आ) इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करे।

(2) केन्द्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों के सम्यक अनुपालन के लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय-समय पर आवश्यक निदेश जारी कर सकती है।

भारत का राजपत्र, भाग-2, खंड 3, उपखंड (प)में प्रकाशनार्थ,

भारत सरकार,

गृह मंत्रालय,

राजभाषा विभाग,

नई दिल्ली, दिनांक: अगस्त, 2007

अधिसूचना

का.आ. (अ). -- केन्द्रीय सरकार, राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 3की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 का और संशोधन करने के लिए निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात:-

1. (1) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) संशोधन नियम, 2007 है।

(2) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 में-

नियम 2 के खंड (च) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाएगा, अर्थात्-

(च) 'क्षेत्र 'क' से बिहार, छत्तीसगढ, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं, '

(पी.वी.वल्सला जी.कुट्टी) संयुक्त सचिव, भारत सरकार

भारत के राजपत्र, भाग-II, खंड 3, उपखंड (प) में प्रकाशित,

पृष्ठ संख्या 576-577

दिनांक 14-5-2011

भारत सरकार

गृह मंत्रालय

राजभाषा विभाग

नई दिल्ली, 4 मई, 2011

अधिसूचना

सा.का.नि.145 केन्द्रीय सरकार, राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 का और संशोधन करने के लिए निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात्-

1. (1) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) संशोधन नियम, 2011 है।

(2) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 के नियम 2 के खण्ड (छ) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाएगा, अर्थात्-

'(छ)"क्षेत्र ख"से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं,

डी.के.पाण्डेय, संयुक्त सचिव

संघ की राजभाषा नीति

संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी है। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतराष्ट्रीय रूप है संविधान का अनुच्छेद 343 (1)À।

परन्तु हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा का प्रयोग भी सरकारी कामकाज में किया जा सकता है (राजभाषा अधिनियम की धारा 3)।

संसद का कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जा सकता है। परन्तु राज्यसभा के सभापति महोदय या लोकसभा के अध्यक्ष महोदय विशेष परिस्थिति में सदन के किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकते हैं। ¿संविधान का अनुच्छेद 120À

किन प्रयोजनों के लिए केवल हिंदी का प्रयोग किया जाना है, किन के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है और किन कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाना है, यह राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा नियम 1976 और उनके अंतर्गत समय समय पर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रलय की ओर से जारी किए गए निदेशों द्वारा निर्धारित किया गया है।

राजभाषा नीति संबंधी आदेश

(1) राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के दिनांक 24.11.95 के का. ज्ञा. सं. 12021/5/95-रा.भा. (कार्या.।।) से उद्धरण-मैनुअलों, फार्मों, कोडों आदि की हिन्दी-अंग्रेजी द्विभाषी (डिगलॉट रूप में) छपाई।

मैनुअल, फार्म, कोड आदि हिन्दी-अंग्रेजी (डिगलॉट रूप में) द्विभाषी छपवाए जाएं। फार्मों आदि के हिन्दी शीर्षक पहले दिए जाएं और अंग्रेजी

शीर्षक बाद में। हिन्दी अक्षरों के टाइप अंग्रेजी से छोटे न हों। सभी मंत्रालय-विभाग अपने नियंत्रणाधीन प्रेस तथा अन्य कार्यालयों को आवश्यक अनुदेश जारी करें कि वे कोई भी सामग्री केवल अंग्रेजी में छापने के लिए स्वीकार न करें।

शहरी विकास मंत्रालय की ओर से प्रकाशन निदेशालय को अनुदेश है कि कोड/मैनुअल आदि को छपाई के लिए तभी स्वीकार किया जाए जब वे द्विभाषी रूप में हों।

संदर्भ–प्रश्नावली के भाग -II की मद सं.- 5,

राजभाषा नियम, 1976 के नियम 3 के उपबंधों के अधीन केन्द्रीय सरकार के 'क' और 'ख' क्षेत्रों में स्थित सभी मंत्रलयों विभागों कार्यालयों उपक्रमों कम्पनियों आदि द्वारा 'क' क्षेत्र में स्थित राज्यों या संघ क्षेत्रों या उनके अधीन कार्यालयों के साथ पत्र-व्यवहार हिन्दी में किया जाना आवश्यक है।

राजभाषा नियम, 1976 में की गई उपर्युक्त व्यवस्था का अनुपालन सही ढंग से तभी हो सकता है जबकि क्षेत्र की राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्र के प्रशासनों से मूल पत्रचार हिन्दी में किया जाए और उनसे कोई पत्र अंग्रेजी में भी आए तो उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाए।

संदर्भ–प्रश्नावली के भाग - III की मद सं. 1 (ख),

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के दिनांक 21 जुलाई, 1992 के का.ज्ञा. सं. 12024/2/92-रा.भा. (ख-2) -4 से उद्धरण - हिन्दी में पत्राचार।

1. संसदीय राजभाषा समिति ने अपनी रिपोर्ट के चतुर्थ खण्ड में सिफारिश की है कि हिन्दी में प्राप्त पत्रों के उत्तर अनिवार्य रूप से हिन्दी में दिए जाएं तथा मूल पत्राचार में राजभाषा नियमों में वर्णित अनिवार्यताओं का पूर्ण रूप से अनुपालन किया जाए और 'ग' क्षेत्र में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के साथ भी हिन्दी में पत्रचार को बढाया जाए। समिति ने यह भी सिफारिश की है कि केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों द्वारा और 'ख' क्षेत्र को भेजे जाने वाले तार देवनागरी में भेजे जाएं और 'ग' क्षेत्र में भी हिन्दी में तार भेजने की शुरूआत की जाए।

अष्टम अनुसूची

अनुच्छेद 344 (1) और 351,

भाषाएं

असमिया	उड़िया	उर्दू
कन्नड़	कश्मीरी	गुजराती
तमिल	तेलुगु	पंजाबी
बंगला	मराठी	मलयालम
संस्कृत	सिंधी	हिंदी
कोंकणी	नेपाली	मणिपुरी
मैथिली	संथाली	बोडो
डोगरी		

राज्यों का क्षेत्रनुसार वर्गीकरण

'क्षेत्र क'

बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड़, उत्तराखंड, राजस्थान, और उत्तर प्रदेश, राज्य तथा अंडमान, और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र।

'क्षेत्र ख'

गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र।

'क्षेत्र ग'

(क) और (ख) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र।

कृपया ध्यान रखें

हिंदी में प्राप्त पत्रों के उत्तर हिंदी में ही देना अनिवार्य है।

राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 (3) के अनुसार सभी परिपत्र, सामान्य आदेश, निविदा सूचनाएं, विज्ञापन, अनुबंध, करार आदि द्विभाषी (हिंदी-अंग्रेजी में) जारी किए जाने अनिवार्य हैं। यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले अधिकारी की है।

क तथा ख क्षेत्र की राज्य सरकारों, व्यक्तियों एवं अन्य पार्टियों को पत्र हिंदी में भेजे जाने चाहिए।

सभी प्रकार के फार्म, मैनुअल, कोड, लेखन सामग्री द्विभाषी रूप में मुद्रित किया जाना अनिवार्य है।

रबर की मोहरें, नामपट्ट, साइन बोर्ड आदि द्विभाषी रूप में तैयार किए जाने चाहिए।

'क' तथा 'ख' क्षेत्र को भेजे जाने वाले लिफाफों पर पता हिंदी में लिखें।

राजभाषा हिंदी की संवैधानिक स्थिति

हमारे देश का संविधान 2 वर्ष, 11 माह तथा 18 दिन की अवधि में निर्मित हुआ तथा 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ था। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व देश में स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा बनाये जाने की सर्वाधिक मांग की जाती रही थी।

संविधान निर्माताओं ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने की मांग को दृष्टिगत रखते हुए संविधान सभा ने 14/9/1949 को हिंदी को संघ की राजभाषा स्वीकार करते हुए राजभाषा हिंदी के संबंध में प्रावधान किए।

संविधान के भाग 5 एवं 6 के क्रमशः अनुच्छेद 120 तथा 210 में तथा भाग 17 के अनुचछेद 343, 344, 345, 346, 347, 348, 349, 350 तथा 351 में राजभाषा हिंदी के संबंध में निम्न प्रावधान किये गए हैं। इन प्रावधानों के साथ ही संप्रति भारत की 22 भाषाओं को संविधान की अनुसूची-8 में मान्यता दी गई है।

राजभाषा हिंदी संबंधी विभिन्न समितियाँ

हिन्दी सलाहकार समितियाँ

भारत सरकार की राजभाषा नीति के सुचारू रूप से कार्यान्वयन के बारे में सलाह देने के उद्देश्य से विभिन्न मंत्रालयों/विभागों में हिन्दी सलाहकार समितियों की व्यवस्था की गई। इन समितियों के अध्यक्ष सम्बन्धित मंत्री होते हैं और उनका गठन 'केन्द्रीय हिन्दी समिति' (जिसके अध्यक्ष माननीय प्रधानमंत्री जी हैं) सिफारिश के आधार पर बनाए गए मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अनुसार किया जाना उपक्षित है। ये समितियाँ अपने-अपने मंत्रालयों विभागों उपक्रमों में हिन्दी की प्रगति की समीक्षा करती हैं, विभाग में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के तरीके सोचती हैं और राजभाषा नीति के अनुपालन के लिए ठोस

कदम उठाती है। नियमानुसार इनकी बैठकें 3 महीने में एक बार अवश्य होनी चाहिए।

संसदीय राजभाषा समिति

राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा के तहत यह समिति गठित की गई है। इसमें 20 लोक सभाके व 10 राज्य सभा के सदस्य होते हैं, जिनका चुनाव एकल संक्रमणीय तरीके से किया जाता है। इस समिति में 10-10 सदस्यों वाली 3 उपसमितियाँ बनाई गई हैं, प्रत्येक उपसमिति का एक समन्वयक होता है। यह समिति केन्द्र सरकार के अधीन आने वाली सरकार द्वारा वित्त पोषित सभी संस्थानों का समय-समय पर निरीक्षण करती है और राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। राष्ट्रपति इस रिपोर्ट को संसद के प्रत्येक सदन में रखवाते हैं और राज्य सरकारों को भिजवाते हैं। राजभाषा के क्षेत्र में यह सर्वोच्च अधिकार प्राप्त समिति है।

केन्द्रीय राजभाषा

कार्यान्वयन समिति राजभाषा विभाग के सचिव तथा भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार की अध्यक्षता में सभी मंत्रालयों विभागों की कार्यान्वयन समितियों में समन्वय का कार्य यह समिति करती है। विभिन्न समितियों के अध्यक्ष (संयुक्त सचिव पद के समान) तथा मंत्रालयों में राजभाषा का कार्य सम्पादन करने वाले निदेशक तथा उपसचिव इसके सदस्य होते हैं। यह समिति यथा संशोधित राजभाषा अधिनियमों के उपबंधों तथा सरकारी प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग और केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के गृह मंत्रालय द्वारा समय-समय पर जारी किये गये अनुदेशों के कार्यान्वयन में हुई प्रगति का पुनरीक्षण करती है और उनके अनुपालन में आयी कठिनाइयों के निराकरण के उपायों पर विचार करती है।

नगर राजभाषा

कार्यान्वयन समितियाँ बड़े-बड़े नगरों में जहाँ केन्द्रीय सरकार के दस या उससे अधिक कार्यालय हैं, वहाँ नगर राज भाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया। सन् 1976 के आदेश के अनुसार इनका गठन किया गया। इन सम्मिलित बैठकों में हिन्दी प्रशिक्षण, हिन्दी टाइपराइटिंग तथा हिन्दी आशुलिपि

के प्रशिक्षण, देवनागरी लिपि के टाइपराइटरों की उपलब्धि आदि के सम्बन्ध में अनुभव होने वाली सामान्य कठिनाइयों के बारे में चर्चा की जाती है और नगर के विभिन्न कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ानेके लिए जो उपाय किये गये हैं उनसे परस्पर लाभ उठाया जाता है।

जिन नगरों मे नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों' का गठन होगा उनकी बैठकों में अपने कार्यान्वयन के प्रतिनिधि के रूप में राजभाषा अधिकारी भाग लेते हैं। केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् की शाखाओं के अधिकारी भी इसमें निमंत्रित किये जाते हैं। सन् 1979 के आदेश द्वारा इसके कार्यों में विस्तार कर निम्नलिखित कर्त्तव्य निश्चित किये गये–

राजभाषा अधिनियम नियम और सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा जारी किए गये आदेशों और हिन्दी के प्रयोग से सम्बन्धित वार्षिक कार्यक्रम के कार्यान्वयन की स्थिति की समीक्षा।

नगर के केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के सम्बन्ध में किये जाने वाले उपायों पर विचार,

हिन्दी के सन्दर्भ सहित्य, टाइपराइटरों, टाइपिस्टों, आशुलिपिकों आदि की उपलब्धि की समीक्षा।

हिन्दी, हिन्दी टाइपिंग तथा हिन्दी आशुलिपि के प्रशिक्षण से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार। इस प्रकार की बैठकें वर्ष में दो बार होती हैं। इनकी अध्यक्षता नगर के वरिष्ठतम अधिकारी करते हैं। इन समितियों में नगर में स्थित सभी केन्द्रीय सरकारी कार्यालयों तथा उपक्रमों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं, अपने-अपने कार्यालयों की तिमाही प्रगति रिपोर्ट की समीक्षा करते हैं और हिन्दी के इस्तेमाल को बढ़ाने के लिए सुझाव देते हैं। प्रारम्भ में ऐसे नगरों की संख्या सीमितथी, अब बढ़ती जा रही है। हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने में इन बैठकों से विशेष लाभ हुआ है। इस हेतु हर वर्ष विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन इस समिति की अध्यक्षता में आयोजित किया जा रहा है।

राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ

प्रत्येक मंत्रालय विभाग में राजभाषा-आदेशों का कार्यान्वयन ठीक-ठीक चलाने के लिए राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन कार्यालय ज्ञापन सं. 6/63/64-रा.भा. दिनांक 10-12-1964 के आधार पर सन् 1965 में किया गया। इस समिति के सुपुर्द मोटे तौर पर निम्नलिखित कार्य सौंपे गये।

हिन्दी के प्रयोग के सम्बन्ध में गृह मंत्रालय के अनुदेशों के कार्यान्वयन का पुनरीक्षण करना और उस बारे में आरम्भिक तथा अन्य कार्रवाई करना।

तिमाही प्रगति रिपोर्टों का पुनरीक्षण करना,

हिन्दी-भाषी क्षेत्रों से प्राप्त तिमाही रिपोर्ट का पुनरीक्षण,

कार्यान्वयन सम्बन्धी कठिनाइयों को देखना और उनका हल निकालना,

हिन्दी के प्रशिक्षण के बारे में अनुदेशों का परिपालन तथा हिन्दी टंकण तथा आशुलिपि में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों को उपयुक्त संख्या में भेजना।

केन्द्रीय हिन्दी समिति को दूसरी बैठक में लिये गये निर्णय के अनुसार समिति के काम की देखरेख मंत्रालय/विभाग के संयुक्त सचिव के अधिकारी को, विशेषत: प्रशासन से सम्बन्धित अधिकारी को यह जिम्मेदारी सौंपी गयी है। हिन्दी अधिकारी हिन्दी का काम देखने वाला अधिकारी इस समिति का सदस्य सचिव रखा जाता है। यह भी ध्यान रखा गया है कि समिति के सदस्यों की संख्या 15 से अधिक न हो। इस समिति की बैठक तीन माह में एक बार अवश्य होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में गृह मंत्रालय ने सन् 1975 में कड़े आदेश जारी किये।

उक्त आदेश के अनुसार समितियाँ लगभग सभी मंत्रलयों/विभागों में गठित की गयीं। बाद में सन् 1668, 1969 तथा 1975 में इसके ठीक-ठीक अनुपालन की ओर ध्यान दिलाया गया।आगे चलकर सन् 1976 में हिन्दी प्रशिक्षण योजना के अधिकारियों को सदस्यता देने का प्रावधान किया गया। गैर सरकारी व्यक्तियों को सदस्य न बनाने का सुझाव दिया गया। यह भी सुझावदिया गया कि कार्यालय विशेष के गठन को देखते हुए, उचित अनुपात में अहिन्दी-भाषी अधिकारियों को रखा जाये। कोशिश यह हो कि किसी भी समिति में जहाँ तक हो सके, आधे सदस्य अ हिन्दी-भाषी हों।

5

राष्ट्रभाषा

भारतीय संविधान में किसी भी भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में नहीं माना गया है। सरकार ने 22 भाषाओं को आधिकारिक भाषा के रूप में जगह दी है, जिसमें केन्द्र सरकार या राज्य सरकार अपनी जगह के अनुसार किसी भी भाषा को आधिकारिक भाषा के रूप में चुन सकती है। केन्द्र सरकार ने अपने कार्यों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी भाषा को आधिकारिक भाषा के रूप में जगह दी है। इसके अलावा अलग-अलग राज्यों में स्थानीय भाषा के अनुसार भी अलग अलग आधिकारिक भाषाओं को चुना गया है।

वर्तमान में सभी 22 भाषाओं को आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। 2010 में गुजरात उच्च न्यायालय ने भी सभी भाषाओं को समान अधिकार के साथ रखने की बात की थी, हालांकि न्यायालयों और कई स्थानों में केवल अंग्रेजी भाषा को ही जगह दीया गया है।

हिंदी भारतीय गणराज की राजकीय और मध्य भारतीय- आर्य भाषा है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार, लगभग 25.79 करोड़ भारतीय हिंदी का उपयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं, जबकि लगभग 42.20 करोड़ लोग इसकी 50 से अधिक बोलियों में से एक इस्तेमाल करते हैं। सन् 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था।

राष्ट्रभाषा क्या है?

राष्ट्रभाषा का शाब्दिक अर्थ है-समस्त राष्ट्र में प्रयुक्त भाषा अर्थात् आमजन की भाषा (जनभाषा)। जो भाषा समस्त राष्ट्र में जन-जन के विचार-विनिमय का माध्यम हो, वह राष्ट्रभाषा कहलाती है।

राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय एकता एवं अंतर्राष्ट्रीय संवाद सम्पर्क की आवश्यकता की उपज होती है। वैसे तो सभी भाषाएँ राष्ट्रभाषाएँ होती हैं, किन्तु राष्ट्र की जनता जब स्थानीय एवं तात्कालिक हितों व पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर अपने राष्ट्र की कई भाषाओं में से किसी एक भाषा को चुनकर उसे राष्ट्रीय अस्मिता का एक आवश्यक उपादान समझने लगती है तो वही राष्ट्रभाषा है।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रभाषा की आवश्यकता होती है। भारत के सन्दर्भ में इस आवश्यकता की पूर्ति हिंदी ने की। यही कारण है कि हिंदी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रभाषा बनी।

राष्ट्रभाषा शब्द कोई संवैधानिक शब्द नहीं है, बल्कि यह प्रयोगात्मक, व्यावहारिक व जनमान्यता प्राप्त शब्द है।

राष्ट्रभाषा सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर देश को जोड़ने का काम करती है अर्थात् राष्ट्रभाषा की प्राथमिक शर्त देश में विभिन्न समुदायों के बीच भावनात्मक एकता स्थापित करना है।

राष्ट्रभाषा का प्रयोग क्षेत्र विस्तृत और देशव्यापी होता है। राष्ट्रभाषा सारे देश की सम्पर्क-भाषा होती है। इसका व्यापक जनाधार होता है।

राष्ट्रभाषा हमेशा स्वभाषा ही हो सकती है क्योंकि उसी के साथ जनता का भावनात्मक लगाव होता है।

राष्ट्रभाषा का स्वरूप लचीला होता है और इसे जनता के अनुरूप किसी रूप में ढाला जा सकता है।

अंग्रेजों का योगदान

राष्ट्रभाषा सारे देश की सम्पर्क भाषा होती है। हिंदी दीर्घकाल से सारे देश में जन-जन के पारस्परिक सम्पर्क की भाषा रही है। यह केवल उत्तरी भारत की नहीं, बल्कि दक्षिण भारत के आचार्यों वल्लभाचार्य, रामानुज, रामानंद आदि ने भी इसी भाषा के माध्यम से अपने मतों का प्रचार किया था। अहिंदी भाषी राज्यों के भक्त-संत कवियों (जैसे-असम के शंकरदेव, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर व

नामदेव, गुजरात के नरसी मेहता, बंगाल के चैतन्य आदि) ने इसी भाषा को अपने धर्म और साहित्य का माध्यम बनाया था।

यही कारण था कि जनता और सरकार के बीच संवाद स्थापना के क्रम में फारसी या अंग्रेजी के माध्यम से दिक्कतें पेश आईं तो कम्पनी सरकार ने फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग खोलकर अधिकारियों को हिंदी सिखाने की व्यवस्था की। यहाँ से हिंदी पढ़े हुए अधिकारियों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उसका प्रत्यक्ष लाभ देकर मुक्त कंठ से हिंदी को सराहा।

सी. टी. मेटकाफ ने 1806 ई. में अपने शिक्षा गुरु **जॉन गिलक्राइस्ट** को लिखा- 'भारत के जिस भाग में भी मुझे काम करना पड़ा है, कलकत्ता से लेकर लाहौर तक, कुमाऊँ के पहाड़ों से लेकर नर्मदा नदी तक, मैंने उस भाषा का आम व्यवहार देखा है, जिसकी शिक्षा आपने मुझे दी है। मैं कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक या जावा से सिंधु तक इस विश्वास से यात्रा करने की हिम्मत कर सकता हूँ कि मुझे हर जगह ऐसे लोग मिल जाएँगे जो हिन्दुस्तानी बोल लेते होंगे।'

टॉमस रोबक ने 1807 ई. में लिखा- 'जैसे इंग्लैण्ड जाने वाले को लैटिन सेक्सन या फ्रेंच के बदले अंग्रेजी सीखनी चाहिए, वैसे ही भारत आने वाले को अरबी-फारसी या संस्कृत के बदले हिन्दुस्तानी सीखनी चाहिए।'

विलियम केरी ने 1816 ई. में लिखा- हिंदी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं बल्कि देश में सर्वत्र बोली जाने वाली भाषा है।'

एच. टी. कोलब्रूक ने लिखा- जिस भाषा का व्यवहार भारत के प्रत्येक प्रान्त के लोग करते हैं, जो पढ़े-लिखे तथा अनपढ़ दोनों की साधारण बोलचाल की भाषा है, जिसको प्रत्येक गाँव में थोड़े बहुत लोग अवश्य ही समझ लेते हैं, उसी का यथार्थ नाम हिंदी है।'

जार्ज ग्रियर्सन ने हिंदी को 'आम बोलचाल की महाभाषा कहा है।

इन विद्वानों के मंतव्यों से स्पष्ट है कि हिंदी की व्यावहारिक उपयोगिता, देशव्यापी प्रसार एवं प्रयोगगत लचीलेपन के कारण अंग्रेजों ने हिंदी को अपनाया। उस समय हिंदी और उर्दू को एक ही भाषा माना जाता था। अंग्रेजों ने हिंदी को प्रयोग में लाकर हिंदी की महती संभावनाओं की ओर राष्ट्रीय नेताओं एवं साहित्यकारों का ध्यान खींचा।

धर्म समाज सुधारकों का योगदान

धर्म-समाज सुधार की प्रायः सभी संस्थाओं ने हिंदी के महत्त्व को भाँपा और हिंदी की हिमायत की।

ब्रह्म समाज (1828 ई.) के संस्थापक राजा राममोहन राय ने कहा, 'इस समग्र देश की एकता के लिए हिंदी अनिवार्य है, ब्रह्मसमाजी केशव चंद्र सेन ने 1875 ई. में एक लेख लिखा, भारतीय एकता कैसे हो, जिसमें उन्होंने लिखा– उपाय है सारे भारत में एक ही भाषा का व्यवहार। अभी जितनी भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं, उनमें हिंदी भाषा लगभग सभी जगह प्रचलित है। यह हिंदी अगर भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बन जाए तो यह काम सहज ही और शीघ्र ही सम्पन्न हो सकता है, एक अन्य ब्रह्मसमाजी **नवीन चंद्र** राय ने पंजाब में हिंदी के विकास के लिए स्तुत्य योगदान दिया।

आर्य समाज (1875 ई.) के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती गुजराती भाषी थे एवं गुजराती व संस्कृत के अच्छे जानकार थे। हिंदी का उन्हें सिर्फ कामचलाऊ ज्ञान था, पर अपनी बात अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए तथा देश की एकता को मजबूत करने के लिए उन्होंने अपना सारा धार्मिक साहित्य हिंदी में ही लिखा। उनका कहना था कि हिंदी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। वे इस 'आर्यभाषा' को सर्वात्मना देशोन्नति का मुख्य आधार मानते थे। उन्होंने हिंदी के प्रयोग को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। वे कहते थे, 'मेरी आँखें उस दिन को देखना चाहती हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा समझने और बोलने लग जाएँगे।

अरविन्द दर्शन के प्रणेता **अरविन्द घोष** की सलाह थी कि 'लोग अपनी-अपनी मातृभाषा की रक्षा करते हुए सामान्य भाषा के रूप में हिंदी को ग्रहण करें।'

थियोसोफिकल सोसाइटी (1875 ई.) की संचालिका **एनी बेसेंट** ने कहा था, 'भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में जो अनेक देशी भाषाएँ बोली जाती हैं, उनमें एक भाषा ऐसी है, जिसमें शेष सब भाषाओं की अपेक्षा एक भारी विशेषता है, वह यह कि उसका प्रचार सबसे अधिक है। वह भाषा हिंदी है। हिंदी जानने वाला आदमी सम्पूर्ण भारतवर्ष में यात्रा कर सकता है और उसे हर जगह हिंदी बोलने वाले मिल सकते हैं। भारत के सभी स्कूलों में हिंदी की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए।'

उपर्युक्त धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं के अतिरिक्त प्रार्थना समाज, सनातन धर्म सभा, रामकृष्ण मिशन आदि ने हिंदी के प्रचार में योग दिया।

इससे लगता है कि धर्म-समाज सुधारकों की यह सोच बन चुकी थी कि राष्ट्रीय स्तर पर संवाद स्थापित करने के लिए हिंदी आवश्यक है। वे जानते थे

कि हिंदी बहुसंख्यक जन की भाषा है, एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त के लोगों से सिर्फ इस भाषा में ही विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। भावी राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को बढ़ाने का कार्य इन्हीं धर्म-समाज सुधारकों ने किया।

कांग्रेस के नेताओं का योगदान

1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना हुई। जैसे-जैसे कांग्रेस का राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ता गया, वैसे-वैसे राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय झण्डा एवं राष्ट्रभाषा के प्रति आग्रह बढ़ता ही गया।

1917 ई. में **लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक** ने कहा, 'यद्यपि मैं उन लोगों में से हूँ, जो चाहते हैं और जिनका विचार है कि हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।' तिलक ने भारतवासियों से आग्रह किया कि वे हिंदी सीखें।

महात्मा गाँधी राष्ट्र के लिए राष्ट्रभाषा को नितांत आवश्यक मानते थे। उनका कहना था, राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।' गाँधीजी हिंदी के प्रश्न को स्वराज का प्रश्न मानते थे-हिंदी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।' उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में सामने रखकर भाषा-समस्या पर गम्भीरता से विचार किया। 1917 ई. में भड़ौंच में आयोजित गुजरात शिक्षा परिषद के अधिवेशन में सभापति पद से भाषण देते हुए गाँधीजी ने कहा,

राष्ट्रभाषा के लिए 5 लक्षण या शर्तें होनी चाहिए–

1. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए,
2. यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों,
3. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का अपनी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार होना चाहिए,
4. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए,
5. उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।'

वर्ष 1918 ई. में हिंदी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में सभापति पद से भाषण देते हुए गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा हिंदी का समर्थन किया, 'मेरा यह मत है कि हिंदी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए' इसी अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि प्रतिवर्ष 6 दक्षिण भारतीय युवक हिंदी सीखने के लिए प्रयाग भेजें जाएँ और 6 उत्तर भारतीय युवकों को दक्षिण

भाषाएँ सीखने तथा हिंदी का प्रसार करने के लिए दक्षिण भारत में भेजा जाए। इन्दौर सम्मेलन के बाद उन्होंने हिंदी के कार्य को राष्ट्रीय व्रत बना दिया। दक्षिण में प्रथम हिंदी प्रचारक के रूप में गाँधीजी ने अपने सबसे छोटे पुत्र **देवदास गाँधी** को चेन्नई भेजा। गाँधीजी की प्रेरणा से मद्रास (1927 ई.) एवं वर्धा (1936 ई.) में राष्ट्रभाषा प्रचार सभाएँ स्थापित की गईं।

वर्ष 1925 ई. में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में गाँधीजी की प्रेरणा से यह प्रस्ताव पारित हुआ कि 'कांग्रेस का, कांग्रेस की महासमिति का और कार्यकारिणी समिति का काम-काज आमतौर पर हिंदी में चलाया जाएगा।' इस प्रस्ताव में हिंदी-आंदोलन को बड़ा बल मिला।

वर्ष 1927 ई. में गाँधीजी ने लिखा, 'वास्तव में ये अंग्रेजी में बोलने वाले नेता हैं, जो आम जनता में हमारा काम जल्दी आगे बढ़ने नहीं देते। वे हिंदी सीखने से इंकार करते हैं, जबकि हिंदी द्रविड़ प्रदेश में भी तीन महीने के अन्दर सीखी जा सकती है।

वर्ष 1927 ई. में सी. राजगोपालाचारी ने दक्षिण वालों को हिंदी सीखने की सलाह दी और कहा, हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, यही जनतंत्रात्मक भारत में राजभाषा भी होगी।'

वर्ष 1928 ई. में प्रस्तुत नेहरू रिपोर्ट में भाषा सम्बन्धी सिफारिश में कहा गया था, 'देवनागरी अथवा फारसी में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी भारत की राष्ट्रभाषा होगी, परन्तु कुछ समय के लिए अंग्रेजी का उपयोग जारी रहेगा।' सिवाय 'देवनागरी या 'फारसी' की जगह 'देवनागरी' तथा 'हिन्दुस्तानी' की जगह हिंदी रख देने के अंततः स्वतंत्र भारत के संविधान में इसी मत को अपना लिया गया।

वर्ष 1929 ई. में **सुभाषचंद्र बोस** ने कहा, 'प्रान्तीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिल सकती। अपनी प्रान्तीय भाषाओं की भरपूर उन्नति कीजिए, उसमें कोई बाधा नहीं डालना चाहता और न हम किसी की बाधा को सहन ही कर सकते हैं। पर सारे प्रान्तों की सार्वजनिक भाषा का पद हिंदी या हिन्दुस्तानी को ही मिला है।'

वर्ष 1931 ई. में गाँधीजी ने लिखा, 'यदि स्वराज्य अंगेजी-पढ़े भारतवासियों का है और केवल उनके लिए है तो सम्पर्क भाषा अवश्य अंग्रेजी होगी। यदि वह करोड़ों भूखे लोगों, करोड़ों निरक्षर लोगों, निरक्षर स्त्रियों, सताए हुए अछूतों के

लिए है तो सम्पर्क भाषा केवल हिंदी हो सकती है।' गाँधीजी जनता की बात जनता की भाषा में करने के पक्षधर थे।

वर्ष 1936 ई. में गाँधीजी ने कहा, 'अगर हिन्दुस्तान को सचमुच आगे बढ़ना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह किसी और भाषा को नहीं मिल सकता है।'

वर्ष 1937 ई. में देश के कुछ राज्यों में कांग्रेस मंत्रिमंडल गठित हुआ। इन राज्यों में हिंदी की पढ़ाई को प्रोत्साहित करने का संकल्प लिया गया।

जैसे-जैसे स्वतंत्रता संग्राम तीव्रतम होता गया वैसे-वैसे हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का आंदोलन जोर पकड़ता गया। 20वीं सदी के चौथे दशक तक हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में आम सहमति प्राप्त कर चुकी थी। वर्ष 1942 से 1945 का समय ऐसा था, जब देश में स्वतंत्रता की लहर सबसे अधिक तीव्र थी, तब राष्ट्रभाषा से ओत-प्रोत जितनी रचनाएँ हिंदी में लिखी गईं, उतनी शायद किसी और भाषा में इतने व्यापक रूप से कभी नहीं लिखी गईं, राष्ट्रभाषा प्रचार के साथ राष्ट्रीयता के प्रबल हो जाने पर अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा।

6

सांकेतिक भाषा

संकेत भाषा (या सांकेतिक भाषा) एक ऐसी भाषा है, जो अर्थ सूचित करने के लिए श्रवणीय ध्वनि पैटर्न में संप्रेषित करने के बजाय, दृश्य रूप में सांकेतिक पैटर्न (हस्तचालित संप्रेषण, अंग-संकेत) संचारित करती है-जिसमें वक्ता के विचारों को धाराप्रवाह रूप से व्यक्त करने के लिए, हाथ के आकार, विन्यास और संचालन, बांहों या शरीर तथा चेहरे के हाव-भावों का एक साथ उपयोग किया जाता है।

जहां भी बधिर लोगों का समुदाय मौजूद हो, वहां संकेत भाषा का विकास होता है। उनके पेचीदा स्थानिक व्याकरण, उच्चरित भाषाओं के व्याकरण से स्पष्ट रूप से अलग है। दुनिया भर में सैकड़ों संकेत भाषाएं प्रचलन में हैं और स्थानीय बधिर समूहों द्वारा इनका उपयोग किया जा रहा है। कुछ संकेत भाषाओं ने एक प्रकार की कानूनी मान्यता हासिल की है, जबकि अन्य का कोई महत्व नहीं है।

सांकेतिक भाषा का इतिहास

संकेत भाषा का प्रारंभिक लिखित अभिलेख ई.पू. पांचवी शताब्दी में **प्लेटो** की **क्रेटीलस** में देखा गया, जहां **सुकरात** कहते हैं– 'अगर हमारे पास आवाज या जुबान नहीं होती और हम एक दूसरे से विचार व्यक्त करना चाहते, तो क्या हम अपने हाथों, सिर और शरीर के बाकी अंगों के संचालन द्वारा संकेत करने

की कोशिश नहीं करते, जैसा कि इस समय मूक लोग करते हैं?' ऐसा लगता है कि बहरे लोगों ने समूचे इतिहास में संकेत भाषाओं का उपयोग किया है।

दूसरी सदी यहूदिया में, मिश्नाह गिट्टिन प्रकरण रिकॉडिंग में निर्धारित है कि व्यावसायिक लेनदेन के उद्देश्य के लिए 'एक बधिर-मूक इशारों से संवाद कर सकता है। बेन बथीरा कहता है कि वह होंठ की गति के माध्यम से भी ऐसा कर सकता है।' यह शिक्षा यहूदी समाज में सुविख्यात है जहां मिश्ना का अध्ययन बचपन से ही अनिवार्य किया गया है।

1620 में, जुआन पाब्लो बोनेट ने मैड्रिड में Reducción de las letras y arte para enseñar a hablar a los mudos प्रकाशित किया (अक्षरों का न्यूनीकरण और मूक लोगों को बोलना सिखाने की कला), इसे स्वर-विज्ञान और लोगोपीडिया का पहला आधुनिक ग्रंथ माना जाता है, जिसमें मूक या बधिर लोगों के संप्रेषण में सुधार के लिए हस्तचालित वर्णमाला के रूप में, हस्तचालित संकेतों के उपयोग द्वारा बधिर लोगों को मौखिक शिक्षा की विधि स्थापित की गई है।

बोनेट की संकेत भाषा से, चार्ल्स-माइकेल डी लेपी ने 18वीं सदी में अपनी वर्णमाला पुस्तिका प्रकाशित की, जो वर्तमान समय तक फ्रांस और उत्तरी अमेरिका में मूल रूप से अपरिवर्तित मौजूद है।

अक्सर संकेत भाषाएं बधिर छात्रों के विद्यालयों के आस-पास विकसित हुई हैं। 1755 में, **अब्बे डी लेपी** ने पैरिस में बधिर बच्चों के लिए प्रथम विद्यालय की स्थापना की, यकीनन **लॉरेंट क्लर्क** उस विद्यालय का सुविख्यात स्नातक था। 1817 में क्लर्क, **थॉमस हॉपकिन्स गलाउडेट** के साथ हार्टफोर्ड, कनेक्टिकट में अमेरिकन स्कूल फॉर द डेफ की स्थापना के लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका गए। गलाउडेट के बेटे, **एडवर्ड माइनर गलाउडेट** ने 1857 में बधिरों के लिए वाशिंगटन, डी.सी. में एक विद्यालय स्थापित किया, जो 1864 में नेशनल डेफ-म्यूट कॉलेज बन गया। अब गलाउडेट यूनिवर्सिटी कहलाते हुए, यह विश्व भर में बधिर लोगों के लिए एकमात्र उदार कला विश्वविद्यालय है।

आम तौर पर, प्रत्येक बोली जाने वाली भाषा की एक पूरक संकेत भाषा होती है, जैसे कि प्रत्येक भाषाई जनसंख्या में बहरे सदस्य शामिल होते हैं, जो संकेत भाषा जनित करते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे भौगोलिक या सांस्कृतिक बल जनसंख्या को अलग करते हैं और विभिन्न और पृथक मौखिक भाषाएं बनती हैं, वही बल संकेत भाषाओं को भी परिचालित करते हैं और इसलिए वे स्थानीय

मौखिक भाषाओं के समान ही लगभग उन्हीं क्षेत्रों में समय के साथ अपनी पहचान कायम रखने की ओर प्रवृत्त होते हैं। यह तब भी होता है जब भले ही संकेत भाषाओं का स्थलीय मौखिक भाषा से कोई संबंध नहीं होता है, जहां वे उत्पन्न हुए हों, हालांकि इस पैटर्न के उल्लेखनीय अपवाद भी हैं, क्योंकि एक ही मौखिक भाषा बोलने वाले भौगोलिक क्षेत्रों में विविध, असंबद्ध संकेत भाषाएं मौजूद हैं। एक 'राष्ट्रीय' सांकेतिक भाषा के अंतर्गत परिवर्तनों को सामान्यतः बधिरों के लिए आवासीय विद्यालयों की भौगोलिक अवस्थिति से सह-संबद्ध किया जा सकता है।

पहले गेस्टुनो के रूप में ज्ञात अंतर्राष्ट्रीय संकेत मुख्यतः डेफलिम्पिक्स और बधिर विश्व राज्यसंघ की बैठकों जैसे अंतर्राष्ट्रीय बधिर आयोजनों में इस्तेमाल होता है। हाल ही के अध्ययनों का दावा है कि अंतर्राष्ट्रीय संकेत जहां एक प्रकार से मिश्रित (पिड्जिन) है, उनका यह निष्कर्ष है कि यह ठेठ पिड्जिन की तुलना में कहीं अधिक जटिल है और वास्तव में पूर्ण संकेत भाषा की तरह है।

संकेत की भाषिकी

भाषाई संदर्भ में संकेत भाषा, इस आम गलतफहमी के बावजूद भी कि वे 'वास्तविक भाषाएं' नहीं हैं, उतनी ही समृद्ध और जटिल है जितनी कि कोई मौखिक भाषा. पेशेवर भाषाविदों ने कई संकेत भाषाओं का अध्ययन किया और पाया कि प्रत्येक भाषाई घटक को सही भाषा के रूप में वर्गीकृत करने की आवश्यकता है।

संकेत भाषाएं माइम नहीं हैं - दूसरे शब्दों में, संकेत पारंपरिक हैं, अक्सर यादृच्छिक और जरूरी नहीं कि उनके निर्देश्य से दृश्य संबंध रखते हों, ठीक उसी प्रकार जैसे कि मौखिक भाषा अनुकरणमूलक नहीं हैं। जबकि मौखिक भाषा की तुलना में संकेत भाषाओं में दृश्यात्मकता अधिक व्यवस्थित और व्यापक है, तथापि अंतर स्पष्ट नहीं है। ना ही वे मौखिक भाषा का दृश्यात्मक प्रतिपादन हैं। उनके अपने जटिल व्याकरण हैं और सरल से ठोस, उदात्त से अमूर्त तक, किसी भी विषय पर चर्चा करने के लिए इस्तेमाल किए जा सकते हैं।

मौखिक भाषाओं की तरह, संकेत भाषाएं प्राथमिक, अर्थहीन इकाइयों (स्वनिमय संकेत भाषाओं के मामले में जो चेरीम कहलाते थे) को सार्थक

अर्थगत इकाइयों में संगठित करते हैं। संकेत के तत्त्व हैं हाथ का आकार (Handshape), दिग्विन्यास (Orientation) (या हथेली का विन्यास), स्थान (Location) (या अभिव्यक्ति का स्थान), गति (Movement) और बिना हस्तचालन के अंकक (या चेहरे के हाव-भाव (Expression), जिसे परिवर्णी शब्द HOLME के रूप में सारबद्ध किया गया है।

बधिरों की सांकेतिक भाषाओं की सामान्य भाषाई विशेषताएं हैं। अनुवर्गों का व्यापक उपयोग, उच्च मात्रा में स्वर-परिवर्तन और विषय-टिप्पणी वाक्यविन्यास। संकेत भाषा द्वारा एक साथ दृश्यात्मक क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों में अर्थ पैदा करने की क्षमता से कई अनूठी विशेषताएं उभरती हैं। उदाहरण के लिए, सांकेतिक संदेश के प्राप्तकर्ता हाथ, चेहरे का हाव-भाव और शारीरिक मुद्रा के एक ही क्षण में संचालन से अर्थ पढ़ सकते हैं। यह मौखिक भाषाओं के विपरीत है, जहां शब्द की रचना करने वाली ध्वनियां अधिकतर अनुक्रमिक हैं (स्वर एक अपवाद रहा है)।

मौखिक भाषाओं के साथ सांकेतिक भाषाओं का संबंध

एक आम गलत धारणा है कि सांकेतिक भाषाएं किसी न किसी रूप में मौखिक भाषाओं पर निर्भर हैं, अर्थात्, वे मौखिक भाषा को हाव-भाव में व्यक्त करती है, या इनका आविष्कार उन लोगों द्वारा किया गया, जो सुन सकते हैं। थॉमस हॉपकिन्स गलाउडेट जैसे बधिर विद्यालयों के श्रवण शक्ति वाले शिक्षकों को अक्सर गलत तरीके से संकेत भाषा के 'आविष्कारक' के रूप में संदर्भित किया जाता है।

संकेत भाषाओं में हस्तचालित वर्णमाला (अंगुली वर्तनी) का प्रयोग किया जाता है, अधिकांशतः व्यक्तिवाचक संज्ञा और मौखिक भाषाओं से लिए गए तकनीकी या विशिष्ट शब्दावली के लिए. अंगुली वर्तनी के प्रयोग को किसी समय इस बात का प्रमाण माना जाता था कि संकेत भाषाएं, मौखिक भाषाओं का सरल रूप होती हैं, परंतु वास्तव में यह अनेक साधनों में से केवल एक है। अंगुली वर्तनी कभी-कभी नए चिह्नों का स्रोत भी हो सकती है, जिन्हें शाब्दिक संकेत कहा जाता है।

समग्रतः बधिर सांकेतिक भाषाएं मौखिक भाषाओं से स्वंतंत्र हैं और विकास के लिए वे स्वयं अपने मार्ग का अनुसरण करती हैं। उदाहरणतः, ब्रिटिश संकेत भाषा तथा अमेरिकी संकेत भाषा बहुत भिन्न तथा परस्पर अस्पष्ट हैं,

जबकि ब्रिटेन तथा अमेरीका के श्रवण शक्ति वाले लोग एक ही मौखिक भाषा का प्रयोग करते हैं।

इसी प्रकार, जिन देशों में सर्वत्र एक ही मौखिक भाषा का प्रयोग होता है, वहां दो या अधिक संकेत भाषाएं हो सकती हैं, जबकि ऐसे क्षेत्र में, जहां एक से अधिक मौखिक भाषाएं हों, वे संभवत: केवल एक ही सांकेतिक भाषा का प्रयोग कर सकती हैं। दक्षिण अफ्रीका, जहां 11 मौखिक राजभाषाएं और इतनी ही संख्या में अन्य व्यापक रूप से प्रयुक्त मौखिक भाषाएं मौजूद हैं, इसका एक अच्छा उदाहरण है। देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों को सेवा प्रदान करने वाले बधिरों के दो प्रमुख शिक्षण संस्थानों के उसके इतिहास के कारण वहां केवल एक सांकेतिक भाषा प्रचलन में है।

1972 में, **उरसुला बेलुगी**, एक संज्ञानात्मक तंत्रिका वैज्ञानिक तथा मनोभाषाशास्त्री ने अंग्रेजी तथा अमेरिकी सांकेतिक भाषा में पारंगत कई लोगों से अंग्रेजी में एक कहानी सुनाने और फिरौस् में या विपर्यत: बदलने को कहा. परिणामों में 4.7 शब्द प्रति सेकंड तथा 2.3 संकेत प्रति सेकंड की औसत पाई गई। हालांकि, कहानी के लिए केवल 122 संकेतों की आवश्यकता थी, जबकि 210 शब्दों की जरूरत थी, अत: दोनों प्रकार से कहानी को सुनाने में बराबर समय लगा। उरसुला ने फिर यह देखने के लिए परीक्षण किया कि कहीं को फिरोस कोई महत्वपूर्ण जानकारी छूट तो नहीं गई। एक द्विभाषी व्यक्ति को फिरोस में एक कहानी अनुवाद के लिए दी गई। एक और द्विभाषी संकेतकर्ता, जो केवल संकेत देख सकता था, उसने फिर उस कहानी को वापस अंग्रेजी में अनूदित किया संकेत भाषा में सूचित जानकारी मूल कहानी के समान ही थी। इस अध्ययन का दायरा हालांकि सीमित है, पर इससे पता चलता है कि मौखिक अंग्रेजी की तुलना में। फिरोस संकेतों में जानकारी अधिक है– मौखिक अंग्रेजी के 1.3 की तुलना में 1.5 तर्क वाक्य प्रति सेकंड।

स्थानिक व्याकरण और समकालीनता

संकेत भाषाएं दृश्य माध्यम (दृष्टि) की अनूठी विशेषताओं का दोहन करती हैं। मौखिक भाषा सीधी होती है, एक समय में केवल एक ही ध्वनि उत्पन्न या प्राप्त की जा सकती है। दूसरी ओर, सांकेतिक भाषा दृश्यात्मक होती है, अत: एक ही बार में पूरे दृश्य को देखा जा सकता है। जानकारी को एक साथ कई चैनलों में लोड और व्यक्त किया जा सकता है। बतौर उदाहरण अंग्रेजी

में एक वाक्यांश बोला जा सकता है, 'मैं वाहन से यहां पहुंचा इस वाक्य में यात्रा संबंधी जानकारी जोड़ने के लिए, एक लंबा वाक्यांश कहना पड़ेगा या कोई दूसरा वाक्य जोड़ना होगा कि 'मैं एक घुमावदार सड़क से यहां पहुंचा' या 'मैं यहां वाहन से पहुंचा। यात्रा बड़ी सुखद थी।' हालांकि, अमेरिकी सांकेतिक भाषा में, सड़क के आकार के बारे में जानकारी या यात्रा की सुखद प्रकृति को हाथ की गति से क्रिया रूप में प्रस्तुत करते हुए या शारीरिक या चेहरे के हाव-भाव जैसे बिना हस्तचालन के संकेतों का लाभ उठाते हुए, उसी समय जब 'यात्र' शब्द का संकेत दिया जा रहा हो, एक साथ व्यक्त किया जा सकता है। इसलिए, जबकि अंग्रेजी वाक्यांश 'मैं यहां वाहन से आया और मेरी यात्रा सुखद थी' अमेरिकी सांकेतिक भाषा 'मैं यहां वाहन से पहुंचा' से लंबी हो सकती है, दोनों की लंबाई एक समान है।

वास्तव में, वाक्य-रचना के संदर्भ में, फिरोस् अंग्रेजी की तुलना में मौखिक जापानी के अधिक नजदीक है।

संकेत भाषाओं का वर्गीकरण

हालांकि बधिर समुदायों में संकेत भाषाएं मौखिक भाषाओं के साथ या उनसे हट कर स्वाभाविक रूप से उभरी हैं, वे मौखिक भाषाओं से संबंधित नहीं हैं और उनके मूल में व्याकरण की अलग संरचना है। हस्तचालित रूप से कूटबद्ध भाषाओं के रूप में जाने गए संकेत 'भाषाओं' के समूह को मौखिक भाषाओं के सांकेतिक विधियों के रूप में अधिक सही तौर पर समझा गया है और इसलिए वे अपनी संबद्ध मौखिक भाषाओं के भाषा परिवार से संबंध रखती हैं। उदाहरण के लिए, ऐसी कई अंग्रेजी की सांकेतिक कूटबद्ध भाषाएं मौजूद हैं।

सांकेतिक भाषाओं पर बहुत कम ऐतिहासिक भाषावैज्ञानिक शोध हुआ है और संकेत भाषाओं के बीच शाब्दिक आंकड़ों की तुलना तथा इस बात पर कुछ चर्चा कि क्या कतिपय संकेत भाषाएं, भाषा या भाषाओं के परिवार की बोलियां हैं, आनुवांशिक संबंध को निर्धारित करने के कम प्रयास हुए हैं। बधिर विद्यालयों की स्थापना (अक्सर विदेश में प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा), या राजनैतिक वर्चस्व के कारण, प्रवास के माध्यम से भाषाएं विस्तृत हो सकती हैं।

भाषा संपर्क आम है, जिससे पारिवारिक वर्गीकरण कठिन हो जाता है-अक्सर यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि शाब्दिक समानता अन्य भाषा से शब्द ग्रहण करने के कारण है या सामान्य मूल भाषा के कारण। संकेत भाषाओं के

बीच, सांकेतिक और मौखिक भाषाओं (संपर्क संकेत) के बीच और व्यापक समुदाय द्वारा प्रयुक्त संकेत भाषाएं और संकेत प्रणाली के बीच संपर्क होता है। एक लेखक ने अनुमान लगाया है कि एडमोरोब संकेत भाषा की शब्दावली तथा छंद व ध्वनि सहित क्षेत्रीय विशिष्टताएं 'समग्र पश्चिमी अफ्रीका के बाजारों में बोली जाने वाली सांकेतिक व्यापार-वर्ग की खास बोली' से जुड़ी हैं।

BSL ऑसलैन और NZSL को आम तौर पर BANZSL नामक भाषा परिवार से जुड़ा माना जाता है। मेरिटाइम संकेत भाषा और दक्षिण अफ्रीकी संकेत भाषा भी BSL से संबंधित हैं।

जापानी संकेत भाषा, ताइवानी संकेत भाषा और कोरियाई संकेत भाषा को जापानी संकेत भाषा परिवार का सदस्य माना गया है।

फ्रांसीसी संकेत भाषा परिवार, फ्रांसीसी संकेत भाषा (LSF) से उभरने वाली, या स्थानीय सामुदायिक संकेत भाषाओं तथा के बीच संपर्क के परिणामस्वरूप उत्पन्न कई संकेत भाषाएं मौजूद हैं। इनमें शामिल हैं– फ्रांसीसी संकेत भाषा, इतालवी संकेत भाषा, क्यूबेक संकेत भाषा, अमेरिकी संकेत भाषा, आयरिश संकेत भाषा, रूसी संकेत भाषा, डच संकेत भाषा, फ्लेमिश संकेत भाषा, बेल्जियन-फ्रेंच संकेत भाषा, स्पैनिश संकेत भाषा, मेक्सिकन संकेत भाषा, ब्राजिलियन संकेत भाषा (LIBRAS), कैटलान संकेत भाषा और अन्य।

इस समूह के एक उप-समूह में ऐसी भाषाएं शामिल हैं, जो अमेरिकी संकेत भाषा (ASL) से काफी प्रभावित हैं ;kASL की क्षेत्रीय किस्में हैं। बोलिवियाई संकेत भाषा को कभी-कभीASL की बोली माना जाता है। थाई संकेत भाषा, ASL तथा बैकॉक व चियांग माई के मूल संकेत भाषाओं से व्युत्पन्न मिश्रित भाषा है और इसलिए ASL परिवार का हिस्सा माना जा सकता है।ASL द्वारा संभवत: प्रभावित अन्य भाषाओं में शामिल हैं युगांडाई संकेत भाषा, केन्याई संकेत भाषा, फिलिपीनी संकेत भाषा और मलेशियाई संकेत भाषा।

उपाख्यानमूलक प्रमाण सुझाव देते हैं कि फिनिश संकेत भाषा, स्वीडिश संकेत भाषा और नार्वेजियन संकेत भाषा स्कैंडिनेवियाई भाषा परिवार से जुड़े हैं।

आइसलैंडिक संकेत भाषा का उद्गम डैनिश संकेत भाषा से माना जाता है, हालांकि अलग-अलग विकास के सदी के दौरान शब्दावली में महत्वपूर्ण भिन्नताएं विकसित हुई हैं।

इजरायली संकेत भाषा जर्मन संकेत भाषा से प्रभावित थी।

एक SIL रिपोर्ट के अनुसार, रूस, माल्डोवा और यूक्रेन की संकेत भाषाओं में काफी हद तक शाब्दिक समानता है और संभवत: एक ही भाषा या अलग संबद्ध भाषाओं की बोलियां हो सकती हैं। उसी रिपोर्ट ने सुझाया कि संकेत भाषाओं के 'समूह' चेक संकेत भाषा, हंगेरियाई संकेत भाषा और स्लोवाकियन संकेत भाषा के आस-पास केंद्रित है। यह समूह में रोमानियाई, बल्गेरियाई और पॉलिश संकेत भाषाएं शामिल हो सकती हैं।

ज्ञात वियुक्त भाषाओं में शामिल हैं निकारगुआई संकेत भाषा, अल-सैयद बेडोइन संकेत भाषा और प्रॉविडेन्स द्वीप संकेत भाषा।

जॉर्डन, लेबनान, सीरिया, फिलिस्तीन और ईराक (और संभवत: सऊदी अरब) की संकेत भाषाएं स्प्राचबंड का हिस्सा हो सकती हैं, या विशाल पूर्वी अरबी संकेत भाषा की एक बोली।

संकेत भाषाओं का वर्गीकरण

भाषाई वर्गीकरण (एडवर्ड सापिर की ओर लौटते हुए) शब्द संरचना पर आधारित है और समूहक शृंखलाबद्ध, विभक्तिप्रधान, बहुसंश्लिष्ट, संयोगी और वियोगात्मक जैसे रूपात्मक श्रेणियों में प्रभेद करता है।

संकेत भाषाएं वाक्यात्मक वर्गीकरण में भिन्न होती हैं चूंकि विभिन्न भाषाओं में शब्द का क्रम अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए, OG कर्ता-कर्म-क्रिया है, जबकिASL कर्ता-कर्म-क्रिया है। आस-पास बोली जाने वाली भाषाओं के साथ अनुरूपता असंभव नहीं है।

रूपात्मक तौर पर, शब्दाकार आवश्यक घटक है। प्रामाणिक शब्दाकार, यथा अक्षरात्मकता (एक- या बहु-) और रूपग्रामता (एक- या बहु-), दो विशेषताओं के बाइनरी मानों के व्यवस्थित युग्मन का फल है। **ब्रेंटरी** सांकेतिक भाषाओं को एकाक्षरी और बहुरूपग्रामीय विशेषताओं सहित एक समूह के रूप में (श्रवणात्मक के बजाय दृश्यात्मक) संप्रेषण के माध्यम द्वारा संपूर्ण समूह के रूप में वर्गीकृत करते हैं। इसका मतलब है, एक अक्षर (अर्थात् एक शब्द, एक संकेत) के जरिए कई रूपग्रामों को व्यक्त किया जा सकता है, जैसे कि क्रिया के कर्ता और कर्म, क्रिया की गति (रूपांतरण) की दिशा निर्धारित करते हैं। यह मौखिक भाषाओं के लिए तुलनात्मक उत्पादन दर सुनिश्चित करने हेतु संकेत भाषाओं के लिए आवश्यक है, क्योंकि एक संकेत के उत्पादन में एक शब्द

कहने से अधिक समय लगता है-लेकिन वाक्य दर वाक्य की तुलना में, सांकेतिक और मौखिक भाषाओं की लगभग एकसमान गति होती है।

सांकेतिक भाषाओं के लिखित रूप

सांकेतिक भाषा लेखन के मामले में मौखिक भाषा से अलग है। मौखिक भाषाओं की ध्वनिग्रामिक प्रणालियां मुख्यत: अनुक्रमिक हैं– अर्थात् अधिकांश ध्वनिग्राम एक के बाद एक आनुक्रमिक रूप से उत्पन्न किए जाते हैं, हालांकि कई भाषाओं में स्वर जैसे क्रमरहित पहलू भी हैं। परिणामस्वरूप, पारंपरिक ध्वनिग्रामिक लेखन प्रणालियां भी अनुक्रमिक हैं, जहां बल और स्वर जैसे क्रमरहित पहलुओं के लिए उत्तम ध्वनि-निर्देशक मौजूद हैं।

सांकेतिक भाषाओं में उच्च क्रमरहित घटक हैं, जहां कई 'ध्वनिग्राम' एक साथ उत्पन्न किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, संकेतों में उंगलियां, हाथ और लगातार हिलने वाला चेहरा या दो अलग दिशाओं में गतिशील दो हाथ शामिल हो सकते हैं। परंपरागत लेखन प्रणालियों को इस स्तर की जटिलता से निपटने के लिए परिकल्पित नहीं किया गया है।

आंशिक रूप से इस कारण, संकेत भाषाओं को अक्सर लिखा नहीं जाता है। बधिरों के लिए शिक्षा के अच्छे अवसर जिन देशों में उपलब्ध हैं, वहां कई बधिर संकेतक अपने देश की मौखिक भाषा को इस स्तर तक पर्याप्त रूप से पढ़ तथा लिख सकते हैं कि उन्हें 'कार्यात्मक साक्षर' मान लें। तथापि, कई देशों में, बधिरों के लिए शिक्षा व्यवस्था काफी खराब और या बहुत ही सीमित है। फलस्वरूप, अधिकांश बधिर लोग अपने देश की मौखिक भाषा में बहुत कम साक्षर या साक्षरता रहित हैं।

हालांकि, संकेत भाषाओं के लिए लिपि विकसित करने के कई प्रयास किए गए। स्टोको अंकन **विलियम स्टोको** द्वारा अपने 1965 डिक्शनरी ऑफ अमेरिकन साइन लैंग्वेज के लिए अभिकल्पित स्वनिम वर्णमाला है।ASL के लिए विशेष रूप से निर्मित, यह इस रूप में सीमित है कि इसमें चेहरे के हाव-भावों को व्यक्त करने का कोई तरीका नहीं है। हाल ही काASL-फाबेट आशुलिपि के अनुक्रम में स्टोको का एक न्यूनतम व्युत्पन्न है। दूसरी ओर, हैम्बर्ग संकेतन प्रणाली (HamNoSys) एक विस्तृत ध्वन्यात्मक प्रणाली है, जिसे किसी संकेत प्रणाली के लिए परिकल्पित नहीं किया गया और यह प्रायोगिक लिपि के बजाय शोधकर्ताओं के लिए प्रतिलेखन प्रणाली के रूप में अभिप्रेत है।

संकेत-लेखन एक व्यावहारिक और अब तक की सबसे लोकप्रिय प्रणाली, किसी भी संकेत भाषा के लिए प्रयुक्त की जा सकती है और इसमें मौखिक और चेहरे की अभिव्यक्तियों के संचालन के लिए पर्याप्त उपाय हैं। तथापि, यह चित्रत्मक होने और ध्वन्यात्मक न होने के कारण, इसमें संकेतों की प्रत्यक्ष संगतता मौजूद नहीं है और इन्हें अक्सर कई तरीकों से लिखा जा सकता है।

ये प्रणालियां चित्रात्मक प्रतीकों पर आधारित हैं। जैसे कि साइनराइटिंग (SignWriting) और हैमनोसिस (HamNoSys) आदि चित्रलिपि में हैं, जिसमें स्टोको अंकन जैसी अधिक प्रतीकात्मक हाथ, चेहरे और शरीर के परंपरागत चित्र हैं। स्टोको ने अंगुलीवर्तनी में प्रयुक्त हाथ के आकार को सूचित करने के लिए लैटिन वर्णमाला के अक्षरों और अरबी अंकों का इस्तेमाल किया, जैसे कि बंद मुट्ठी '।' के रूप में, सपाट हाथ के लिए 'ठ' और विस्तृत हाथ के लिए '5'य लेकिन जगह और गति के लिए गैर-वर्णमाला प्रतीक, जैसे शरीर के धड़ के लिए ' , ', संपर्क के लिए '×' और ऊपर की ओर संचालन के लिए '' '. डेविड जे. पीटरसन ने संकेत भाषा अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक वर्णमाला (SLIPA) के रूप में KkrASCII-अनुकूल एक ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन प्रणाली तैयार करने का प्रयास किया।

संकेतलेखन चित्रात्मक होने के कारण, एक संकेत में एक साथ तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम है। दूसरी ओर, स्टोको अंकन अनुक्रमिक है, जिसमें संकेत के स्थान के लिए और अंततः संचालन के लिए एक (या अधिक) प्रतीक का एक परंपरागत क्रम है। हाथ का दिग्विन्यास हाथ की आकृति से पहले एक वैकल्पिक विशेषक सहित सूचित किया जाता है। जब दो गतियां एक साथ होती हैं, तो वे एक दूसरे के ऊपर लिखी जाती हैं और जब वे अनुक्रमिक होती हैं, तब वे एक के बाद एक लिखी जाती है। न तो स्टोको और न ही हैमनोसिस लिपियां चेहरे का हाव-भाव या बिना हस्तचालन की गतियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए परिकल्पित हैं, जो दोनों ही संकेतलेखन आसानी से अनुकूलित की जा सकती हैं, हालांकि इसे धीरे-धीरे हैमनोसिस में सुधारा जा रहा है। तथापि, हैमनोसिस व्यावहारिक लिपि के बजाय एक भाषाई अंकन प्रणाली है।

समाज में संकेत भाषाएं

दूरसंचार सुलभ संकेत

सेवा स्थलों पर प्रयुक्त वीडियो दुभाषिया संकेत

संकेत भाषा के प्रयोक्ताओं को एक दूसरे के साथ संप्रेषित करने में मदद के लिए दूरसंचार की क्षमता के पहले प्रदर्शनों में से एक तब प्रस्तुत हुआ

जब।T&T का वीडियोफोन (जिसे 'पिक्चरफोन' ट्रेडमार्क के रूप में पेश किया गया)। 1964 न्यूयॉर्क विश्व मेले में सार्वजनिक तौर पर प्रवर्तित हुआ–मेले और दूसरे शहर में स्थित दो बधिर उपयोगकर्ता एक दूसरे के साथ आसानी से संवाद करने में सक्षम हुए। विभिन्न संगठनों ने भी वीडियोटेलीफोनी के माध्यम से संकेतों पर शोध का आयोजन किया है।

वर्तमान समय में वीडियो रिमोट इन्टरप्रेटिंग (VRI) या वीडियो रिले सर्विस (VRS) के जरिए संकेत भाषा का प्रतिपादन उपयोगी है जहां एक पक्ष बधिर, जिसकी श्रवण–शक्ति कमजोर हो या बोलने में अक्षम (गूंगा) हो तथा दूसरा सुन पाता हो। VRI में, संकेत भाषा का उपयोगकर्ता और एक सुन पाने वाला व्यक्ति एक ही स्थान में होते हैं और एक दुभाषिया दूसरे स्थान में (ग्राहकों के साथ एक ही कमरे में होने जैसे सामान्य मामले के बजाय)। दुभाषिया एक वीडियो दूरसंचार लिंक के जरिए संकेत भाषा के प्रयोक्ता के साथ और एक ऑडियो लिंक द्वारा सुन पाने वाले व्यक्ति के साथ संप्रेषण करता है। VRS में, संकेत भाषा का प्रयोक्ता, दुभाषिया और सुन पाने वाला व्यक्ति तीन अलग स्थानों में होते हैं, इस प्रकार दो पक्ष दुभाषिया के माध्यम से फोन पर एक दूसरे से बात कर पाते हैं।

ऐसे मामलों में व्याख्या प्रवाह सामान्यत: संकेत भाषा और मौखिक भाषा के बीच होता है, जो आम तौर पर एक ही देश में प्रयुक्त होता है, जैसे मौखिक फ्रेंच के लिए फ्रांसीसी संकेत भाषा (FSL), मौखिक स्पैनिश के लिए स्पैनिश संकेत भाषा (SSL), मौखिक अंग्रेजी के लिए ब्रिटिश संकेत भाषा (BSL), मौखिक अंग्रेजी के लिए अमेरिकी संकेत भाषा (ASL) भी (चूंकि BSL औरऐस् पूरी तरह अलग हैं) आदि, मूल भाषाओं के बीच अनुवाद भी करने में सक्षम (जैसे कि SSL से और में तथा मौखिक अंग्रेजी से और में) बहुभाषी संकेत भाषा दुभाषिये भी उपलब्ध हैं, लेकिन कम. इस तरह की गतिविधियों में दुभाषिये को पर्याप्त प्रयास करना पड़ता है, क्योंकि देश में प्रयुक्त मौखिक भाषा से संकेत भाषा अपनी ही रचना और वाक्यविन्यास सहित भिन्न सहज भाषा होने के कारण, अलग हैं।

एक बहरे व्यक्ति द्वारा श्रवण शक्ति वाले व्यक्ति से संवाद के लिए वीडियो रिले सेवा का उपयोग:

वीडियो व्याख्या के साथ, सांकेतिक भाषा के दुभाषिये लाइव वीडियो और ऑडियो फीड सहित सुदूर रहते हुए काम करते हैं, ताकि दुभाषिया बधिर

को देख सके और सुन पाने वाले व्यक्ति के साथ और उलटे, बातचीत कर सके. टेलीफोन व्याख्या के समान ही, वीडियो व्याख्या ऐसे अवसरों पर इस्तेमाल किया जा सकता है, जब उसी स्थान पर (ऑन-साइट) दुभाषिए उपलब्ध न हों. तथापि, वीडियो व्याख्या का उन स्थितियों में उपयोग नहीं किया जा सकता है जब सभी पक्ष केवल टेलीफोन के माध्यम से बात कर रही हों। VRI और vrs व्याख्या में सभी पक्षों के पास जरूरी उपकरण होना आवश्यक है। कुछ आधुनिक उपकरण दुभाषियों को दूरस्थ वीडियो कैमरा नियंत्रित करने में सक्षम बनाता है, ताकि संकेत करने वाले पक्ष पर कैमरा जूम-इन और जूम-आउट या इंगित कर सकें।

घरेलू संकेत

कभी-कभी एक ही परिवार के भीतर संकेत प्रणालियां विकसित होती हैं। उदाहरण के लिए, जब बिना सांकेतिक भाषा कौशल के श्रवण शक्ति वाले माता-पिता की संतान बधिर हो, स्वाभाविक तौर पर संकेतों की एक अनौपचारिक प्रणाली विकसित होती है, बशर्ते कि माता-पिता इसका दमन न करें। इन लघु-भाषाओं के लिए प्रयुक्त शब्द है होम साइन (कभी-कभी होमसाइन या किचन साइन)।

घरेलू संकेत संप्रेषण के किसी अन्य तरीके के अभाव के कारण उत्पन्न होते हैं। एकल जीवनकाल में और समुदाय के समर्थन के बिना, बच्चा अपने संप्रेषण की जरूरतों को पूरा करने के लिए स्वाभाविक रूप से संकेतों का आविष्कार करता है। हालांकि बच्चे के बौद्धिक विकास के लिए इस प्रकार की प्रणाली समग्रतः अपर्याप्त है और यह सामान्य रूप से, एक पूर्ण भाषा को परिभाषित करने के लिए भाषाविदों द्वारा निर्धारित मानक को किसी भी तरह से पूरा नहीं करता है। घरेलू संकेत का किसी भी प्रकार को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है।

श्रवण शक्ति वाले समुदायों में संकेतों का प्रयोग

इशारा मौखिक भाषाओं का विशेष घटक है। हस्तचालित संप्रेषण की विस्तृत प्रणालियां ऐसी जगहों या परिस्थितियों में विकसित हुई हैं, जहां बातचीत प्रायोगिक या अनुमत नहीं है, जैसे कि धार्मिक समुदायों के मठ, स्कूबा डाइविंग, टेलीविजन रिकॉर्डिंग स्टूडियो, कोलाहलपूर्ण कार्यस्थल, शेयर बाजार, बेसबाल,

शिकार (कालाहारी बुशमेन जैसे समूहों द्वारा), या शराड खेल में, रग्बी यूनियन में रेफरी दर्शकों को अपने निर्णय संप्रेषित करने के लिए सीमित लेकिन परिभाषित संकेतों का उपयोग करता है। हाल ही में, छोटे बच्चों को उनके द्वारा बोलना सीखने से पहले संकेत भाषा को सिखाने और प्रोत्साहित करने का आंदोलन चल पड़ा है, क्योंकि कुछ बच्चे मौखिक रूप से बोलना शुरू करने से पहले ही सांकेतिक भाषाओं के जरिए प्रभावी रूप से संप्रेषित करने में सक्षम होते हैं। इसे आम तौर पर बेबी साइन के रूप में जाना जाता है। इसके अलावा वाक क्षति या विलंब जैसे अन्य कारणों वाले ऐसे बच्चे, जो बहरे नहीं हैं या सुनने में असमर्थ नहीं हैं, बोलने पर निर्भर न करते हुए प्रभावी संप्रेषण के लाभ की दृष्टि से संकेत भाषाओं के उपयोग का भी आंदोलन चल पड़ा है।

ऐसे अवसर पर, जहां बहरे लोगों की मौजूदगी काफी अधिक है, एक संपूर्ण स्थानीय समुदाय द्वारा बधिर सांकेतिक भाषा को अपनाया गया है। इसके प्रसिद्ध उदाहरणों में शामिल हैं संयुक्त राज्य अमेरिका में मार्था की वाइनयार्ड संकेत भाषा, बाली के ग्राम में काटा कोलोक, घाना में एडमोरोब संकेत भाषा और मेक्सिको में युकाटेक माया संकेत भाषा, ऐसे समुदायों में बहरे लोगों सामाजिक रूप से वंचित नहीं रहते हैं।

कई ऑस्ट्रेलियाई आदिवासी सांकेतिक भाषाएं, शोक या दीक्षा संस्कार जैसे अवसरों पर बोलने संबंधी व्यापक निषेध के संदर्भ में उत्पन्न हुईं, वे वार्लपिरि, वारुमुंगु, डेइरी, केटेटाइ, अरेन्टे और वार्लमान्पा के बीच विशेष रूप से अत्यधिक विकसित हैं या थीं और अपनी संबद्ध मौखिक भाषाओं पर आधारित हैं। एक मिश्रित सांकेतिक भाषा उत्तरी अमेरिका के विशाल मैदानों में अमेरिकन इंडियन की जनजातियों के बीच पनपी (देखें मैदानी इंडियन संकेत भाषा)। यह विभिन्न मौखिक भाषाओं वाली जनजातियों के बीच संप्रेषण के लिए प्रयोग में लाई गई। आजकल विशेष रूप से क्रो, चेयेन और अरपाहो के बीच उपयोगकर्ता हैं। श्रवण शक्ति वाले लोगों द्वारा विकसित अन्य संकेत भाषाओं से भिन्न, यह बधिर संकेत भाषाओं के स्थानिक व्याकरण से मिलता-जुलता है।

मानवीय भाषा मूल के संकेत सिद्धांत

संकेत सिद्धांत कहता है कि मुखर मानव भाषा का विकास इशारों की संकेत भाषा से हुआ है। संकेत सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण सवाल है कि सस्वर उच्चारण में बदलने के क्या कारण हैं।

सांकेतिक भाषा का वानर द्वारा उपयोग

मानवों से संवाद करने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा गैर-मानव वानरों को बुनियादी संकेत सिखाने के कई उल्लेखनीय उदाहरण मौजूद हैं। उल्लेखनीय उदाहरण हैं–

चिम्पांजी: वॉशू और लउलिस

गोरिल्ला:। माइकल और कोको.

बधिर समुदाय और बधिर संस्कृति

बधिर समुदाय दुनिया भर में व्यापक रूप से फैले हैं और उनके बीच मौजूद संस्कृति बहुत समृद्ध है। श्रव्य सूचना को समझने में बधिर लोगों के लिए अलग बाधाओं के कारण, कभी-कभी यह श्रवण संस्कृति के साथ समाविष्ट नहीं होता है।

कानूनी मान्यता

कुछ संकेत भाषाओं ने किसी न किसी रूप में कानूनी मान्यता हासिल की है, जबकि अन्य को कोई महत्व हासिल नहीं है।

7

भाषा-परिवार

आपस में सम्बंधित भाषाओं को भाषा-परिवार कहते हैं। कौन भाषाएँ किस परिवार में आती हैं, इनके लिये वैज्ञानिक आधार हैं।

इस समय संसार की भाषाओं की तीन अवस्थाएँ हैं। विभिन्न देशों की प्राचीन भाषाएँ ,जिनका अध्ययन और वर्गीकरण पर्याप्त सामग्री के अभाव में नहीं हो सका है, पहली अवस्था में है। इनका अस्तित्त्व इनमें उपलब्ध प्राचीन शिलालेखों, सिक्कों और हस्तलिखित पुस्तकों में अभी सुरक्षित है। मेसोपोटेमिया की पुरानी भाषा 'सुमेरीय' तथा इटली की प्राचीन भाषा 'एत्रस्कन' इसी तरह की भाषाएँ हैं। दूसरी अवस्था में ऐसी आधुनिक भाषाएँ हैं, जिनका सम्यक् शोध के अभाव में अध्ययन और विभाजन प्रचुर सामग्री के होते हुए भी नहीं हो सका है। बास्क, बुशमन, जापानी, कोरियाई, अंडमानी आदि भाषाएँ इसी अवस्था में हैं। तीसरी अवस्था की भाषाओं में पर्याप्त सामग्री है और उनका अध्ययन एवं वर्गीकरण हो चुका है। ग्रीक, अरबी, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि अनेक विकसित एवं समृद्ध भाषाएँ इसके अन्तर्गत हैं।

वर्गीकरण के आधार

भाषा का सम्बन्ध व्यक्ति, समाज और देश से होता है। इसलिए प्रत्येक भाषा की निजी विशेषता होती है। इनके आधार पर वह एक ओर कुछ भाषाओं से समानता स्थापित करती है और दूसरी ओर बहुत-सी भाषाओं से असमानता।

मुख्यत: यह वैशिष्टयगत साम्य-वैषम्य दो प्रकार का होता है-आकृतिमूलक और अर्थतत्त्व सम्बन्धी। प्रथम के अन्तर्गत शब्दों की आकृति अर्थात् शब्दों और वाक्यों की रचनाशैली की समानता देखी जाती है। दूसरे में अर्थतत्त्व की समानता रहती है। इनके अनुसार भाषाओं के वर्गीकरण की दो पद्धतियाँ होती हैं-आकृतिमूलक और पारिवारिक या ऐतिहासिक। इस विवेचन का सम्बन्ध ऐतिहासिक वर्गीकरण से है इसलिए उसके आधारों को थोड़ा विस्तार से जान लेना चाहिए। इसमें आकृतिमूलक समानता के अतिरिक्त निम्निलिखित समानताएँ भी होनी चाहिए।

भौगोलिक समीपता

भौगोलिक दृष्टि से प्राय: समीपस्थ भाषाओं में समानता और दूरस्थ भाषाओं में असमानता पायी जाती है। इस आधार पर संसार की भाषाएँ अफ्रीका, यूरेशिया, प्रशांतमहासागर और अमरीका के खड़ों में विभाजित की गयी हैं। किन्तु यह आधार बहुत अधिक वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि दो समीपस्थ भाषाएँ एक-दूसरे से भिन्न हो सकती हैं और दो दूरस्थ भाषाएँ परस्पर समान। भारत की हिन्दी और मलयालम दो भिन्न परिवार की भाषाएँ हैं, किन्तु भारत और इंग्लैंड जैसे दूरस्थ देशों की संस्कृत और अंग्रेजी एक ही परिवार की भाषाएँ हैं।

शब्दानुरूपता

समान शब्दों का प्रचलन जिन भाषाओं में रहता है, उन्हें एक कुल के अन्तर्गत रखा जाता है। यह समानता भाषा-भाषियों की समीपता पर आधारित है और दो तरह से सम्भव होती है। एक ही समाज, जाति अथवा परिवार के व्यक्तियों द्वारा शब्दों के समान रूप से व्यवहृत होते रहने से समानता आ जाती है। इसके अतिरिक्त जब भिन्न देश अथवा जाति के लोग सभ्यता और साधनों के विकसित हो जाने पर राजनीतिक अथवा व्यावसायिक हेतु से एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं तो शब्दों के आदान-प्रदान द्वारा उनमें समानता स्थापित हो जाती है। पारिवारिक वर्गीकरण के लिए प्रथम प्रकार की अनुरूपता ही काम की होती है, क्योंकि ऐसे शब्द भाषा के मूल शब्द होते हैं। इनमें भी नित्यप्रति के कौटुम्बिक जीवन में प्रयुक्त होनेवाले संज्ञा, सर्वनाम आदि शब्द ही अधिक उपयोगी होते हैं। इस आधार में सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि अन्य भाषाओं से आये हुए शब्द भाषा के विकसित

होते रहने से मूल शब्दों में ऐसे घुलमिल जाते हैं कि उनको पहचान कर अलग करना कठिन हो जाता है।

इस कठिनाई का समाधान एक सीमा तक अर्थगत समानता है क्योंकि एक परिवार की भाषाओं के अनेक शब्द अर्थ की दृष्टि से समान होते हैं और ऐसे शब्द उन्हें एक परिवार से सम्बन्धित करते हैं। इसलिए अर्थपरक समानता भी एक महत्त्वपूर्ण आधार है।

ध्वनिसाम्य

प्रत्येक भाषा का अपना ध्वनि-सिद्धान्त और उच्चारण-नियम होता है। यही कारण है कि वह अन्य भाषाओं की ध्वनियों से जल्दी प्रभावित नहीं होती हैं और जहाँ तक हो सकता है उन्हें ध्वनिनियम के अनुसार अपनी निकटस्थ ध्वनियों से बदल लेती है। जैसे फारसी की क, ख, फ आदि ध्वनियाँ हिन्दी में निकटवर्ती क, ख, फ आदि में परिवर्तित होती है। अतः ध्वनिसाम्य का आधार शब्दावली-समता से अधिक विश्वसनीय है। वैसे कभी-कभी एक भाषा के ध्वनिसमूह में दूसरी भाषा की ध्वनियाँ भी मिलकर विकसित हो जाती हैं और तुलनात्मक निष्कर्षों को भ्रामक कर देती हैं। आर्य भाषाओं में वैदिक काल से पहले मूर्धन्य ध्वनियाँ नहीं थी, किन्तु द्रविड़ भाषा के प्रभाव से आगे चलकर विकसित हो गयीं।

व्याकरणगत समानता

व्याकरणिक आधार सबसे अधिक प्रामाणिक होता है, क्योंकि भाषा का अनुशासन करने के कारण यह जल्दी बदलता नहीं है। व्याकरण की समानता के अन्तर्गत धातु, धातु में प्रत्यय लगाकर शब्द-निर्माण व्याकरणिक प्रक्रिया द्वारा शब्दों से पदों की रचना तथा वाक्यों में पद-विन्यास के नियम आदि की समानता का निर्धारण आवश्यक है।

इन चार आधारों पर भाषाओं की अधिकाधिक समानता निश्चित करते उनका वर्गीकरण किया जाता है। इस सम्बन्ध में स्पष्टरूप से समझ लेना चाहिए कि यह साम्य-वैषम्य सापेक्षिक है। जहाँ एक ओर भारोपीय परिवार की भाषाएँ अन्य परिवार की भाषाओं से भिन्न और आपस में समान हैं वहाँ दूसरी ओर संस्कृत, फारसी, ग्रीक आदि भारोपीय भाषाएँ एक-दूसरे से इन्हीं आधारों पर भिन्न भी हैं।

वर्गीकरण की प्रक्रिया

वर्गीकरण करते समय सबसे पहले भौगोलिक समीपता के आधार पर संपूर्ण भाषाएँ यूरेशिया, प्रशांतमहासागर, अफ्रीका और अमरीका खंडों अथवा चक्रों में विभक्त होती हैं। फिर आपसी समानता रखनेवाली भाषाओं को एक कुल या परिवार में रखकर विभिन्न परिवार बनाये जाते हैं। अवेस्ता, फारसी, संस्कृत, ग्रीक आदि की तुलना से पता चला कि उनकी शब्दावली, ध्वनिसमूह और रचना-पद्धति में काफी समानता है। अतः भारत और यूरोप के इस तरह की भाषाओं का एक भारतीय कुल बना दिया गया है। परिवारों को वर्गों में विभक्त किया गया है। भारोपीय परिवार में शतम् और केन्तुम ऐसे ही वर्ग हैं। वर्गों का विभाजन शाखाओं में हुआ है। शतम् वर्ग की 'ईरानी' और 'भारतीय आर्य' प्रमुख शाखाएँ हैं। शाखाओं को उपशाखा में बाँटा गया है। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को भीतरी और बाहरी उपशाखा में विभक्त किया है। अतः उपशाखाएँ भाषा-समुदायों और समुदाय भाषाओं में बँटते हैं। इस तरह भाषा पारिवारिक-वर्गीकरण की इकाई है। इस समय भारोपीय परिवार की भाषाओं का अध्ययन इतना हो चुका है कि यह पूर्ण प्रक्रिया उस पर लागू हो जाती है। इन नामों में थोड़ी हेर-फेर हो सकता है, किन्तु इस प्रक्रिया की अवस्थाओं में प्रायः कोई अन्तर नहीं होता।

मुख्य भाषा-परिवार

दुनिया भर में बोली जाने वाली करीब सात हजार भाषाओं को कम से कम दस परिवारों में विभाजित किया जाता है, जिनमें से प्रमुख परिवारों का जिक्र नीचे है ।

भारत-यूरोपीय भाषा-परिवार (भारोपीय भाषा परिवार)

(Indo&European family)

यह समूह भाषाओं का सबसे बड़ा परिवार है और सबसे महत्वपूर्ण भी है क्योंकि अंग्रेजी, रूसी, प्राचीन फारसी, हिन्दी, पंजाबी, जर्मन - ये तमाम भाषाएँ इसी समूह से संबंध रखती हैं। इसे 'भारोपीय भाषा-परिवार' भी कहते हैं। विश्व जनसंख्या के लगभग आधे लोग (45%) भारोपीय भाषा बोलते हैं।

संस्कृत, ग्रीक और लातीनी जैसी शास्त्रीय भाषाओं का संबंध भी इसी समूह से है। लेकिन अरबी एक बिल्कुल विभिन्न परिवार से संबंध रखती है।

इस परिवार की प्राचीन भाषाएँ बहिर्मुखी श्लिष्ट-योगात्मक (end&inflecting) थीं। इसी समूह को पहले आर्य-परिवार भी कहा जाता था।

चीनी-तिब्बती भाषा-परिवार

विश्व में जनसंख्या के अनुसार सबसे बड़ी भाषा मन्दारिन (उत्तरी चीनी भाषा) इसी परिवार से संबंध रखती है। चीन और तिब्बत में बोली जाने वाली कई भाषाओं के अलावा बर्मी भाषा भी इसी परिवार की है। इनकी स्वरलहरी एक ही है। एक ही शब्द अगर ऊँचे या नीचे स्वर में बोला जाय तो शब्द का अर्थ बदल जाता है।

इस भाषा परिवार को 'नाग भाषा परिवार' नाम दिया गया है। इसे 'एकाक्षर परिवार' भी कहते हैं। कारण कि इसके मूल शब्द प्रायः एकाक्षर होते हैं। ये भाषाएँ कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, नेपाल, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, भूटान, अरूणाचल प्रदेश, आसाम, नागालैंड, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा और मिजोरम में बोली जाती हैं।

सामी-हामी भाषा-परिवार या अफ्रीकी-एशियाई भाषा-परिवार

इसकी प्रमुख भाषाओं में आरामी, असेरी, सुमेरी, अक्कादी और कनानी वगैरह शामिल थीं लेकिन आजकल इस समूह की प्रसिद्धतम भाषाएँ अरबी और इब्रानी हैं। इन भाषाओं में मुख्यतः तीन धातु-अक्षर होते हैं और बीच में स्वर घुसाकर इनसे क्रिया और संज्ञाएँ बनायी जाती हैं

द्रविड़ भाषा-परिवार

भाषाओं का द्रविड़ी परिवार इस लिहाज से बड़ा दिलचस्प है कि हालाँकि ये भाषाएँ भारत के दक्षिणी प्रदेशों में बोली जाती हैं, लेकिन उनका उत्तरी क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाओं से कोई संबंध नहीं है (संस्कृत से ऋण शब्द लेने के अलावा)।

इसलिए उर्दू या हिंदी का अंग्रेजी या जर्मन भाषा से तो कोई रिश्ता निकल सकता है, लेकिन मलयालम भाषा से नहीं।

दक्षिणी भारत और श्रीलंका में द्रविड़ी समूह की कोई 26 भाषाएँ बोली जाती हैं, लेकिन उनमें ज्यादा मशहूर तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ हैं। ये अन्त-अश्लिष्ट-योगात्मक भाषाएँ हैं।

यूराल-अतलाई कुल

प्रमुख भाषाओं के आधार पर इसके अन्य नाम–'तूरानी', 'सीदियन', 'फोनी-तातारिक' और 'तुर्क-मंगोल-मंचू' कुल भी हैं। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है, किन्तु मुख्यत: साइबेरिया, मंचूरिया और मंगोलिया में हैं। प्रमुख भाषाएँ-तुर्की या तातारी, किरगिज, मंगोली और मंचू है, जिनमे सर्व प्रमुख तुर्की है। साहित्यिक भाषा उस्मानली है। तुर्की पर अरबी और फारसी का बहुत अधिक प्रभाव था किन्तु आजकल इसका शब्दसमूह बहुत कुछ अपना है। ध्वनि और शब्दावली की दृष्टि से इस कुल की यूराल और अल्ताई भाषाएँ एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं। इसलिए कुछ विद्वान् इन्हें दो पृथक् कुलों में रखने के पक्ष में भी हैं, किन्तु व्याकरणिक साम्य पर निस्सन्देह वे एक ही कुल की भाषाएँ ठहरती हैं। प्रत्ययों के योग से शब्दनिर्माण का नियम, धातुओं की अपरिवर्तनीयता, धातु और प्रत्ययों की स्वरानुरूपता आदि एक कुल की भाषाओं की मुख्य विशेषताएँ हैं। स्वरानुरूपता से अभिप्राय यह है कि मक प्रत्यय यज्धातु में लगने पर यज्मक् किन्तु साधारणतया विशाल आकार और अधिक शक्ति की वस्तुओं के बोधक शब्द पुंल्लिंग तथा दुर्बल एंव लघु आकार की वस्तुओं के सूचक शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। (लिखना) में यज् के अनुरूप रहेगा, किन्तु सेव् में लगने पर, सेवमेक (तुर्की), (प्यार करना) में सेव् के अनुरूप मेक हो जायगा।

भारत के भाषा-परिवार

भारत में मुख्यत: चार भाषा परिवार है–1. भारोपीय 2. द्रविड़ 3. आस्ट्रिक 4. चीनी-तिब्बती।

भारत में सबसे अधिक भारोपीय भाषा परिवार (लगभग 73%) की भाषा बोली जाती है।

भारत में विश्व के सबसे चार प्रमुख भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। सामान्यत: उत्तर भारत में बोली जाने वाली भारोपीय भाषा परिवार की भाषाओं को आर्य भाषा समूह, दक्षिण की भाषाओं को द्रविड़ भाषा समूह, ऑस्ट्रो-एशियाटिक परिवार की भाषाओं को भुंडारी भाषा समूह तथा पूर्वोत्तर में रहने वाले तिब्बती-बर्मी, नृजातीय भाषाओं को चीनी-तिब्बती (नाग भाषा समूह) के रूप में जाना जाता है।

हिन्द आर्य भाषा परिवार

यह परिवार भारत का सबसे बड़ा भाषाई परिवार है। इसका विभाजन 'इन्डो-यूरोपीय' (हिन्द यूरोपीय) भाषा परिवार से हुआ है, इसकी दूसरी शाखा 'इन्डो-ईरानी' भाषा परिवार है, जिसकी प्रमुख भाषायें फारसी, ईरानी, पश्तो, बलूची इत्यादि हैं। भारत की दो तिहाई से अधिक आबादी हिन्द आर्य भाषा परिवार की कोई न कोई भाषा विभिन्न स्तरों पर प्रयोग करती है, जिसमें संस्कृत समेत मुख्यत: उत्तर भारत में बोली जानेवाली अन्य भाषायें जैसे: हिन्दी, उर्दू, मराठी, नेपाली, बांग्ला, गुजराती, कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, उड़िया, असमिया, मैथिली, भोजपुरी, मारवाड़ी, गढ़वाली, कोंकणी इत्यादि भाषायें शामिल हैं।

द्रविड़ भाषा परिवार

यह भाषा परिवार भारत का दूसरा सबसे बड़ा भाषायी परिवार है। इस परिवार की सदस्य भाषायें ज्यादातर दक्षिण भारत में बोली जाती हैं। इस परिवार का सबसे बड़ा सदस्य तमिल है, जो तमिलनाडु में बोली जाती है। इसी तरह कर्नाटक में कन्ड़, केरल में मलयालम और आंध्रप्रदेश में तेलुगू इस परिवार की बड़ी भाषायें हैं। इसके अलावा तुलू और अन्य कई भाषायें भी इस परिवार की मुख्य सदस्य हैं। अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारतीय कश्मीर के सीमावर्ती क्षेत्रों में इसी परिवार की ब्राहुई भाषा भी बोली जाती है जिसपर बलूची और पश्तो जैसी भाषाओं का असर देखने को मिलता है।

आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार

यह प्राचीन भाषा परिवार मुख्य रूप से भारत में झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के ज्यादातर हिस्सों में बोली जाती है। संख्या की दृष्टि से इस परिवार की सबसे बड़ी भाषा संथाली या संताली है। यह पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, झारखंड और असम में मुख्यरूप से बोली जाती है। इस परिवार की अन्य प्रमुख भाषाओं में हो, मुंडारी, संथाली या संताली, खड़िया, सावरा इत्यादी भाषायें हैं।

चीनी-तिब्बती भाषा परिवार

इस परिवार की ज्यादातर भाषायें भारत के सात उत्तर-पूर्वी राज्यों, जिन्हें 'सात-बहनें' भी कहते हैं, में बोली जाती है। इन राज्यों में अरुणाचल प्रदेश,

मेघालय, मणिपुर, नागालैंड, मिजोरम, त्रिपुरा और असम का कुछ हिस्सा शामिल है। इस परिवार पर चीनी और आर्य परिवार की भाषाओं का मिश्रित प्रभाव पाया जाता है और सबसे छोटा भाषाई परिवार होने के बावजूद इस परिवार के सदस्य भाषाओं की संख्या सबसे अधिक है। इस परिवार की मुख्य भाषाओं में नागा, मिजो, म्हार, मणिपुरी, तांगखुल, खासी, दफला, चम्बा, बोडो, तिब्बती, लद्दाखी, लेव्या तथा आओ इत्यादि भाषायें शामिल हैं।

अंडमानी भाषा परिवार

जनसंख्या की दृष्टि से यह भारत का सबसे छोटा भाषाई परिवार है। इसकी खोज पिछले दिनों मशहूर भाषा विज्ञानी प्रो. **अन्विता अब्बी** ने की। इसके अंतर्गत अंडबार-निकाबोर द्वीप समूह की भाषाएं आती हैं, जिनमें प्रमुख हैं- अंडमानी, ग्रेड अंडमानी, ओंगे, जारवा आदि।

8

भारत की बोलियाँ

भारत में 'भारतीय जनगणना 1961' (संकेत चिह्न = जन.) के अनुसार 1652 मातृभाषाएँ (बोलियाँ) चार भाषा परिवारों में वर्गीकृत की गई हैं। नीचे बोलियों के विवरण में आधार डॉ. ग्रियर्सन का 'भारत भाषा सर्वेक्षण' (संकेत चिह्न = ग्रि.) है, किंतु नीवनतम शोध अध्ययन सर्वोपरि माने गए हैं। तुलना के लिये जन. का उल्लेख किया गया है। बोलियों के मिलनस्थलों पर मतभेद असंभव नहीं है। कोष्ठकों में बोलियों के स्थान वर्णित है।

भारोपीय भाषा परिवार

संसार के भाषा परिवारों में कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण भारोपीय भाषा परिवार की दरद शाखा के दरद वर्ग की शिना भाषा की बोली गिलगिती (गिलगित) और कश्मीरी भाषा की किश्तवारी (किश्तवार क्षेत्र), पोंगुली (जम्मू), भुजवाली (दोड़ा जिला), सिराजी (जम्मू कश्मीर) विशेषत: उल्लेख्य हैं।

यद्यपि मूल लहँगा तथा सिंधी क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया है, फिर भी विस्थापितों के रूप में लहँदा की 14 बोलियों में मुल्तानी तथा पुच्छी (जम्मू) एवं सिंधी की सात बोलियों में कच्छी (कच्छ) प्रमुखत: पाई गई।

जन. में मराठी की 65 बोलियाँ हैं। दक्षिण महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, में (उत्तर) बोली जानेवाली कोंकणी वस्तुत: स्वतंत्र भाषा है, मराठी की बोली, जैसा गियर्सन ने कहा था, नहीं है। कोंकणी की 16 बोलियों में चेट्टि भाषा

कोंकणी (केरल) गोअनीज (गोआ) एवं कुदबी प्रमुख है। मराठी के अंतर्गत हलबी (बस्तर), कमारी (रायपुर), कटिया (छिंदवाड़ा, बेतुल) कटकारी (कोलाबा) कोष्ठी मराठी (कोष्ठी जाति द्वारा आंध्र, म. प्र. प्रमुखतः नागपुर एवं भंडारा में प्रयुक्त), क्षत्रिय मराठी (केवल मैसूर राज्य), छिंदवाड़ा शिओनी ठाकरी (कोलाबा) बोलियाँ जन. में उल्लिखित हैं। शेष करहंडी, मिरगानी, भंडारी प्रभृति उल्लेख्य हैं।

उड़ीसा की 24 बोलियों में भमी (प्रमुखतः बस्तर), भुइया (सुंदरगढ़, धेनकनाल, केओंझर), रेल्ली (आंध्र) पइड़ी (आंध्र) प्रमुख हैं। कटक की कटकी, आंध्र सीमा पर गंजामी, संभलपुर में संभलपुरी भी उल्लेख हैं।

बंगाली के अंतर्गत जन. में उल्लिखित 15 बोलियों में चकमा (मीजो पहाड़ियाँ, त्रिपुरा, असम,) किसनगँजिया (बिहार), राजवंशी (जलपाईगुड़ी) प्रमुख है। ग्रियर्सन ने सरकी, खड़ियाठार, कोच आदि भी गिनाई हैं। जन. में असम की कोई बोली नहीं वर्णित है, किंतु ग्रियर्सन ने कछार के हिंदुओं की बिशुनपुरिया का उल्लेख किया था।

हिंदी क्षेत्र में बिहारी वर्ग में 35 मातृ बोलिया हैं जिनमें–

1. भोजपुरी (पूर्वी फैजाबाद, दक्षिणी पूर्वी मिर्जापुर, वराणसी, पूर्वी जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, बस्ती का पूर्वी भाग, गोरखपुर, देवरिया, सारन, शाहाबाद)
2. मैथिली (तिरहुतिया) मिथिला प्रदेश (चंपारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, दरभंगा, पूर्णिया, सहरसा, माल्टा, तथा दिनाजपुर)–
3. मगही (गया, पटना, तथा संथाल परगना में अंशतः) प्रमुख बोलियाँ हैं।–
4. नागपुरी (झारखंड के लातेहार, छात्र, पालामु, लोहारदागा, गुमला, राचीं, सिमडेगा जिले, छत्तीसगढ़ के जाशपुर, उड़ीसा के सुनदरगड़ जिला)

मैथिली की उपबोली सिराजपुरी पूर्णिया में बोली जाती है। पूर्वी हिंदी की अवधी एवं छत्तीसगढ़ी प्रमुख बोलियाँ हैं। अवधी लखीमपुर, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव, फतेहपुर बहराइच, बाराबंकी, रायबरेली, गोंडा, फैजाबाद, सुलतानपुर, प्रतापगढ़ जौनपुर, मिर्जापुर जिलों की बोली है। इसमें बाँदा भी गिना जा सकता है। बधेली रीवा सतना शहडोल के अतिरिक्त ग्रि. के अनुसार दमोह, जबलपुर, मांडला, बालाघाट तक फैली है अवधी की मरारी पोआली तथा परदेशी महाराष्ट्र भी बोलियाँ हैं। छत्तीसगढ़ी छत्तीसगढ़, रायपुर, रायगढ़ दुर्ग बिलासपुर, सरगुजा, बस्तर में (डॉ. उदयनारायण के अनुसार) काकेर, कबधा चाँदा उत्तर पूर्व में भी

बोली जाती है। सरगुजिया सरगुजा में ग्रियर्सन के अनुसार कोरिया उदयपुर में भी, ग्वारो उपबोली असम में, तथा लरिया उड़ीसा में बोली जाती है।

पश्चिमी हिंदी

1. कौरवी खड़ी बोली (रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून–मैदानी भाग, अंबाला, कलसिया, आदि),
2. बांगरू (द. पंजाब के करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला, का कुछ भाग, नाभा, जींद),
3. ब्रजभाषा (ग्रियर्सन के अनुसार मथुरा, अलीगढ़, आगरा, एटा, बुलंदशहर, मैनपुरी, बदायूँ, बरेली, गुड़गाँव जिला पूर्वी पट्टी, भरतपुर, धौलपुर, करौली, जयपुर पूर्व,) **डॉ. धीरेंन्द्र वर्मा** के अनुसार
4. कन्नौजी बोली ब्रजभाषा के अंतर्गत है, अतः पीलीभीत, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद, हरदोई, इटावा और कानपुर भी ब्रजभाषा में गिने जा सकते हैं। **नवीनतम शोध** के अनुसार–
5. बुंदेली झाँसी, हमीरपुर, जालौन, छतरपुर, छीकमगढ़ दतिया, भिंड, ग्वालियर, मुरैना, शिवपुरी, गुना, सागर, पन्ना, दमोह, सिवनी, छिंदवाड़ा, नरसिंहपुर, रायसेन, विदिशा, होशंगाबाद, तथा बेतूल जिलों में बोली जाती है।

पूरे राजस्थान में राजस्थानी बोली 71 मातृ बोलियों सहित फैली है। जन. के अनुसार इनमें बागरी राजस्थानी (गंगानगर, सीकर,) बंजारी (महाराष्ट्र मैसूर), धुघारी (जयपुर, सीकर, सवाई माधोपुर, टोंक), लमनी (लंबडी) (आंध्र), गोजरी (जम्मू कश्मीर), हाड़ौती (बूँदी, कोटा, झालावार) खैसरी (बूंदी भीलवारा), मालवा (मालवा में – मंदसौर, उज्जैन, इंदौर, देवास, शाजपुर, रतलाम, चित्तोड़गढ़), माराड़ी (मारवाड़ में गंगानगर, बीकानेर, चूरू, झुंझुनू, सीकर, अजमेर, जैसलमेर, जोधपुर, नागौर, पाली, बाड़मेर, जालोर, सिरोही), मेवाड़ी (मेवाड़ भीलवड़ा, उदयपुर, चितौरगढ़) शेखावटी (झुंझुनू), प्रमुख बोलियाँ हैं। निमाड़ी धार तथा निमाड़ की बोली हैं। ग्रि. में भीली तथा खानदेशी मिश्रित बोलियाँ भाषा के रूप में पृथक वर्णित हैं। जन. के अनुसार भीलो की 36 उपबोलियों में बारेल (छोटा उदयपुर स्टेट) (भिलाली भीलों, भीलोड़ो) (बरार, खानदेश, म. प्र. एवं महाराष्ट्र का कुछ भाग), गमती गवित (गुजरात), कोकना (कुन्ना) (बड़ौदा, सूरत, नासिक), बागड़ी (मेवाड़ के

आसपास), पावरी (ग्रि. खानदेश) प्रमुख है खान देश की अहीरनी खानदेश में प्रयुक्त है।

86 बोलियों के समूह वाले पहाड़ी वर्ग की पश्चिमी पहाड़ी के अंतर्गत भद्रवाही (जम्मू कश्मीर) सिरमौरी, भरमौर, मंडेआली, चमेआलो, चुरही (पाँचों हिमांचल प्रदेश) जौनसारी (जानसार बाबर), कुलुई (कुल्लु) उपबोलियाँ हैं। पूर्वी पहाड़ी में नैपाली तथा मध्य पहाड़ी में कुमाउनी (अल्मोड़ा, नैनीताल), गढ़वाली (गढ़वाल, मसूरी) प्रमुख है। वस्तुतः इनमें प्राकृतिक दूरी है। जन. में गुजराती का 27 बोलियों में धिसादी (आंध्र महाराष्ट्र में लाहारों द्वारा प्रयुक्त) कोल्ची (सूरतक में कोल्वा जाति द्वारा प्रयुक्त), पारसी (महाराष्ट्र सौराष्ट्र (मद्रास), सौराष्ट्री (गुजरात) प्रमुख वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त गामड़िया, चरोतरी, काठियावाड़ी भी उल्लेख है।

पंजाबी की 29 बोलियों में जन0 के अनुसार बिलासपुरी (कल्हरी) (विलासपुर, मंगल, होशीयारपुर), डोगरी (जम्मू एवं पंजाब के कुछ भाग), कांगरी (कांगड़ा) राठी जालंधरी, फिरोजपुरी, पट्टियानी (बीकानेर, फिरोजपुर) माँझी (अमृतसर के आसपास) प्रमुख बोलियाँ हैं।

द्रविड़ भाषा परिवार

भारत में संख्या की दृष्टि से दूसरे भाषा परिवार द्रविड़ में जन. में 161 मातृभाषाएँ गिनाई गई है जिनमें 104 को संविधानगत तमिल, तेलुगु, कन्नड़ मलयालम चार भाषाओं के संदर्भ में विवेचित किया जा सकता है। तमिल की 22 बोलियों में येरुकुल आंध्र में, कैकादी महाराष्ट्र में (ग्रि. के अनुसार दक्षिण में) कोरवा पहले मद्रास में, पट्टापु भाषा आंध्र में प्रमुख बोलियों के रूप में बोली जाती है। ग्रि. के अनुसार सालेवारी (चाँदा), बेराडी (बेलग्राम) भी प्रधान बोलियाँ हैं। कन्नड़ की 32 मातृ बोलियों में प्रमुखतम बडगा (नीलगिरि, मैसूर) है। होलिया प्रमुखत- महाराष्ट्र में, गतार कन्नड़ म. प्र. में, मोंटाडेंत्यी मद्रास में पाई गई हैं। कोरचा बोली कोरवा की पर्याय नहीं है, जैसा ग्रि. में वर्णित है, अपित यह मैसूर में बोली जानेवाली, कन्नड़ की प्रमुख बोली है। मलयालम की 14 बोलियों में येरव जाति की येरव बोली मैसूर में, पनिया मद्रास तथा केरल में बोली जाती है। नागरी मलयालम त्रिचूर जिले के संस्कृतज्ञ ब्राह्मणों की मलयालम है। शेष बोलियाँ गौण हैं। तुलू कोर्गी (कोडगू) (कुर्ग), टोडा, कोटा, (मद्रास) चार भाषाओं

की भी कई बोलियाँ हैं। कोर्गा तुलू की प्रधान बोली है। ये मद्रास, मैसूर, महाराष्ट्र में बिखरी हैं।

इसके अतिरिक्त उत्तर द्रविड़ समूह की कुरुख (ओराँव) भाषा में वाँगरी नागेसियाँ (अंतिम दोनो बंगाल में) तथा माल्टी भाषा की सौरिया (म. प्र.) प्रमुख है। नई शोधों के आधार पर कहा जा सकता है कि गोडी, कुई (उड़िसा में कोरापत), खोंड़ (कोंध) (उड़िसा), कोया (आंध्र), पार्जी (म. प्र.), कोलामी (आंध्र0) कोंडा भाषाएँ सिद्ध हुई है। ग्रि. में ये बोलियों के रूप में वर्णित हैं। गोंडी की डोटली, भरिया (म. प्र. बिहार, उड़िसा की सीमाएँ) कुई की पेंगु (उड़िसा), कोलामी की माने (आध्र में अदीलाबाद) एवं नइकी (ददरा हवेली) बोलियाँ उल्लेख हैं।

तिब्बत-चीनी भाषा परिवार

तिब्बत-चीनी परिवार की भाषाएँ लद्दाख से लेकर असम से पूर्व तक उत्तुंग हिमानी शिखरों, बीहड़ जंगलो, घाटियों में दूर तक फैली हुई है। जन. में 226 मातृभाषाएँ (बोलियाँ) गिनाई गई हैं। (1) तिब्बत भोटिया वर्ग में 33 मातृ बोलियाँ हैं जिनमें भोटिया, बाल्ती, भूटानी, लाहुली, स्पीती, कागेती प्रमुख हैं। कई एक का नामकरण स्थानविशेष के आधार पर हुआ है। (2) हिमालय वर्ग की 24 मातृ बोलियों में मलानी प्रमुख बोलीयुत कंसी, कनौरी (5 बोलियाँ) राई टामंग, लोचा प्रमुख भाषा (बोलियाँ) हिमाचल प्रदेश में बोली जाती है। असम शाखा के नेफा वर्ग में 24 मातृभाषाएँ (बोलियाँ) हैं जिनमें आका, हासो, दफ्का (दो बोलियाँ) अबोर (मियोंग प्रमुख बोली सहित कुल 14), मीरी, (प्रमुख बोली मीशियांग) तथा मिश्मी प्रमुख मातृभाषाएँ (बोलियाँ) हैं। असम-बर्मी शाखा के (1) बोदो वर्ग में 40 मातृभाषाएँ (बोलियाँ) हैं, जिनमें बोड़ो सहित चार बोलियाँ कचारी, दिमासा, गारो (अचिक दालू, प्रमुख), त्रिपुरी (जयंतिया प्रमुख बोली) मिकीर, राब्भा (रँगदनियाँ प्रमुख बोली), उल्लेखनीय हैं और जो असम में बिखरी हुई हैं। (2) नाना वर्ग की कुल 47 मातृभाषाओं (बोलियाँ) में कीन्याक (तीन बोलियाँ), आओ (मोक्सेन प्रमुख), अंगामी (चकू प्रमुख), सेमा, टाँगखुल आदि नागालैंड तथा नेफा में बोली जाती हैं। (3) कूकी-चिनवर्ग की 61 मातृभाषाओं (बोलियों) में प्रमुख भाषा मनीपुरी (मेथेई) की विशुनपरिया बोली त्रिपुरा तथा कछार में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त वैसें, खोंगजई, हालम कूकी अनिश्चित भाषाएँ (बोलियाँ) असम तथा नागा पहाड़ियों में है।

(4) बर्मा वर्ग की अर्कनीज भाषा क मोध प्रमुख बोली त्रिपुरा में बोली जाती है।

आस्ट्रिक भाषा परिवार

आस्ट्रिक भाषा परिवार की मॉन ख्मेर शाखा में सात तथा मुंडा शाखा में 58, कुल मिलाकर 65 मातृभाषाएँ जन. में वर्णित हैं। खासी भाषा की जयंतिया तथा प्नार बोलियाँ खासी तथा जयंतिया पहाड़ियों में बोली जाती है। खेरवारी भाषा के अंतर्गत संथाली (बंगाल, बिहार उड़िसा की सीमाएँ), मुंडारी, हो, कुरुख, कोर्कू (कूर्कू) (सतपुड़ा पहाड़, महादेव पहाड़ियाँ), भूमिज (सिंहभूमि, मानभूमि), गदबा (मद्रास की उत्तरी पूर्वी पहाड़ियाँ) बोलियाँ गिनाई गई हैं। वस्तुतः इन्हें भाषाएँ कहना, जैसा जन. में है, अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि बोधगम्यता के सिद्धांत के आधार पर उनमें अत्यधिक दूरी आ गई है। मुंडा शाखा की शेष बोलियाँ हैं - मकारी (महाराष्ट्र म. प्र.), कोडा (कोरा) संबंधित मिरधा (पं. बंगाल), बइरी, लोढ़ाजो खरिया से संबंधित हैं, (प. बंगाल), निकोबारी (अंडमान निकोबार), तथा कोल भाषाएँ।

❐❐❐